जाती है। बहुत से लोग, खाने-पीने की अनियमितता से बीमार होकर मर जाते है। कई युवक विवाह मे आई हुई वेश्याओ के ही शिकार बन जाते हैं। इस प्रकार आजकल की पद्धति द्वारा अपना ही सर्वनाश नही किया जाता किन्तु दूसरो के सर्वनाश का कारण भी उत्पन्न किया जाता है।

आजकल समाज के सम्मुख विधवा-विवाह का जो प्रश्न उपस्थित है, उसके मूल कारण बाल-विवाह, बेजोड-विवाह और विवाह की खर्चीली पद्धति ही है। बाल-विवाह और बेजोड-विवाह के कारण एक ओर तो विधवाओ की सख्या बढ जाती है और दूसरी ओर बहुत से पुरुष अविवाहित रह जाते है क्योकि उनके पास वैवाहिक आडम्बर करने को द्रव्य नही होता। यदि बाल-विवाह और बेजोड-विवाह बन्द हो जाएं, विवाहो मे अधिक खर्च न हुआ करे तो विधवाओ और अविवाहित पुरुषो की बढी हुई सख्या न रहने पर सम्भवत विधवा-विवाह का प्रश्न आप ही हल हो जाए। साराश यह है कि पूर्व समय मे, विवाह तब किया जाता था, जब पति-पत्नी, सर्व-विरति-ब्रह्मचर्य पालन मे अपने को असमर्थ मानते थे अर्थात् विवाह कोई आवश्यक कार्य नही माना जाता था। लेकिन आजकल विवाह एक आवश्यक-कार्य माना जाता है। जीवन की सफलता विवाह मे ही समझी जाती है। जब तक लडके-लडकी का विवाह न हो जाए, तब तक वे दुर्भागी समझे जाते हैं। इसी कारण आवश्यकता और अनुभव के बिना ही विवाह कर दिया जाता है और वह भी बेजोड तथा हजारो लाखो रुपये व्यय कर धूमधाम के साथ। पूर्व समय की विवाह-प्रथा समाज मे शाति रखती थी, समाज को दुराचार से बचाती थी और अच्छी सन्तान उत्पन्न करके समाज का हित साधन करती थी। आजकल की विवाह-प्रथा इसके विपरीत कार्य करती है। बाल-विवाह, बेजोड़-विवाह और विवाह की

खर्चीली पद्धति, समाज मे अशांति उत्पन्न करती है लोगो को दुराचार में प्रवृत्त करती है और रुग्ण एव अल्पायुषी सन्तान द्वारा समाज का अहित करती है ।

वैवाहिक विषय के वर्णन पर से कोई यह कह सकता है कि साधुओ को इन सासारिक बातों से क्या ? और वे ऐसी बातो के विषय मे उपदेश क्यो दें ? इसका उत्तर यही है कि यद्यपि इन सासारिक बातो से साधु लोग परे हैं लेकिन साधुओं का धार्मिक जीवन नीति-पूर्ण ससार पर ही अवलम्बित है । यदि ससार मे सर्वत्र अनीति छा जाए तो धार्मिक जीवन के लिए स्थान भी नही रह जाता है । इसी दृष्टिकोण से विवाह की विधि बताने के लिए ही शास्त्रों की कथाओ मे विवाह-बन्धन मे जुडने वाले स्त्री-पुरुष की समानता आदि का वर्णन किया है । यह बात दूसरी है कि उनमे बाल-विवाह, असमय के सहवास आदि का निषेध नहीं है । लेकिन उस समय ये कुप्रथाए थीं ही नहीं, इसलिए इस प्रकार के उपदेश की आवश्यकता न थी अन्यथा पूर्ण ब्रह्मचर्य का ही विधान करने वाले होने पर भी, जैन-शास्त्र ऐसे अपूर्ण नहीं हैं कि उनमे सासारिक-जीवन की विधि पर कथाओं द्वारा प्रकाश न डाला गया हो ।
'सरिसवया' 'सरिस-तया' आदि पाठ इसी बात के द्योतक हैं कि विवाह समान युवावस्था मे होता था ।

विवाह मे जहां धन की प्रधानता होगी, वहां अनमेल-विवाह हो, यह स्वाभाविक है । अनमेल-विवाह करके दाम्पत्य जीवन में सुख-शाति की आशा करना ऐसा ही है जैसे नीम बोकर आम के फल की आशा करना ।

आजकल की इस देश की दुर्दशा में भी भारत के साठ-साठ

वर्ष के बूढे विवाह करने के लिए तैयार हो जाते हैं। बूढो की इस वासना ने देश को उजाड डाला है। आज विधवाओ की सख्या बढ गई है और कितनी बढ़ती जाती है, यह किसे नही मालूम ? आप थोकडो पर थोकडे गिन लेते हो पर कभी इन विधवाओ की भी गिनती आपने की है ? कभी आपने यह चिन्ता भी की है कि इन विधवा बहिनो का निर्वाह किस प्रकार होता है ?

ऐ भीष्म की सतानो ! भीष्म ने तो आजीवन ब्रह्मचर्य पालन करके दुनिया के कानो मे ब्रह्मचर्य का पावन मन्त्र फूका था। आज उन्ही की सन्तान कहलाते हुए उन्ही के मन्त्र को क्यो भूल रहे हो ?

❀ ❀ ❀

लग्न के समय वर-वधू अग्नि की प्रदक्षिणा करते हैं। पति के साथ अग्नि की प्रदक्षिणा करने के पश्चात् सच्ची आर्य महिला अपने प्राणो का उत्सर्ग कर देती है, पर की हुई प्रतिज्ञा से विमुख नही होती।

पुरुप भी पत्नी के साथ अग्नि की प्रदक्षिणा करते है परन्तु जो कर्त्तव्य स्त्री का माना जाता है, वही क्या पुरुप का भी समझा जाता है ?

जैसे सदाचारिणी स्त्री पर-पुरुप को पिता एव भाई समझती है, उसी प्रकार सदाचारी पुरुप भी वही है, जो पर-स्त्री को माता-बहिन की दृष्टि से देखे। 'पर ती लखि जे धरती निरखें, धनि हैं धनि हैं धनि हैं नर ते।'

पुरुप का पाणिग्रहण धर्मपालन के लिये किया जाता है उसी प्रकार स्त्री का भी। जो नर या नारी इस उद्देश्य को भूलकर

खान-पान और भोग-विलास मे ही अपने जीवन की इतिश्री समझते हैं, वे धर्म के पति-पत्नी नही, वरन् पाप के पति-पत्नी हैं ।

विवाह होने पर पति-पत्नी प्रेम बन्धन में जुड जाते हैं । मगर उनके प्रेम मे भी भिन्नता देखी जाती है । किसी-किसी में विवाह करने पर भी स्वार्थपूर्ण प्रेम होता है और किसी-किसी में निःस्वार्थ प्रेम भी रहता है । जिस दम्पती मे स्वार्थपूर्ण प्रेम होगा उसकी दृष्टि एक-दूसरे की सुन्दरता पर रहेगी और किसी कारण सुन्दरता मे कमी होने पर वह प्रेम दूर हो जायगा । परन्तु जिनमे निःस्वार्थ प्रेम है, उनमे अगर पति रोगी या कुरूप अथवा कोढो होगा तो भी पत्नी का प्रेम कम नही होगा । श्रीपाल को कोढ हो गया था । फिर भी उसकी पत्नी ने पति-प्रेम मे किसी प्रकार की कमी नहीं की । तात्पर्य यह है कि जिस प्रेम मे किसी भी कारण से न्यूनता आ जाय, वह निःस्वार्थ प्रेम नही है, वह स्वार्थपूर्ण और दिखावटी प्रेम है ।

साथ ही संसार के सुखों के साधनों को जुटाना है, एकत्र रहकर ही सृष्टि करनी है, विकास करना है । दोनो के हृदयो मे अधिकार की हाय-हाय की अपेक्षा एक-दूसरे के प्रति आत्मसमर्पण की भावना हो । परस्पर प्रेम, सहानुभूति और कर्त्तव्य का भाव प्रधान हो । विश्व मे मानव की सृष्टि ही तो इसी आधार पर हुई है। इसमे बाधाए उपस्थित करने से हरेक घर में अशांति पैदा हो जाती है । इसी प्रकार स्त्री का जीवन तभी सुखी और सन्तोषमय रह सकता है, जब कि वह आत्मसमर्पण मे ही जीवन के सुख को खोजे, उसी से पूर्ण आनन्द का अनुभव करे । पुरुष के लिए भी यही बात है। नारी का तो सारा जीवन ही त्यागमय है । समर्पण करने में ही उसे सुख है। इसी मे तो उसके मातृत्व का, पुरुष की जननी होने का अधिकार, गौरव है । यहीं तो उसकी उन्नति की परम सीमा है। इसी जगह तो नारी वह है कि जिसकी बराबरी पुरुष भी नही कर सका और न कर सकेगा ।

इसीलिये आजकल जो प्रतिद्वन्द्विता एव मुकाबिले का भाव समाज मे स्त्री-पुरुषो के बीच चल रहा है, वह समाज को भारी हानि पहुचा रहा है और वह भी विशेषकर स्त्रियों को। वह यह कि कोई भी काम, चाहे वह अच्छा हो या बुरा, परन्तु पुरुष करता है तो स्त्रिया भी क्यो न करें ? नारियो के मन मे आजकल कुछ ऐसी भावना घर कर गई है कि पुरुष जाति स्वार्थमय हो गई है, हमारे साथ वेवफाई कर रही है । और हमने तो सदा त्याग किया है, ममतावश होकर सदा पुरुष की हम गुलामी करती रही हैं पर उसका पुरस्कार आज यह है कि हम दुतकारी जा रही हैं । अतः अब क्यो इनकी परवाह करें ? कब तक सेवा करती रहे ? और फिर किस लिए ? उस त्याग को छोडकर क्यो न उनकी ही कोटि मे आ जायें? उसी भावना का फल है कि आजकल की अधिकारप्रिय-स्त्रियां

अपने उस प्राचीन गौरव को आख उठाकर देखना भी पसन्द नही करती ।

आज उनकी आखें पूर्ण रूप से पुरुष जाति की ओर लगी हुई हैं कि वह कौनसा काम कब कर रही है कि हम भी वही करने लग जायें । पुरुष की पूरी नकल करने मे ही वे अपने जीवन की सार्थकता समझने लगी है ।

उन्हें ऐसा विश्वास हो गया है कि उन्हे पति के प्रति प्रेम नही और इसलिये उनका मन असन्तुष्ट व अतृप्त है । फलस्वरूप ईर्ष्यावश वह पति की प्रत्येक गतिविधि पर दृष्टि रखने मे ही सारा समय बर्बाद करने लगी हैं । पुरुष ने उसका ध्यान पूरी तरह से अपनी ओर खींच लिया है । अत वह अपने व्यक्तित्व की ओर लक्ष्य नही रखती । निरन्तर पुरुष की प्रत्येक हलचल से उपेक्षा टपकती हुई-सी समझकर कुढती रहती है । सोचती रहती है कि वे तो आराम से निर्द्वन्द्व होकर भ्रमण करते रहते हैं, फिर भी मैं दासी बनी कब तक उनकी गुलामी किया करू ?

इसके विपरीत जो उच्च विचारो की स्त्रिया हैं, वे पति की अकर्मण्यता और पति के पतन से मार्गच्युत न होकर अपने कर्त्तव्य का ध्यान रखती हैं । वे अपने मन में यह भावना बनाए रखने का प्रयत्न करती हैं कि हमारा धर्म तो सिर्फ अपनी पवित्रता को कायम रखने मे है और हमारा कार्य पति के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करना है । इससे नारी की आत्मा का विकास होता है और वह अपने जीवन को सुखी करने की चेष्टा मे सफल होती है । और वे इस त्याग, सेवा और कर्तव्य—पालन के द्वारा पतन की ओर अग्रसर होते हुए पति को भी कभी पश्चात्ताप करने को बाध्य कर देती हैं ।

इस प्रकार अपनी वफादारी और कर्त्तव्यशीलता के द्वारा आनन्द-रहित गृह को भी आनन्द और उल्लास की तरगो मे प्रवाहित कर देती है। वे पति को और उसके साथ-साथ अपने को भी ऊंचा उठाती हैं । वे गृह-जीवन मे सुख व शाति बढ़ाती हुई पति-पत्नी के टूटते हुए सम्बन्ध को जोड लेती हैं ।

दूसरी ओर समाज मे बढती हुई खीचातानी का शिकार होकर स्त्रिया अत्यन्त दु खी और अतृप्त रहती है । उनका हृदय दुःख से भरा रहता है और आत्मा तडपती रहती है, क्योंकि आजकल स्त्रियो की माग एव उनके अधिकारो के नाम पर समाज मे जो जहर फैलाया जा रहा है, उसने पुरुष एव स्त्री के सम्बन्ध को मधुर एव दृढ बनाने की अपेक्षा और भी स्नेह-हीन, नीरस, और निकम्मा बना दिया है । एक-दूसरे के मतभेद को मिटाने की जगह आपस के मनोमालिन्य की खाई को और भी गहरा कर दिया है। नारियो की उठती हुई आत्मा को गिरा दिया है । उनका विकास रोक दिया है ।

आजकल की सभ्यता हमे अधिकार प्राप्त करने का पाठ तो पढाती रहती हैं पर उस अधिकार के साथ जो महान् जिम्मेदारियो का बोझा बन्धा हुआ है, उसे सहन करने का सबक नही सिखाती । और जिस प्रकार आग और पानी का मेल नही हो सकता, उसी तरह स्त्रियो के अधिकार और शक्ति चाहने पर यह नहीं हो सकता कि उसके लिये होने वाली कठिनाइयां न सहे और त्याग करने को तैयार न रहें । प्राचीन भारतीय नारियो को गृह मे जो अखण्ड अधिकार मिला था, वह कष्टसहन एव कठिनाइयो और बाधाओ के बीच में भी सुख और शाति का अनुभव करते हुए पूर्ण सन्तुष्ट रहने पर ही मिला था ।

# १–नारी का कार्य क्षेत्र

नारी का कार्यक्षेत्र गृह मे ही है। उनके गृह-जीवन मे ही ससार के महापुरुषो का जीवन छिपा हुआ है। गृहो मे प्राप्त होने वाली शिक्षा एव सस्कार ही महान् पुरुषो का जीवन निर्माण करते हैं, पर आज की इस घरेलू चख-चख ने गृह-जीवन की नीव को ही कमजोर बना दिया है। अतएव उसमे से जीवन प्राप्त करने वाला नवयुवक कमजोर, रूखे स्वभाववाला और कठिनाइयो मे शीघ्र ही निराश हो जाने वाला हो गया है। वह बातें अधिक करता है पर कार्य कम करता है। हर एक से लेने की इच्छा अधिक करता है पर देना किसी को भी नहीं चाहता। पर यह उसका दोष नही है। उसका दुर्भाग्य है कि जिस माता-पिता का दूध पीकर वह शक्ति प्राप्त करता था, जिस माता-पिता के आदर्श चरित्र का अवलोकन कर वह एक महापुरुष बनता था, आज उस माता का उस पर से हाथ हटता जा रहा है। वह उसी मा का ओज था। बल्कि आज भी भारतीय गृहो में जो थोडा बहुत सौन्दर्य या सुघडता है वह उन बहनों-बेटियों व माताओ का प्रताप है कि जिनका चरित्र, जिनका सेवाभाव, सभाओ-सोसाइटियो मे नहीं जाहिर होता बल्कि सतति का जीवन बनकर सामने आता है।

नारियो का सच्चा स्थान गृह ही है। उन्हीं के प्रयत्न से टूटते हुए गृह व दाम्पत्य-जीवन का उद्धार सम्भव है। समाज के निर्माण मे उत्तम गृहो का होना मुख्य है।

# २–आदर्श–दम्पती

उच्च दाम्पत्य जीवन का बहुत श्रेष्ठ आदर्श प्राचीनकाल मे

राम और सीता ने उपस्थित किया था जो हिन्दू समाज के लिये सदैव अनुकरणीय रहा और है।

सच्चा पति वही है, जो पत्नी को पवित्र बनाता है और सच्ची पत्नी वही है, जो पति को पवित्र बनाती है। सक्षेप मे जो अपने दाम्पत्य जीवन को पवित्र बनाते हैं, वही सच्चे पति-पत्नी हैं।

जो पुरुष पर-धन और पर-स्त्री से सदैव बचता रहता है उसका कोई कुछ नही बिगाड सकता। स्त्रियो के लिये पति-व्रत धर्म है तो पुरुषो के लिये पत्नीव्रत धर्म है।

जो पुरुष पत्नी को गुलाम बनाता है वह स्वय गुलाम बन जाता है और जो पुरुष पत्नी को देवी बनाता है, वह स्वय देव बन जाता है।

पुरुष चाहते हैं कि स्त्रिया पतिव्रत धर्म का पालन करें परन्तु उन्हें क्या पत्नीव्रत धर्म का पालन नही करना चाहिए ? पतिव्रत पत्नी के लिये और पत्नीव्रत पति के लिये कल्याणकारी है। पतिव्रत का माहात्म्य कितना और कैसा है, यह बतलाने के लिये अनेक उदाहरण मौजूद हैं। पतिव्रत के प्रभाव से सीता के लिये अग्नि भी ठण्डी हो गई थी। सीता ने पतिव्रत धर्म का पालन करने के लिये कितने अधिक कष्ट सहन किये थे ? वह चाहती तो राम और कौशल्या का आग्रह मानकर घर मे आराम से बैठी रह सकती थी और कष्टो से बच सकती थी मगर पतिव्रत धर्म का पालन करने के लिये उसने कष्ट सहना ही स्वीकार किया।

सीता के चरित्र को किस प्रकार देखना चाहिए, यह बात कवि ने बतलाई है। वह कहता है—'पति ही व्रत-नियम है' ऐसा

व्रत वही स्त्री लेती है, जिसके अन्तःकरण में पति के प्रति पूर्ण प्रेम होता है। कोई भी काम तभी होता है जब उसके प्रति प्रेम हो। धर्म का आचरण भी प्रेम से किया जाता है। आपका प्रेम कच्चा है या सच्चा, यह परीक्षा करनी हो तो पतिव्रता के प्रेम के साथ अपने प्रेम की तुलना करके देखो। भक्ति के विषय में पतिव्रता का उदाहरण भी दिया जाता है। पतिव्रताओं मे भी सीता सरीखी पतिव्रता दूसरी शायद ही हुई हो। सीता ने उच्च आचरण करके सतीशिरोमणि की पदवी पाई है। सीता सरीखी दो चार सतियां अगर ससार मे हो तो ससार का उद्धार हो जाय। कहावत है— 'एक सती और नगर सारा'। सुभद्रा अकेली थी पर उसने क्या कर दिखाया था ? उसने सारे नगर का दुःख दूर कर दिया था।

सब स्त्रियां सीता नहीं बन सकतीं। इससे कोई यह नतीजा न निकाले कि जब सीता सरीखी बनना कठिन है तो फिर उस ओर प्रयत्न ही क्यो किया जाय ? जहा पहुच ही नहीं सकते, वहां पहुचने का प्रयत्न क्यो किया जाय ? जहां पहुच ही नही सकते वहा पहुचने के लिए दो-चार कदम बढाने की भी क्या आवश्यकता है ? ऐसा विचार करने से लाभ के बदले हानि ही होगी। आप खाते हैं, पीते हैं, पहनते हैं, ओढते हैं। मगर आप से अच्छा खाने-पीने पहनने-ओढने वाले भी हैं या नही ? फिर आप क्या यह सब करना छोड देते हैं ? अक्षर मोती जैसे लिखने चाहिए, मगर वैसा न लिख सकने वाला क्या अक्षर लिखना छोड देता है ? इसी तरह सीता-सी सती बनना अगर कठिन है तो क्या सतीत्व ही छोड देना उचित है ? सीता की समता न करने पर भी सती बनने का उद्योग छोडना नहीं चाहिये। निरन्तर अभ्यास करने व सीता का आदर्श सामने रखने से कभी सीता के समान हो जाना सम्भव है।

सती, तो स्त्रियों में ऊंची होती ही है, लेकिन नीच स्त्री कैसी

होती है, यह भी कवि ने बताया है। कवि कहता है— खाने-पीने और पहनने-ओढने के समय 'प्राणनाथ' 'प्राणनाथ' करने वाली और समय पडने पर विपरीत आचरण करने वाली स्त्री नीच कहलाती है। ऊपर से पतिव्रता का दिखावा करना और भीतर कुछ और रखना नीचता है। इस प्रकार की नीचता का कभी न कभी भण्डाफोड हो ही जाता है। कदाचित् न भी हो तो उसे उसके कर्म अपना फल देने से कभी नही चूकते। नीच स्त्रिया भीतर-बाहर कितनी भिन्नता रखती हैं, यह बात एक कहानी द्वारा समझाई जाती है—

## ३—मायाविनी पत्नी

एक ठाकुर था। वह अपनी स्त्री की अपने मित्रो के सामने बहुत प्रशंसा किया करता था। वह कहा करता था—ससार मे सती स्त्रिया तो और भी मिल सकती हैं पर मेरी स्त्री जैसी सती स्त्री दूसरी नही है? कभी-कभी वह सीता, अंजना आदि से अपनी स्त्री की तुलना किया करता और उसे उनसे भी श्रेष्ठ बतलाता। उसके मित्रो मे कोई सच्चे समालोचक भी थे।

एक बार एक समालोचक ने कहा—ठाकुर साहब! आप भोले हैं और स्त्री के चरित्र को जानते नही हैं। इसी से ऐसा कहते हैं। त्रिया-चरित्र का समझ लेना साधारण बात नही है।

ठाकुर ने अपना भोलापन नहीं समझा। वह अपनी पत्नी का बखान करता ही रहा। तब उस समालोचक ने कहा—कभी आपने परीक्षा की है या नही?

ठाकुर-परीक्षा करने की आवश्यकता ही नहीं है। मेरी स्त्री

मुझसे इतना प्रेम करती है, जितना मछली पानी से प्रेम करती है। जैसे मछली पानी के बिना जीवित नहीं रह सकती, उसी प्रकार मेरी स्त्री मेरे बिना जीवित नहीं रह सकती।

समालोचक—आपकी बातों से जाहिर होता है कि आप बहुत भोले हैं। आप जब परीक्षा करके देखेंगे, तब सच्चाई मालूम होगी।

ठाकुर—अच्छी बात है, कहो किस तरह परीक्षा की जाय?

समालोचक-आप अपनी स्त्री से कहिये कि मुझे पाच-सात दिन के लिये राजकीय काम से बाहर जाना है। यह कह कर आप बाहर चले जाना और फिर छिप कर घर में बैठे रहना। उस समय मालूम होगा कि आपकी स्त्री का आप पर कैसा प्रेम है? आप अपने पीछे ही अपनी स्त्री की परीक्षा कर सकते है, मौजूदगी में नहीं।

ठाकुर ने अपने मित्र की बात मान ली। वह अपनी स्त्री के पास गया। स्त्री से उसने कहा—तुम्हें छोडने को जी नहीं चाहता मगर लाचारी है। कुछ दिनों के लिए तुम्हें छोडकर बाहर जाना पडेगा। राजा का हुक्म माने बिना छुटकारा नहीं।

ठकुरानी ने बहुत चिन्ता और आश्चर्यपूर्वक कहा—क्या हुक्म हुआ है? कौनसा हुक्म मानना पडेगा?

ठाकुर—मुझे ५-७ दिनों के लिए बाहर जाना पडेगा?

ठकुरानी-पाच-सात दिन, बाप रे! इतने दिन तुम्हारे बिना कैसे निकलेंगे। मुझे तो भोजन भी नहीं रुचेगा।

ठाकुर—कुछ भी हो, जाना तो पड़ेगा ही ।

ठकुरानी—इतने दिनो मे तो मैं छटपटा कर मर ही जाऊगी। आप राजा से कहकर किसी दूसरे को अपने बदले नहीं भेज सकते ?

ठाकुर— लेकिन ऐसा करना ठीक नही होगा । लोग कहेंगे, स्त्री के कहने मे लगा है । मैं यह कहूगा कि मुझसे स्त्री का प्रेम नही छूटता ? ऐसा कहना तो बहुत बुरा होगा ।

ठकुरानी—हां, ऐसा कहना तो ठीक नहीं होगा । खैर, जो कुछ होगा देखा जायगा ।

इतना कहकर ठकुरानी आंसू बहाने लगी । उसने अपनी दासी से कहा–दासी जा । कुछ खाने–पीने को बनादे, जो साथ में ले जाया जा सके ।

ठकुरानी की मोह पैदा करने वाली बातें सुनकर ठाकुर सोचने लगा–मेरे ऊपर इसका कितना प्रेम है !

ठाकुर घोडी पर सवार होकर कोस दो कोस गया। घोडी ठिकाने बाधकर वह लौट आया और छिपकर घर मे बैठ गया ।

दिन व्यतीत हो गया । रात हो गई । ठकुरानी ने दासी से कहा—ठाकुर तो गांव चला गया, अब मेरे को धान नही भाता है। अत तू जा पास के अपने खेत से दस–पाच साठे ले आ, जिससे रात व्यतीत हो । दासी ने सोचा ठीक है, मुझे भी हिस्सा मिलेगा। वह गई और गन्ने तोड लाई । ठकुरानी गन्ने चूसने लगी ।

ठाकुर छिपा–छिपा देख रहा था । उसने सोचा—मेरे वियोग

के कारण इसे अन्न नहीं भाता ! मुझ पर इसका कितना गाढ़ा प्रेम है !

ठकुरानी पहर रात तक गन्ना चूसती रही। गन्ना समाप्त हो जाने पर वह दासी से बोली—अभी रात बहुत है। गन्ना चूसने से भूख लग आई है। थोड़े नरम-नरम बाफले तो बना डाल, देख जरा घी अच्छा लगाना हो।

दासी ने सोचा—चलो ठीक है, मुझे भी मिलेंगे। दासी ने बाफले बनाए और खूब घी मिलाया।

ठकुरानी ने खूब मजे से बाफले खाए। खाने के थोड़ी देर बाद वह कहने लगी—दासी, तूने बाफले बनाए तो ठीक, पर मुझे कुछ अच्छे नहीं लगे। यह खाना कुछ भारी भी है। थोड़ी नरम-नरम खिचड़ी बना डाल।

दासी ने वही किया। खिचड़ी खाकर ठकुरानी बोली—तीन पहर रात तो बीत गई, अब एक पहर बाकी है। थोड़ी लाई (धानी) सेक ला। उसे चबाते-चबाते रात बिताए। दासी लाई भी सेक लाई। ठकुरानी खाने लगी।

ठाकुर बैठा-बैठा सब देख सुन रहा था। वह सोचने लगा-पहली रात मे यह हाल है तो आगे क्या-क्या नही होगा। अब इससे आगे परीक्षा न करना ही अच्छा है। यह सोचकर वह घोड़े के पास लौट आया। घोड़े पर सवार होकर वह घर जा पहुंचा।

दासी ने ठकुरानी को समाचार दिया—ठाकुर साहब आ गए हैं। ठकुरानी ने कहा—ठाकुर आ गए, अच्छा हुआ।

वह ठाकुर से बोली—अच्छा हुआ, आप पधार गए। मेरी तकदीर अच्छी है। आखिर सच्चा प्रेम अपना प्रभाव दिखलाता ही है।

ठाकुर—तुम्हारी तकदीर अच्छी थी, इसी से मैं आज बच गया। बडे सकट मे पड गया था।

ठकुरानी—ऐ, क्या सकट आ पडा था?

ठाकुर—घोडे के सामने एक भयङ्कर साप आ गया था। मैं आगे बढता तो साप मुझे काट खाता। मैं पीछे की ओर भाग गया। इसी से बच गया।

ठकुरानी—आह! साप कितना बडा था?

ठाकुर—अपने पास के खेत के गन्ने जितना बडा था और भयानक था।

ठकुरानी—वह फन तो नही फैलाता था?

ठाकुर—फन का क्या पूछना है! उसका फन तो बाफले जितना बडा था।

ठकुरानी—वह दौडता भी था?

ठाकुर—हा, वह दौडता क्यों नही था, वह तो ऐसा दौडता था, जैसे खिचडी मे घी।

ठकुरानी—वह फुकार भी मारता होगा?

ठाकुर—हा, ऐसे जोर से फुकार मारता था, जैसे कडेले मे पडी हुई धानी सेकने के समय फूटती है।

ठाकुर की बातें सुनकर ठकुरानी सोचने लगी-ये तो सारी बातें मुझ पर ही घटित होती है। फिर भी उसने कहा-चलो, मेरे भाग्य अच्छे थे, जो आप उस नाग से बचकर आगए।

ठाकुर—ठकुरानी! समझो। मैं उस नाग से बच निकला पर तुम सरीखी नागिन से बच निकलना बहुत कठिन है।

ठकुरानी—क्या मैं नागिन हू? अरे बाप रे! मैं नागिन हो गई? भगवान् जानता है। सब देव जानते हैं। मैंने क्या किया जो मुझे नागिन बनाते हैं।

ठाकुर—मैं नही बनाता, तुम स्वय बन रही हो! मैं अपने मित्रो के सामने तुम्हारी तारीफ बघारता था, लेकिन सब व्यर्थ हुआ।

ठकुरानी—तो बताते क्यो नही, मैंने ऐसा क्या किया है? मैं आपके बिना जी नही सकती और आप मुझे लाछन लगा रहे हैं।

ठाकुर—बस रहने दो। मैं अब वह नही, जो तुम्हारी मीठी-मीठी बातो मे आ जाऊ। तुम मुझ मे कहा करती थी-तुम्हारे वियोग मे मुझे खाना नही भाता और रात भर खाने का कचूमर निकाल दिया!

ठकुरानी की पोल खुल गई। सारांश यह कि ससार में इस ठकुरानी के समान पति से कपट करने वाली स्त्रिया भी हैं और पतिव्रताए भी हैं। पति के प्रति निष्कपट भाव से अनन्य प्रेम रखने वाली स्त्रियां भी मिल सकती हैं और मायाविनी भी मिल सकती हैं। ससार में अच्छाई भी है और बुराई भी है। प्रश्न यह है कि स्त्री को क्या ग्रहण करना चाहिये? किसको अपनाने से नारी-जीवन उन्नत और पवित्र बन सकता है?

ग्राज ग्रगर कोई स्त्री सीता नही वन सकती तो भी लक्ष्य तो वही रखना चाहिये । ग्रगर कोई ग्रच्छे ग्रक्षर नही लिख सकता तो साधारण ही लिखे मगर लिखना छोडने से तो काम नही चल सकता । यही बात पुरुषो के लिये भी है। पुरुषो के सामने महान्-ग्रात्मा राम का ग्रादर्श है । उन्हे राम के समान उदार, गम्भीर, मातृ-पितृ सेवक, बन्धु-प्रेमी ग्रौर धार्मिक बनना चाहिये ।

सीता मे कैसा पति-प्रेम था वह बात इसी से प्रकट हो जाती है कि क्या जैन ग्रौर क्या ग्रजैन, सभी ने ग्रपनी शक्ति भर सीता की गुण-गाथा गाई है । मेहदी का रग चमडी पर चढ़ जाता है ग्रौर कुछ दिनो तक चमडी पर से उतारे नही उतरता । मगर सीता का पति-प्रेम इससे भी गहरा था । सीता का प्रेम इतना ग्रन्तरग था कि वह चमडी उतारने पर भी नही उतर सकता था । वह ग्राजीवन के लिये था, थोडे दिनो के लिये नही ।

कवियो ने कहा है कि सीता, राम के रग मे रग गई थी । पर राम में वन जाते समय कौनसा नवीन रंग ग्राया था कि जिसमे सीता रंगी ?

जिस समय सीता के स्वयवर-मडप मे सब राजाग्रो का पराक्रम हार गया था, सब राजा निस्तेज हो गए थे ग्रौर जब राम ने सब राजाग्रो के सामने ग्रपना पराक्रम दिखाया था, उस समय राम के रस मे सीता का रचना ठीक था । पर उस समय के रग मे स्वार्थ था । इसलिये उस समय के लिये कवि ने यह नही कहा कि सीता राम के रग मे रग गई । मगर जब कि राम ने सब वस्त्र उतार दिये हैं, वल्कल वस्त्र धारण किये हैं, फिर सीता राम के रग मे क्यो रगी ? ग्रपने पति के ग्रसाधारण त्याग को देख

कर और संसार के कल्याण के लिये उन्हें वनवास करने को उद्यत देखकर सीता के प्रेम मे वृद्धि ही हुई । वह राम के लोकोत्तर गुणो पर मुग्ध हो गई । इसी से कवि ने कहा है कि सीता राम के रग मे रग गई ।

उस समय सीता की एकमात्र चिन्ता यही थी कि जैसे प्राणनाथ को वन जाने की अनुमति मिल गई है, वैसे मुझे मिल सकेगी या नहीं ?

वास्तव मे वही स्त्री पति-प्रेम में अनुरक्त कहलाती है, जो पति के धर्म–कार्य आदि सभी मे सहायक होती है । गहने-कपडे पाने के लिये तो सभी स्त्रिया प्रीति प्रदर्शित करती हैं, मगर सकट के समय, पति के कन्धे से कन्धा भिडा कर चलने वाली स्त्रिया सरा–हनीय हैं। गिरते हुए पति को उठाने वाली और उठे हुए पति को आगे बढाने वाली स्त्री ही पतिपरायण कहलाती है ।

रामचन्द्र जी माता कौशल्या से वन जाने के लिये अनुमति मागने गए तो कौशल्या अधीर हो उठी । उन्होने पहले वन के भयानक स्वरूप का स्मरण किया । फिर राम की सुकुमारता का विचार किया । राम की उम्र उस समय सत्ताईस वर्ष की थी । कौशल्या ने सोचा—क्या यह उम्र वन जाने योग्य है ? राजमहल में सुमन–सेज पर सोने वाला सुकुमार राम वन की ककरीली, पथ–रीली और कटकमयी भूमि पर कैसे सोएगा ? कहा यहा के षट्‌रस भोजन और कहा वन के फूल ! वन मे इसका निर्वाह कैसे होगा ? किस प्रकार सर्दी, गर्मी, और वर्षा का कष्ट सहा जायगा ?

राम ने बडी सरलता और मिठास से माता को समझाया–

माता ! जो पुत्र माता—पिता की आज्ञा का पालन नहीं करता, वह पुत्र नहीं है। और फिर मैं कैकेयी माता को एक बार महाराज के युद्ध मे प्राण बचाने के महान् कार्य का पुरस्कार देने जा रहा हू। अतएव आप अपनी आखो के आंसू पोछ डालो और मुझे विदा दो। हर्ष के समय विषाद मत करो। ससार का ऐसा ही स्वरूप है। सयोग वियोग के अवसर आते ही रहते है। इन प्रसगो के आने पर हर्ष–विषाद न करने मे ही भलाई है।

राम के ये वचन कौशल्या के मोह को बाण की तरह लगे। उन्होने सोचा—राम ठीक तो कहता है। जब पुत्र पिता की आज्ञा और धर्म का पालन करने के लिए उद्यत हो रहा हो, तब माता के शोक का क्या कारण है ? ऐसा करना माता के लिए दूषण है। स्त्री-धर्म के अनुसार पति ने जो वचन दिया है, वह पत्नी ने भी दिया है। फिर मुझे शोक क्यो करना चाहिए ?

इस प्रकार विचार कर कौशल्या ने कहा—वत्स ! मैं तुम्हारा कहना समझ गई। मैं आज्ञा देती हू। वन तुम्हारे लिए मगल–मय हो। तुम्हारा मनोरथ पूरा हो।

पुत्र ! अभी तू नाम से राम है। अब सच्चा राम बन। अब तेरा नाम सार्थक होगा। तू जगत् के कल्याण मे अपना कल्याण और जगत् की उन्नति मे अपनी उन्नति मानना। तेरा पक्ष सिद्ध हो। तू विघ्न आने पर भी धैर्य से विचलित न होना। प्रसन्न होकर तू वन जा। मेरा आशीर्वाद तेरे साथ है। इस विशाल विश्व का प्रत्येक प्राणी तेरा हो, तू सबको अपना आत्मीय समझे, तभी तू मेरा होगा। लेकिन आजकल क्या होता है.—

मात कहे मेरा पूत सपूता, बहिन कहे मेरा भैया।
घर की पत्नी यों कहे, सब से बडा रुपैया॥

बेटा चाहे अनीति करे, अधर्म करे, झूठ-कपट का सेवन करे, अगर वह रुपये ले आता है तो अच्छा है, नही तो नहीं। ऐसा मानने वाले लोग वास्तव मे मा-बाप नही किन्तु अपनी संतान के शत्रु हैं। संसार मे जहा पुत्र को पाप करते देखकर प्रसन्न होने वाले मा-बाप मौजूद हैं, वहा ऐसे मा-बाप भी मिल सकते हैं, जो पुत्र की धार्मिकता की बात सुनकर प्रसन्न होते हैं। पुत्र जब कहता है-आज मेरे ऊपर ऐसा संकट आ गया था। मैं अपने शत्रु से इस प्रकार बदला ले सकता था पर मैंने फिर भी धर्म नही छोडा। मैंने अपने शत्रु की इस प्रकार की सहायता की। ऐसी बातें सुनकर प्रसन्न होने वाली कितनी माताए है ?

राम और कौशल्या की बात सीता भी सुन रही थी। वह नीची दृष्टि किये सलज्ज भाव से वहीं खडी थी। माता और पुत्र का वार्तालाप सुनकर उसके हृदय मे न जाने कैसा तूफान आया होगा! सीता की सास उसके पति को वन जाने के लिये आशीर्वाद दे रही है, यह देखकर सीता को प्रसन्न होना चाहिये या दुःखी ? अगर आज ऐसी बात हो तो वह कहेगी—यह कैसी अभागिनी सास है, जो अपने बेटे को ही वन में भेजने को तैयार हो गई है! मैं यह समझती थी कि यह वन जाने से रोकेगी पर यह तो उल्टा आशीर्वाद दे रही है। मगर सीता ने ऐसा नहीं सोचा। सीता मे कुछ विशेषताए थी और उन्हीं विशेषताओ के कारण राम से भी पहले उसका नाम लिया जाता है। पर आज सीता के आदर्श को हृदय में उतारने वाली स्त्रिया मिलेंगी ? फिर भी भारतवर्ष का सौभाग्य है कि यहां के लोग सीता के चरित्र को बुरा नहीं समझते। बुरे से

बुरा आचरण करने वाली नारी भी सीता के चरित्र को अच्छा समझती है ।

सीता मन ही मन कहती है—आज प्राणनाथ वन को जा रहे हैं । क्या मेरा भी इतना पुण्य है कि मैं भी उनके चरणो मे आश्रय पा सकूं ?

पति को प्राणनाथ कहने वाली स्त्रिया तो बहुत मिल सकती हैं मगर इसका मर्म सीता जैसी विरली ही जानती है। पति का वन जाना सीता के लिये सुख की बात थी या दुख की ? यों तो पत्नी को छोडकर पति का जाना पत्नी के लिये दुख की बात ही है, पर सीता को दुख का अनुभव नही हो रहा है । उसकी एक मात्र चिन्ता यह है कि क्या मेरा इतना पुण्य है कि मैं भी पतिदेव की सेवा मे रह सकूं ? सीता के पास विचार की ऐसी सुन्दर सम्पत्ति थी । यह सम्पत्ति सभी को सुलभ है । जो चाहे, उसे अपना सकता है । जो ऐसा करेगा वही सुकृतशाली होगा ।

सीता सोचती है—मेरे पतिदेव तो राज्य त्याग कर वन जा रहे हैं । वे अपनी माता की इच्छा और पिता की प्रतिज्ञा पूरी करने वन जाते हैं, लेकिन हे सीता ! तेरा भी कुछ सुकृत है या नही ? क्या तेरा इतना सुकृत है कि तेरा और प्राणनाथ का साथ हो सके ? तूने प्राणनाथ के गले मे वरमाला डाली है, पति के साथ विवाह किया है, उनके चरणो मे अपने को अर्पित कर दिया है, इतने दिन उनके साथ ससार का सुख भोगा है तो क्या तेरा ऐसा भाग्य नही कि वन मे जाकर तू उनका साथ दे सके ?

सीता सोचती है—मैं राम के साथ भोग-विलास करने के लिये नही ब्याही गई हूं । मेरा विवाह राम के धर्म के साथ हुआ

है । ऐसी दशा मे क्या राम अकेले ही वन जाकर धर्म करेंगे ? क्या मैं उस धर्म का सहयोग देने से वचित रहूगी ? अगर मैं शरीर सहित प्राणनाथ के साथ न रह सकी तो मेरे प्राण अवश्य ही उनके साथ रहेंगे। मुझमे इतना साहस है कि अपने प्राणो को शरीर से अलग कर सकती हू । अगर राजमहल के कारागार मे मुझे कैद किया गया तो निश्चित रूप से मेरा निर्जीव शरीर ही कैद रहेगा। प्राण तो प्राणनाथ के पास उडकर पहुचे विना नही रहेंगे ।

प्राणानाथ को वन जाने की अनुमति मिल गई है और मुझे अभी प्राप्त करनी होगी। सासजी की अनुमति लिये बिना मेरा जाना उचित नही है । सासजी से अनुमति लू गी। जब उन्होने पुत्र को आज्ञा दी है तो पुत्रवधू को भी देंगी ही ।

सीता सोचती है—प्राणनाथ का वन जाना मेरे लिये गौरव की बात है। उनके विचार इतने ऊचे और उनकी भावना इतनी पवित्र है, इससे प्रगट है कि उनमे परमात्मिक गुण प्रगट हो रहे हैं। मैंने विवाह के समय इन्हें दूसरे रूप मे देखा था। आज दूसरे ही रूप में देख रही हू ।

रामचन्द्र जी ने कौशल्या को प्रणाम किया और विदा लेने लगे । तब पास ही मे खडी सीता भी कौशल्या के पैरो पर गिर पडी । सीता को पैरों के पास गिरी देखकर कौशल्या समझ गई कि सीता भी इस पिंजरे से बाहर जाना चाहती है, जिसे राम ने तोडा है ।

फिर कौशल्या ने सीता से कहा—बहू तुम चचल क्यों हो ?

सीता—माता ! ऐसे समय चचल होना स्वाभाविक ही है। आपके चरणों की सेवा करने की मेरी बड़ी साध थी। वह मन

की मन मे ही रह गई। कौन जाने अब कब आपके दर्शन होंगे ?

कौशल्या—क्या तुम भी वन जाने का मनोरथ कर रही हो?

सीता—हा मा ! यही निश्चय है। 'जिसके पीछे यहा आई हू, जब वही वन जा रहे हैं तो मैं किस प्रकार यहा रहूगी ? जब पति वन मे हो तो पत्नी राजमहल मे रहकर अर्धाङ्गिनी कैसे कहला सकती है ?

सीता की बात से कौशल्या की आखें भर आई। राम तो ठीक, पर यह राजकुमारी सीता वन मे कैसे रहेगी ? फिर सीता सरीखी गुणवती वधू के वियोग से सास को शोक होना स्वाभाविक ही था। कौशल्या ने सीता का हाथ पकडकर अपनी ओर खीच कर उसे बालक की तरह अपनी गोद मे ले लिया। अपनी आखो से वह सीता पर इस तरह अश्रुपात करने लगी, जैसे उसका अभिषेक कर रही हो। थोडी देर बाद कौशल्या ने कहा—पुत्री, क्या तू भी मुझे छोड जायगी ? तू भी मुझे अपना वियोग देगी ? राम को तो अपना धर्म पालन करना है, उन्हे अपने पिता के वचन की रक्षा करनी है, इसलिए वन को जाते हैं पर तुम क्यो जाती हो ? तुम पर क्या ऋण है ?

सीता इस प्रश्न का क्या उत्तर देती ? वह यही उत्तर दे सकती थी कि मैं राम के रग मे रगी हू। पति जिस ऋण को चुकाने के लिए वन जाते हैं, क्या वह अकेले उन्ही पर है ? नही, वह मुझ पर भी है। जब मैं उनकी अर्धाङ्गिनी हू तो पति पर चढा ऋण पत्नी पर भी है। पर सीता ने कोई उत्तर नही दिया। वह मौन रही।

कौशल्या समझा-बुझाकर सीता का राम-रग उतारना चाहती

है पर वह सीता जो ठहरी । रग उतर जाता तो सीता ही नहीं रहती । दूसरी कोई स्त्री होती तो इस अवसर से लाभ उठाती । वह कहती-मैं क्या करू ? मैं तो जाने को तैयार थी मगर सासजी नही जाने देती । सास की बात मानना भी तो बहू का धर्म है । पर सीता ऐसी स्त्रियो मे नहीं थी ।

कौशल्या ने सीता से कहा—बहू, विदेश प्रिय नही है । प्रवास अत्यन्त कष्टकर होता है । फिर वन का प्रवास तो और भी कष्ट-कर है । तू किसी दिन पैदल नहीं चली । अब काटो से परिपूर्ण पथ पर तू कैसे चल सकेगी ? तेरे सुकुमार पैर ककरो और काटो का आघात कैसे सह सकेंगे ?

आप सीता को कोई गुडिया न समझें, जो चार-कदम भी पैदल नहीं चल सकती । उसके चरित पर विचार करने से स्पष्ट मालूम हो जाता है कि वह सुख के समय पति से पीछे और दुख में पति से आगे रही थी । अतएव उसे कायर नही समझना चाहिये ।

सब ही बाजे लश्करी
सब ही लश्कर जाय ।
सेल धमाका जो सहै,
सो जागीरी खाय ।।
गलियारा फिरता फिरे,
बांध ढाल तलवार
शूरा तब ही जानिये ।
रण बाजे झकार ।।

स्त्रिया कहती हैं—हमें कायर तभी समझना जब हम दुख-

सुख में आगे न रहे। पति के आगे रहने वाली स्त्रिया भारत मे कम नहीं हुई हैं। सलूम्बर की रानी ने तो पति से पहिले ही अपना सिर दे दिया था। उसने कहा था—आपको मेरे शरीर पर मोह है तो पहले मेरा ही सिर ले लो। जो वीरांगना हसती-हसती पति के लिये अपना सिर दे सकती है उसे कौन कायर कह सकता है? वीरागना कहती है—हम सुख के समय ही कायर और सुकुमार हैं। सुख के समय ही हम सवारी पर बैठकर चलती हैं। लेकिन दुःख के समय हम पति से आगे रहती हैं। पति जो कष्ट उठाता है, उससे अधिक कष्ट उठाने के लिये तैयार रहती हैं।

कौशल्या सीता को कोमलागी समझकर वन जाने से रोकना चाहती हैं। वह कहती हैं—हे राम, मैं तुमसे और सीता से कहती हू कि सीता वन जाने योग्य नहीं है। मैंने सीता को अमृत की जड़ी की तरह पाला है। वह वन रूपी विषकटक मे जाने योग्य नहीं है। यह राजा जनक के घर पलकर मेरे घर मे आई है। जिसने जमीन पर पैर तक नही रखा, वह वन मे पैदल कैसे चलेगी? यह किरात-किशोरी अर्थात्-भील की लडकी नही है और न तापस-नारी है, जो वन में रह सके। दाख का कीड़ा पत्थर मे नहीं रह सकता। यह मेरी नयन-पुतली है, जो तनिक भी आघात नही सह सकती।

कौशल्या का कथन चाहे ममता के स्रोत से निकला हो मगर सीता के लिए वह परीक्षा है। अब सीता के राम-रस की परीक्षा हो रही है।

कौशल्या कहती हैं—जगल बडा दुर्गम प्रदेश है। यहा थोडी दूर जाने पर भी जल की झारी वाली दासी साथ रहती है पर

वहां दासी कहां ? वहां तो प्यास लगने पर पानी भी मिलना कठिन है। जब गरम हवा चलेगी तब मुह सूख जायगा। ऊपर से धूप भी तेज लगेगी, उस समय पानी कहा सुलभ होगा ? जगल मे पड़ाव नहीं है कि पानी मिल सके। इस प्रकार तू प्यास के मारे मरेगी और राम की परेशानी बढ जाएगी। यहां तुझे मेवा मिष्ठान मिलता है, वहा कडुवे-खट्टे फल भी सुलभ नही होगे। सीता, तू भूख-प्यास आदि का यह भयकर कष्ट सहन कर सकेगी ?

वहा न महल है, न गरम कपडे हैं और न सिगडी का ताप है। चलते-चलते जहा रात हो गई वही बसेरा करना पडता है। यही नही, जगल मे बाघ, चीता, रीछ, सिह आदि हिंसक जानवर भी होते हैं। तू उनके भयकर शब्दो को कैसे सुन सकेगी ? तूने कभी कठोर शब्द तो सुना ही नहीं है।

सीता सास की बातें सुनकर तनिक भी विचलित नहीं हुई। उसने सोचा—यह तो मेरे राम-रस की परीक्षा हो रही है। अगर इसमे मैं उत्तीर्ण हो गई तो मेरा मनोरथ पूरा हो जायगा।

सीता के शरीर पर हाथ फेरते हुए कौशल्या कहने लगी—देखती नही, तेरा शरीर कितना कोमल है। तू बचपन से कोमल शय्या पर सोई है। लेकिन वन मे शय्या कहा ? धरती पर सोने मे तुझे कितना कष्ट होगा ? उस समय राम के लिए तू भार हो जाएगी। प्रदेश मे स्त्रिया पुरुष के लिए भार रूप हो जाती हैं। फिर यह तो वन का प्रवास है। स्त्रिया घर मे ही शोभा देती हैं। जंगल मे भटकना उनके बूते का नही है।

माता कौशल्या की बात का राम ने भी समर्थन किया। यह सुनकर मुस्कराते हुए बोले—माता, आप ठीक कहती हैं। वास्तव

मे जानकी वन जाने योग्य नहीं है ।

माता के सामने जानकी के विषय मे कुछ कहते हुए राम लज्जित तो हुए लेकिन आपत्तिकाल मे सर्वथा चुप भी नहीं रह सकते थे । माता-पिता की मर्यादा को रक्षा करना पुत्र का धर्म है । किन्तु विकट प्रसग पर उस मर्यादा को कुछ सकीर्ण भी करना पडता है ।

राम सीता से कहने लगे—सुकुमारी ! वैसे मैं तुम्हें विलग नही करना चाहता पर मैं मातृभक्त हू । अतएव मैं कहता हू कि तुम्हे घर पर रह कर ही माता की सेवा करनी चाहिए । मैंने तुम्हे जितना समझ पाया है, उसके आधार पर कह सकता हू कि तुम शक्ति और सरस्वती हो । मैं तुम्हारी शक्ति को जानता हू । इसलिये तुम घर पर रहो । मेरे वियोग के कारण जब माता दु.खी हो तब तुम उन्हे सान्त्वना देना । मुझ पर पिता का ऋण है इस-लिये मेरा वन जाना आवश्यक है । तुम्हारे ऊपर कोई ऋण नहीं अतएव तुम्हारा जाना आवश्यक नही । इसके अतिरिक्त मेरी इच्छा भी यही है कि तुम घर पर रहोगी तो स्वय सुखी रहोगी और माता भी सुखी रह सकेंगी । अगर तुम मेरी सेवा के लिये वन जाना चाहती हो तो माता की सेवा होने पर मैं अपनी सेवा मान लूंगा । इतने पर भी हठ करोगी तो कष्ट उठाना पडेगा । हठ करने वाले को सदा कष्ट ही भोगना पडता है । इसलिये तुम मेरी और माता की वात मान जाओ । वनवास कोई साधारण वात नही है । वन मे वडे-वडे कष्ट हैं । हमारा शरीर तो वज्र के समान है । वैरियो के सामने युद्ध करके हम मजवूत हो गए हैं । लेकिन तुमने घर के वाहर कभी पैर भी रखा है ? अगर नही तो मेरी समता मत करो । वन मे भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी आदि के दुख अभी माता बतला

चुकी हैं। मैं अपने साथ एक पैसा भी नही ले जा रहा हू कि उससे कोई प्रबन्ध कर सकू गा। राजा का कोई काम न करना फिर भी राज्य सम्पत्ति का उपयोग करना मैं उचित नही समझता। इस स्थिति मे तुम्हारा चलना सुविधाजनक न होगा।

मैंने वल्कल-वस्त्र पहने हैं। वन जाकर मैं अपने जीवन की रक्षा के लिए सात्विक साधन ही काम मे लू गा। मैं वन-फल खाकर भूमि पर सोऊगा। वृक्ष की छाया ही मेरा घर होगी या कोई पर्णकुटी बनाकर कही रहूगा। तुम यह सब कष्ट सहन नही कर सकोगी।

राम बडी दुविधा मे पडे हैं। एक ओर सीता के प्रति ममता के कारण उसके कष्टो की कल्पना करके और माता को अकेली न छोड जाने के उद्देश्य से वह सीता को साथ नहीं ले जाना चाहते, दूसरी ओर सीता की पति-परायणता देख, वियोग उसके लिए असह्य होगा, यह सोचकर वह उसे छोड जाना भी नही चाहते। फिर भी वह यह चाहते हैं कि सीता वन के कष्टो के विषय मे धोखे मे न रहे। इसीलिए सारे कष्टों को उन्होंने सीता के सामने रख दिये।

राम और कौशल्या ने सीता को घर रहने के लिए समझाया। उनकी बातें सुनकर सीता सोचने लगी—यह एक विकट प्रसग है। अगर मैं इस समय लज्जा से चुप रह जाऊगी और घर मे ही बैठी रहूगी तो यह मेरे लिये स्त्री-धर्म का नाश करना होगा। इस प्रकार विचार कर और जी कडा करके सीता ने राम से कहा—प्रभो! आपने और माता जी ने वन के कष्टो के विषय में जो कुछ कहा है, सब ठीक है। आपने वन के कष्ट बतला दिये सो भी अच्छा

किया। लेकिन मैं हठ के कारण वन नही जा रही हू। आप विश्वास कीजिये कि मैं वन के कष्टो से भयभीत नही होती। बल्कि यह सुनकर तो वन के प्रति मेरी उत्सुकता और बढती जा रही है। मुझे अपने साहस और धैर्य की परीक्षा देनी है और मैं उस परीक्षा मे अवश्य सफल होऊ गी।

मैं सुख मे तो आपके साथ रही हूं तो क्या दुःख के समय किनारा काट जाऊं? सुख के साथी को दुःख मे भी साथी होना चाहिये। जो ऐसा नही करता वह सच्चा साथी नहीं, स्वार्थी है। पत्नी पति के सुख-दुःख की संगिनी है। आप मुझे वन के कष्ट बताकर वन जाने से रोक रहे हैं, मगर क्या मैं आपके सुख की ही साथिन हू? क्या मुझे स्वार्थपरायण बनना चाहिये? नही, मैं दुःख मे आपसे आगे रहने वाली हू।

राम का ऐसा पक्का रग सीता पर चढा था कि स्वय राम के छुटाए भी न छूटा। राम सीता को वन जाने से रोकना चाहते थे, पर सीता नही रुकी। वास्तव मे राम-रग वह है, जो राम के धोने से भी नही धुलता।

सीता कहती हैं—प्राणनाथ! जान पडता है, आज आप मेरी ममता मे पड गए हैं। मेरे मोह मे पडकर आपने जो कहा है उसका मतलब यह है कि मैं अपने धर्म का और अपनी विशेषता का परित्याग कर दू। यद्यपि आपके वचन शीतल और मधुर हैं लेकिन चकोरी के लिये चन्द्रमा की किरणें भी दाह उत्पन्न करती हैं। वह तो जल से ही प्रसन्न रहती है। स्त्री का सर्वस्व पति है। पति ही स्त्री की गति है। सुख-दुःख में समान भाव से पति का अनुसरण करना ही पतिव्रता का कर्त्तव्य है। मैं इसी कर्त्तव्य का

पालन करना चाहती हू । अगर मैं अपने कर्त्तव्य से च्युत हो गई तो घृणा के साथ लोग मुझे स्मरण करेंगे । इसमे मेरा गौरव नष्ट हो जायेगा । इसके अतिरिक्त आप जिस गौरव-पूर्ण काम को लेकर और जिस महान् उद्देश्य की सिद्धि के लिये वन-गमन कर रहे हैं क्या उसमें मुझे शरीक नही करेंगे ? आप अकेले ही रहेंगे । ऐसा मत कीजिये । मुझे भी उसका थोडा-सा भाग दीजिये । अगर मुझे शामिल नहीं करते तो मुझे अर्धाङ्गिनी कहने का क्या अर्थ है ? हां, अगर वन जाना अपमान की बात हो तो भले ही मुझे मत ले चलिए । अगर गौरव की बात है तो मुझे घर ही मे रहने की सलाह क्यो देते हैं ? आपका आधा अ ग घर मे ही रह जायगा तो आप विजय कैसे पा सकेंगे ? आधे अ ग से किसी को विजय नही मिलती ।

आप वन में मुझे भय हो भय बतलाते हैं मगर आपके साथ तो मुझे वन मे जय ही जय दिखलाई देती है । कदाचित् भय भी वहा होगा मगर भय पर विजय प्राप्त कर लेना कोई कठिन बात नहीं और ऐसी विजय मे ही सुख का वास है ।

कदाचित् आप सोचते होगे कि सीता मे आत्मबल नही है, इस कारण वन उसके लिये कष्टकर होगा । कदाचित् भय वहां होगा मगर अवसर मिलने पर मैं अपना बल दिखलाऊ गी । स्त्री के लिये जितने भी व्रत-नियम हैं और धर्म हैं उनमे से किसी मे भी चूक जाऊं तो मैं जनक की पुत्री नही ! अधिक क्या कहू, बस इतना ही निवेदन करना चाहती हू कि मैं आपकी अर्धाङ्गिनी हू, सुख-दु ख की साथिन हू । मुझे अलग मत कीजिये । वन के जो कष्ट आप सहेंगे, मैं भी सह लू गी । कोमलता कठोरता के सहारे और कठोरता कोमलता के सहारे रहती है । डाली के बिना पत्ती और पत्ती के बिना डाली नही रह सकती । दोनों का अस्तित्व सापेक्ष है । मैं

माता जी से भी यही प्रार्थना करती हू कि वे मुझे निस्सकोच आज्ञा दें। स्त्री के हृदय को स्त्री जल्दी और खूब समझ सकती है। इससे ज्यादा निवेदन करने की आवश्यकता ही नही है।

सीता सोचती है—जहा पति हैं, वहा सभी सुख हैं। जहा पति नही; वहा दुःख ही दुःख है। पति स्वय सुखमय है। उनके वियोग मे सुख कहा?

सीता फिर बोली—आप वन मे सताप कहते हैं पर वहा पाप तो नही है? जहा पाप न हो, वह सताप-सताप ही नही है, वह तो आत्मशुद्धि करने वाला तप है। आप भूख-प्यास का कष्ट बतलाते हैं लेकिन स्त्रिया इन कष्टो को कष्ट नही गिनती। अगर हम भूख-प्यास से डरती तो पुरुषो से अधिक उपवास न करती। भूख सहने मे स्त्रिया पक्की होती हैं।

सीता की बातें सुनकर कौशल्या सोचने लगी—सीता साधारण स्त्री नही है। इसका तेज निराला है। यह साक्षात् शक्ति है। राम और सीता मिलकर जगत् का कल्याण करेगे। जगत् मे नया आदर्श रखने के लिए इनका जन्म हुआ है। अतएव सीता को राम के साथ जाने की अनुमति देना ही ठीक है।

सीता की बातो से प्रभावित होकर कौशल्या ने सीता को आशीर्वाद दिया—बेटी, जब तक गगा और यमुना की धारा बहती है तब तक तेरा सौभाग्य अखण्ड रहे। मैंने समझ लिया कि तू मेरी ही नही पर सारे ससार की है। तेरा चरित्र देखकर ससार की स्त्रिया सती बनेंगी और इस प्रकार तेरा सौभाग्य अखण्ड रहेगा। सीते! तेरे लिये राजभवन और गहन वन समान हो। तू वन मे भी मगल से पूरित हो।

सीता सास का आशीर्वाद पाकर कितनी प्रसन्न हुई, यह कहना कठिन है। आशीर्वाद देते समय कौशल्या के मन की क्या अवस्था हुई होगी, यह तो कौशल्या ही जानती है या सर्वज्ञ भगवान् जानते हैं। राम और सीता कौशल्या के पैरो पर गिरे। कौशल्या ने अपने हृदय के अनमोल मोती उन पर बिखेर दिये और विदा दी।

सीता की भावना कितनी पवित्र और उच्च श्रेणी की थी! सीता सच्ची पतिव्रता थी। वह पति की प्रतिज्ञा को अपनी ही प्रतिज्ञा समझती थी। उसने अपने व्यक्तित्व को राम के साथ मिला दिया। सीता का गुण थोडे अ शो मे भी जो स्त्री ग्रहण करेगी उसे किसी चीज के न मिलने का या मिली हुई चीज के चले जाने का कभी भी दु ख नहीं होगा।

स्त्रियों को अगर सीता का चरित्र प्रिय लगेगा तो वे पहिले पतिप्रेम के जल मे स्नान करेंगी। पतिप्रेम के जल मे किस प्रकार स्नान किया जाता है, यह ब त सीता के चरित्र से समझ मे आ सकती है। राम से पहिले सीता का नाम लिया जाता है। सीता ने यदि पतिप्रेम-जल मे स्नान न किया होता और राजभवन मे रह जाती तो उसका नाम आदर से कौन लेता ?

सीता ने अपने असाधारण त्यागमय चरित्र के द्वारा स्त्री-समाज के सामने ऐसा उज्ज्वलता का आदर्श उपस्थित कर दिया, जो युग-युग मे नारी का पथ प्रदर्शन करेगा। पथ-भ्रष्ट स्त्रियो के लिये यह महान् उत्सर्ग वडे काम का सिद्ध होगा।

एक आजकल की स्त्रिया हैं कि जिन्हे वन का नाम लेते ही बुखार चढ आता है। सीता ने वन जाकर स्त्रियो को अवला कहने वाले पुरुषो को एक प्रकार से चुनौती दी थी। उसने सिद्ध किया

है कि स्त्रिया शक्ति हैं। सीता के द्वारा प्रदर्शित पथ पर स्त्रियो को चलना चाहिये ।

सीता का पथ कौन-सा है ? कैसा है ? इसका उत्तर देना कठिन है । पूरी तरह उस पथ का वर्णन नही किया जा सकता । एक कवि ने कहा है—

बेना आपणो बनाव,
घणा मोल को करां ।
पैली आपणी सत्यां रा,
पग लागणो करां ।। बेना० ।।
पति-प्रेम रा पवित्र,
नीर मांय सांपड्यां,
पीर-सासरा रा बखाण रा
सुवेष पैरलां ।
मेंहदी राचणी विचार
घरे काम आदरां ।। बेना० ।।

सीता के रोम-रोम मे पुनीत पतिभक्ति भरी हुई थी। पतिव्रता स्त्री के नेत्रो मे वह शक्ति होती है कि अगर वह किसी को पुत्र की तरह प्रेम की दृष्टि से देख ले तो उसका शरीर वज्रमय हो जाय और यदि क्रोध की दृष्टि से देख ले तो वह भस्म हो जाय।

जो स्त्री अपने सतीत्व को हीरे से बढ़कर समझती है, उसकी आंखो में तेज का ऐसा प्रकृष्ट पुञ्ज विद्यमान रहता है कि उसका सामना होते ही पापी की निर्बल आत्मा कापने लगती है ।

पति–पत्नी का मन अगर निष्कपट हो तो एक को दूसरे के मन की बात जान लेना भी कठिन नहीं है।

सीता की भांति क्या आज की बहिनें सम्पूर्ण विश्व को अपना समझती हैं? राज्य तो बड़ी चीज है पर आजकल तो क्या तुच्छ से तुच्छ वस्तुओं को लेकर ही देवरानी जेठानी में महाभारत नहीं मच जाता? भाई–भाई के बीच कलह की बेल नहीं बो देती? क्या जमाना था वह कि जब सीता इस देश मे उत्पन्न हुई थी। सीता जैसी विचारशील सती के प्रताप से यह देश धन्य हो गया।

कुलीन स्त्रियां, जहा तक सम्भव होता है, भाई–भाई मे विरोध उत्पन्न नहीं होने देती। यही नहीं वरन् किसी अन्य कारण से उत्पन्न हुए विरोध को भी शांत करने का प्रयत्न करती हैं। पतिव्रता नारी अपने पति को शरीर से भी अधिक मानती है। पति के प्रेम से प्रेरित होकर तो वह अपने शरीर की हड्डी—चमडी भी खो देती है लेकिन पति का प्रेम नही खोती।

कोई महिला कुचाल चलते हुए भी पतिव्रता बनने का ढोंग कर सकती है और अपने पति की आखो मे धूल झोक सकती है पर यह चालाकी ईश्वर के सामने नही चल सकती। पति हृदय की बात नही जानता मगर ईश्वर मनुष्य के हृदय को भी जानता है। वह सर्वज्ञ है, सर्वदर्शी है। जो उसको धोखा देने की कोशिश करेगी वह स्वय धोखे की शिकार होगी।

परम पिता के पास अच्छी या बुरी नारियो का इतिहास जैसा का तैसा पहुच जाता है। सती स्त्रियो के हृदयोद्गार कितनी शीघ्रता से ईश्वर के पास पहुचे हैं, इसके उदाहरण भी कम नहीं।

सीताहरण से रावण के वश का नाश हो गया। चित्तौड़

की राजपूत-सतियो की हृदयाग्नि ने मुगल वंश का इस तरह नाश किया कि आज उनके नाम पर रोने वाला भी नही है ।

द्रौपदी चीर-हरण के कारण ही कौरव वश का नाश हुआ । द्रौपदी का चरित्र जिसे विस्तार से देखना हो, उसे महाभारत में देखना चाहिए। सीता का पतिव्रत कुछ कम नही । उसका सतीत्व बडा ही जाज्वल्यमान है, पर द्रौपदी भी कुछ कम नही थी। वह एक प्रखर नारी थी । सीता सौम्यमूर्ति थी । द्रौपदी शाति का अवतार थी पर भीष्म पितामह आदि महापुरुषो के सामने भी भाषण देते वाली थी । वह वीरागना का काम पडने पर युद्ध-शिक्षा देने से भी नही चूकती थी ।

चदनबाला को ही देखिये। राजकुमारी होकर बिक जाना, अपने ऊपर आरोप लगने देना, सिर मुडवाना, प्रहार सहन करना, क्या साधारण बात है ? तिस पर उसे हथकडी-बेडी डाली गई और वह भौरये मे बन्द कर दी गई। फिर भी धन्य है चन्दनबाला महासती को, जो मुस्कराती ही रही और अपना मन मैला न होने दिया ।

सचमुच स्त्रिया वह देवी हैं, जिनके सामने सब लोग सिर नमाते हैं और आज ऐसी ही देवियो, वीर माताओं, वीर पत्नियो और वीर बहिनो की आवश्यकता है । लेकिन यह भी दृढ सत्य है कि स्त्रियो का निरादर करके ऐसी माताए और बहिनें नही बना सकते बल्कि उनका आदर करके ही बना सकते हैं।

पति और पत्नी का दर्जा बराबर है। तथापि दोनो मे जो अधिक बुद्धिमान् हो, उसकी आज्ञा कम बुद्धिमान् को माननी चाहिये। ऐसा करने से ही गृहस्थी मे सुख-शाति रह सकती है क्योकि

पति अगर स्वामी है तो स्त्री क्या स्वामिनी नहीं ? पति अगर मालिक कहलाता है तो पत्नी क्या मालकिन नहीं कहलाती ?

इसी तरह स्त्रियो के लिये अगर पतिव्रत धर्म है तो पुरुषों के लिये पत्नीव्रत धर्म क्यो नही ? धनवान् लोग अपने जीवन का उद्देश्य भोगविलास करना समझते हैं। स्त्री मर जाए तो भले मर जाए, पैसे के बल पर वे दूसरी शादी कर लेंगे। इस प्रकार एक पत्नीव्रत की भावना न होने से अनेक स्त्रिया पुरुषों की लोलुपता की शिकार होती हैं।

आज के पति धर्म-पत्नी को भूल रहे हैं। इसी कारण ससार मे दाम्पत्य जीवन दु खपूर्ण दिखाई देता है। आज साधारण तौर पर यह रिवाज चल पडा है कि पति एक पत्नी के मर जाने पर दूसरी और दूसरी के मर जाने पर तीसरी ब्याह लाता है। मगर यह अन्याय है। पुरुष अपनी स्त्री को तो पतिव्रता देखना चाहते हैं पर स्वय पत्नीव्रतधारी नहीं बनना चाहते। पुरुषो ने अपनी सुख-सुविधा के अनुकूल नियम घड लिये हैं। परन्तु शास्त्रकार स्त्री और पुरुष के बीच किसी प्रकार का अनुचित भेद न करते हुए, समान रूप से पुरुष को पत्नीव्रत और स्त्री को पतिव्रत पालने का आदेश देते हैं। शास्त्रकार उत्सर्ग मार्ग के रूप में ब्रह्मचर्य पालने का आदेश देते हैं। अगर पूर्ण ब्रह्मचर्य पालने की शक्ति न हो तो पुरुष को पत्नीव्रत और पत्नी को पतिव्रत पालने को कहते हैं। लेकिन पुरुष अपने आपको स्वपत्नी सन्तोषव्रत से मुक्त समझते हैं और सिर्फ पत्नी से स्वपति-सतोषव्रत का पालन कराना चाहते हैं। वे यह नही सोचते कि जब हम अपने व्रत का पालन नही करते तो स्त्री से यह आशा कैसे रख सकते हैं कि वह अपने व्रत का पालन करे ही ! अतएव पुरुषो और स्त्रियो के लिये उचित मार्ग यही है कि दोनो

अपने-अपने व्रत का पालन करें। जो व्रत का भली-भांति पालन करता है, उसका कल्याण अवश्य होता है।

वे मनुष्य वास्तव मे धन्य हैं, जो सौन्दर्यमूर्ति, नवयौवना स्त्री को देखकर भी विचलित नही होते किन्तु अपने निज स्वरूप मे स्थिर रहते हैं। उनको कवि ने तो भगवान् की उपमा दे दी ही है किन्तु विचार करते हुए यह उपमा अतिशयोक्ति नही है। क्योंकि इन्द्र, चन्द्र, नागेन्द्र और नरेन्द्र भी जिसकी आंख के इशारे पर नाचते रहते हैं, उस मनोहरा स्त्री को देखकर जो क्षुब्ध नही होते, वे मनुष्य तो क्या देवों के भी पूज्य हैं और ससार मे ऐसे महापुरुष तो बहुत ही कम हैं। जघन्य पुरुष पत्नी होते हुए भी किसी रूपवती को देखकर और उसे अधीन करने के लिए आकाश-पाताल एक कर डालते हैं और उचित अनुचित सभी उपाय काम मे लेते हैं। न बोलने जैसे वचन बोलते हैं और स्त्री के दास होकर रहना भी स्वीकार करते हुए नही सकुचाते। कामान्ध मनुष्य यह नही सोचता कि मैं कौन हूं? किस कुल मे उत्पन्न हुआ हूं? मेरी व मेरे खानदान की प्रतिष्ठा कैसी है? और मैं यह क्या कर रहा हूं? मैंने जब विवाह किया था, तब अपनी पत्नी को मैंने क्या-क्या अधिकार दिये थे? उसे क्या-क्या विश्वास दिया था और अब उसका हक, उसका अधिकार दूसरी को देने का मुझे क्या हक है?

घर की रहती हैं, न घाट की ।

## ४–पतिव्रता का आदर्श

गुर्जर सम्राट् महाराजा सिद्धराज ने भी एक मजदूरनी के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर क्या-क्या चेष्टाए कीं, सो तो 'सती जसमा' पढ़ने से ही मालूम होगा । उसके चरित्र की कथाए आज भी गाने बन-बन कर गुजरात भर मे घर-घर गाई जा रही हैं ।

गुजरात के पाटन नगर के महाराज सिद्धराज सोलकी ने एक तालाव खुदवाना आरम्भ किया था । उसकी खुदाई के लिये जो मजदूर आए थे, वे जाति के 'ओड' थे । उन्ही मे एक मजदूर टीकम नाम का था, जिसकी पत्नी जसमा थी ।

जसमा युवती थी और साथ-साथ अत्यन्त सौन्दर्यमयी भी थी । तालाव के वाध पर वार-बार मिट्टी ले जाकर डालती हुई जसमा पर एक दिन महाराज सिद्धराज की नजर पड गई और उसे देखते ही प्राणपण से चेष्टा करके वे उसे अपनाने की कोशिश करने लगे ।

तालाव का काम चालू हुए करीव पन्द्रह दिन हो चुके थे । महाराज को जब भी जसमा याद आती, वे तालाव पर पहुच जाते । इन पन्द्रह दिनो मे एक दिन भी ऐसा नहीं गया कि जिस दिन महाराज तालाब पर न पहुचे हो ।

एक दिन महाराज कुछ और जल्दी आ गए। यद्यपि मध्याह्न बीत चुका था परन्तु समय बहुत था । धूप भी कडाके की पड रही थी । ओड लोग खुदाई कर रहे थे और उनकी स्त्रिया टोकरियों

मे मिट्टी भरकर फेंक रही थी । महाराज को ऐसी धूप मे आया देख सभी को आश्चर्य हुआ । कुछ देर तक महाराज इधर-उधर घूमते रहे । आग बरस ही रही थी । महाराज ने मौका पाकर जसमा से पानी मागा ।

जसमा महाराज को इन्कार तो कैसे कर सकती थी ? वह शरमाती हुई पानी का प्याला महाराज के पास लाई ।

महाराज ने पानी पीते-पीते ही कहा—तुम्हारा ही नाम जसमा है ? अचानक महाराज के मुह से अपना नाम सुनकर जसमा शरमा गई । लज्जा की रेखा उसके मुह पर आई और आते ही उसका सौन्दर्य और अधिक खिल उठा । जसमा ने महाराज को तीन-चार बार इस झाड के नीचे देखा था । उसने सक्षेप मे ही उत्तर दिया—'जी' । राजा पानी पी गया और फिर दूसरी बार पानी मागा और साथ ही दूसरा प्रश्न भी किया ।

महाराज— जसमा ! तू ऐसी कडी धूप कैसे सहती होगी ?

जसमा—क्या करें महाराज ! हम क्या राजा हैं ? मजदूरी करते हैं और गुजारा चलाते हैं । जसमा ने पानी का पात्र दूसरी बार देते हुए नजर दूसरी तरफ रखकर जबाव दिया ।

महाराज—परन्तु ऐसी धूप मे ?

जसमा—नही तो पूरा कैसे पडे ? बोलते-बोलते अधिक देरी हो जाने के डर से जसमा ने खुदती हुई जमीन पर दृष्टि डाली और अपने पति को काम करता हुआ देखकर झोली मे सोते हुए बालक को झूला देती हुई चली गई । महाराज देखते रह गए । पर महाराज की इच्छा उसे प्राप्त करने के लिए बलवती हो उठी ।

जिस मनुष्य के हृदय मे किसी को देखकर विकार उत्पन्न हो जाता है, उसे वही धुन लग जाती है कि इसे मैं कैसे प्राप्त करू और अपनी प्रेयसी बनाऊ ? उस लालसा के वेग मे वह अपना आपा भी भूल जाता है। अपनी एव पूर्वजो की इज्जत का जरा भी ख्याल नहीं रखता हुआ ऐसे प्रपच रचता है, जिन्हे समझना बडी ही कठिन बात है। इस फदे मे फसा हुआ मनुष्य सभी कुकृत्य कर अपना इहलोक और परलोक दोनो ही बिगाड़ लेता है।

जिस दिन महाराज ने जसमा के हाथ से पानी पीया था उस दिन के बाद से तो बराबर तालाब पर जाना और प्रसग पाकर उससे बातचीत कर उसे अपनाना महाराज का ध्येय बन चुका था। एक दिन इसी प्रकार वे पेड के नीचे खडे थे। जसमा ने आकर बच्चे को झुलाया और चलने लगी कि पीछे से धीमी आवाज आई— जसमा !' जसमा ने पीछे फिर कर देखा तो महाराज थे। वह चुपचाप खडी रह गई।

महाराज—जसमा ! ऐसी मेहनत करने के लिये तू बनी है, यह मैं नहीं मानता। फिर क्यो इस तरह तू जीवन बरबाद कर रही है ?

जसमा—क्या करें महाराज ! हमारा धन्धा ही ऐसा है, जसमा सकुचाते हुए बोली।

महाराज—मैं तुम्हारे लिए यह सुविधा किये देता हू कि तुम आज से तालाब के किनारे पर बैठी हुई अपने बच्चे का पालन किया करो। मिट्टी मत उठाया करो। मिट्टी उठाने वाले तो बहुत हैं।

जसमा—आप मालिक हैं, इसलिये ऐसी कृपा दिखाते हैं

परन्तु मैं विना मेहनत किये हराम का खाना नही चाहती। मेहनत करना मैं अच्छा समझती हू।

महाराज—जसमा! तेरा शरीर अत्यन्त सुकुमार है, मिट्टी ढोने लायक नही। इसकी कदर तो कद्रदान ही कर सकता है। तू मिट्टी ढोकर इसका सत्यानाश मत कर।

जसमा—महाराज! विना मेहनत किये बैठे-बैठे खाने से कई प्रकार के रोग हो जाते हैं। मुझे भी कोई रोग हो जाए और वैद्य लोग फीस मागे तो हम मजदूर कहा से लाए? हम मजदूरो के पास धन कहा है?

हिस्टीरिया का रोग, जिसे सयानी औरतें भेडा-चेडा कहती हैं और जिसके हो जाने पर अक्सर देवी-देवताओ और पीरो के स्थान पर ले जाना पडता है, वह प्राय परिश्रम न करते हुए बैठे-बैठे खाने से ही होता है। यह रोग जितना गरीब स्त्रियो को नही होता उतना धनवान् स्त्रियो को होता है। जहा परिश्रम नही किया जाता वहा यह रोग जल्दी लागू होता है। फिर वैद्यो की हाजरी और देवी-देवताओ की मिन्नतें करनी पडती हैं। महाराज, मैं ऐसा नही करना चाहती। मेरा काम अच्छी तरह चल रहा है। परिश्रम करने से मेरा शरीर स्वस्थ रहता है। आप फिक्र न करें।

महाराज—जसमा! मैं फिर कहता हू कि तू जगल मे बसने योग्य नही है। देख तो, यह तेरा कोमल शरीर क्या जगल मे भटकने योग्य है? तू मेरे शहर मे चल! 'पाटन' इस समय स्वर्ग बन रहा है और मैं तुझे रहने के लिए अत्यन्त सुन्दर जगह दिलाऊगा।

जसमा समझ गई कि राजा ने पहला दाव न चलने से

दूसरा पासा फैंका है और मुझे लोभ दिया जा रहा है।

जसमा— महाराज, कहां तो यह आनन्ददायक जंगल और कहां गन्दा नगर ? जिस प्रकार गर्मी के मारे कीडे–मकोडे भूमि मे से निकल कर रेंगते हैं, उसी प्रकार शहरो के तग मार्ग में मनुष्य फिरते हैं। वहा अच्छी तरह चलने के लिए मार्ग भी तो पूरा नहीं मिलता। जगल मे तो सदा ही मगल है। ऐसी शुद्ध और स्वच्छ वायु और विस्तृत स्थान शहरो में कहां है ?

महाराज – जसमा ! तेरी बुद्धि बिगडी हुई है। गवारो को गवारपना ही अच्छा लगता है। इसी से तू ऐसी वातें कर रही है। जगल की रहने वाली तू शहर का मजा क्या समझे ! चल, मैं तुझे बडे आराम से महल में रखूंगा। महाराज ने डाट–डपट कर फिर लालच दिखाया।

जसमा—चाहे आप मेरी ढिठाई समझें या गवारपन, सच्ची बात तो यह है कि जैसा आपको नगर प्रिय है, वैसा ही मुझे जगल प्रिय है। शहर के आदमी जैसे मन के मैले होते हैं वैसे जगल के नही। बडे–बडे शहर आज पाप के किले बने हैं। चोर जुआरी, व्यभिचारी, नशेवाज आदि–आदि सभी तरह के मनुष्य शहरों मे होते हैं। देहातो मे ये वातें अधिकाश नहीं होती हैं। यहां किसी का सोने–चांदी का जेवर भी पडा रह जाय तो देहाती लोग उसके मालिक को ढूंढकर उसे पहुचाने की चेष्टा करेंगे। यह बात शहरो मे नहीं है। शहरों के लोग तो छोटी से छोटी वस्तु के लिये भी परस्पर हत्या करने से नहीं चूकते हैं।

महाराज—तेरा पति कहा है, जिस पर तू इतना गर्व कर रही है ? जरा मैं भी तो देखूं, वह कैसा है ?

जसमा—वह जो कमर कस कर काम कर रहा है और जिसके सिर पर फूल का गुच्छा है।

महाराज—क्या तालाब मे ही है ?

'हा' कहकर जसमा झूले की तरफ गई और बच्चे को झूला देकर अपने काम मे लगने के लिए चली। मगर पीछे से महाराज ने आचल पकड रखा था, जिसे देखकर जसमा बोली—महाराज, यह क्या ?

महाराज—क्या वही तेरा पति है ? कहा तू और कहां वह ? 'कौए के गले मे रत्नो की माला ?' उस मिट्टी खोदने वाले के पीछे तू इतनी इतरा रही है और मेरा निरादर कर रही है। हसनी कौए के पास नही सोती। इसलिये हसनी को कौए के पास छोडना ठीक नही। तू महल मे चल। महल मे ही तू शोभा देगी। देख! तेरे पति को तेरे ऊपर विश्वास नही है। वह तेरी तरफ टेढा-टेढा देख रहा है। उसका देखने का ढग ही बतला रहा है कि तुझ पर न तो उसका विश्वास ही है और न प्रेम ही। ऐसा आदमी तेरी कदर क्या जाने ? ऐसे अविश्वासी पति के पास रहना क्या तुझे उचित है ?

जसमा—महाराज! सच्चे को ससार मे जरा भी भय नही है। मेरे पति का मेरे प्रति पूर्ण विश्वास है। मैं अपने पति के सिवाय अन्यान्य पुरुषो को भाई मानती हू। यह अविश्वास तो आप लोगो मे होता है। मेरे मन मे यदि पति के प्रति अविश्वास हो तो पति को मेरे प्रति अविश्वास हो। मेरा पति मुझे नही देख रहा है पर आपकी बिगडी हुई दृष्टि को देख रहा है। महाराज, हम तो मजदूर हैं। मिट्टी उठाये बिना काम कैसे चलेगा ? पर

आपके महल में रानियो की क्या कमी है ?

महाराज—पर जसमा ! एक वार तू महल देख तो आ।

जसमा—महाराज, पाटन के महल मे रहने की अपेक्षा मैं अपने झोंपडे को किसी तरह कम नहीं समझती । राजा की रानी होने की अपेक्षा मैं एक ओड की स्त्री कहलाना अधिक पसन्द करती हू । आप सरीखे का क्या भरोसा ? आज आपने मेरे साथ ऐसी बात की। कल आपकी नजर दूसरी तरफ झुकेगी । यही गति रही तो पाटन के नरेश पर कौन विश्वास करेगा ? इसलिये आप यहां से पधारिये और महलो मे रहकर अपनी रानियो को ही अपने महल के सुख और वैभव दीजिये । गुजरात के अन्दर ऐसे भी राजा होते हैं, यह आज मालूम हुआ । और जसमा तेजी से चल दी ।

महाराज क्रोधोन्मत्त हो उठे। इसके बाद की कथा तो बहुत लम्बी है । राजा ने ओड लोगों पर अनेकों अत्याचार किये । जसमा को कैद किया । फिर अनेकों कष्ट सहन करने के बाद एक दिन मौका-पाकर ओड लोगो का सरदार और उसकी पत्नी जसमा कुछ लोगो को साथ लेकर भाग निकले । भागने की रातों-रात कोशिश की मगर अनिष्ट तो सिर पर मडरा ही रहा था । अत विपत्ति ने पीछा नही छोडा । राजा को पता लग गया और वह कुछ सशस्त्र सैनिको को साथ लेकर इन लोगो के पीछे भागा । कुछ ही दूर जाने पर ये लोग पकड लिये गए ।

वीर ओडो ने व्यूह रच लिया । बीच मे जसमा थी । राजा के सैनिक शस्त्रों से सुसज्जित थे। ओडो के पास भी शस्त्र थे पर नाम मात्र के । एक आर्य महिला की प्रतिष्ठा के खातिर उन्होने अपने मरने का भय और जीवन की आशा छोड दी थी ।

महाराज सिद्धराज ने नजदीक जाकर कहा—तुम लोग मरने को तैयार तो हुए हो पर जीना चाहने हो तो जसमा को मुझे सौंप दो और सब चले जाओ। किसी का बाल भी बांका नहीं होगा। पर सब ओडो ने महाराज का तिरस्कार किया।

सिद्धराज आग-बबूला हो गए और आक्रमण करने का हुक्म दिया। टपाटप निःशस्त्र ओड लोग धरती चाटने लगे। कितने ही मरे और कुछ भाग निकले और अन्त में ओडों का नायक टीकम, जसमा का प्रिय पति भी मारा गया। जीवित रही केवल जसमा।

सिद्धराज ने हुक्म दिया और सैनिकों ने शस्त्र गिरा दिये। रक्त-रजित भूमि पर जसमा निर्भीक खडी थी। महाराज घोडे से उतर कर जसमा के पास पहुच गए और बोले—जसमा!

जसमा—महाराज, यह आशा छोड़ ही दीजिये। आपकी इच्छा पूरी होने वाली नही है।

राजा—जसमा, तू देख तो सही, मेरा दरबार कितना भव्य है! ये महल कैसे बने हुए हैं! कितने अच्छे बाग-बगीचे हैं! तू इन सब की स्वामिनी होगी। महाराज ने लालच दिखाया।

जसमा—महाराज, जगल के प्राकृतिक दृश्य के सामने आपके ये बाग-बगीचे सब धूल हैं। जिस तरह सूर्य के सामने तारे काति-हीन हो जाते हैं, उसी तरह प्राकृतिक जगल के सामने आपके बगीचे कुछ नही। जो जगल मे नही रह सकता, वह भले ही बाग मे रहे। मुझे तो इन बागो और महलो की जरूरत नही है।

महाराज—जसमा! तुझ मे सोचने, विचारने व अपना लाभालाभ देखने की शक्ति नही है। इन महलो में तुझे मृदग के

मीठे सुरीले स्वर और गायन की मधुर तान सुनने को मिलेगी।

जसमा—महाराज! आपके गायन और बाजो मे विष भरा है। मुझे ऐसा स्वर अच्छा नहीं लगता। मेरा मन तो जगल मे रहने वाले मोर, पपीहे और कोयल की आवाजो से ही प्रसन्न रहता है। मेरे कान तो इन्हीं की टेर सुनने को व्याकुल रहते हैं।

महाराज—जसमा, यहां तू रूखी-सूखी रोटी खाकर शरीर का सत्यानाश करती रही है। मेरे महलो मे चलकर देख, वहां तेरे लिये अनेक तरह के मेवा-मिष्टान्न तैयार हैं, जिनसे तेरा शरीर चमक उठेगा।

जसमा—महाराज! आपके महल का आराम तो आपकी रानियों को ही मुबारिक हो। मैंने तो घाट खा रखी है। मेरे पेट मे तो पकवान पच नही सकते। मेरे लिये तो राब व दलिया ही अच्छे हैं। महाराज! आप तो पिता तुल्य हैं, प्रजा के रक्षक हैं। गुर्जर सम्राट् को ऐसा करना शोभा देता है?

महाराज—जसमा, यह सुनने का मुझे अवकाश नही। यह तो मैंने बहुत सुन रखा है। यदि तू हा कहती है तो मैं आनन्द से तुझे महल मे रखने को तैयार हू, और अगर इन्कार करेगी तो मैं वापिस लौटने वाला नही हू, तुझे जबर्दस्ती चलना पड़ेगा।

जसमा—अपना बल आजमा लीजिये। मैं भी देखती हू कि आप किस तरह जबर्दस्ती ले चलते हैं। जसमा जोशपूर्वक बोली—महाराज! कही जाकर पाटन की पटरानी तो दूसरी ढूंढो।

महाराज—जसमा, तुझे खबर है कि तू निःशस्त्र है।

जसमा—कोई परवाह नहीं।

सिद्धराज चिढ गए और सैनिको की तरफ मुंह कर बोले-तुम लोग दूर चले जाओ। सैनिको ने आज्ञा का पालन किया। सिद्धराज बिलकुल जसमा के पास आए और बोले, क्यों अभी और चमत्कार देखना है ?

जसमा—महाराज, दूर रहना।

महाराज—क्यो ?

जसमा—मैं पाटन चलने को तैयार हू। जसमा ने युक्ति का प्रयोग किया।

सिद्धराज आश्चर्य-मुग्ध हो गया और कहने लगा—पहले क्यो नहीं समझी ?

जसमा अनसुनी करती हुई बोली—परन्तु मुझे पाटन मे ले जाकर करोगे क्या ?

सिद्धराज - गुर्जर देश की महारानी बनाऊंगा।

जसमा—महारानी ? महारानी तो बनाना अपनी रानी को, मैं महारानी बनकर क्या करूंगी ? जसमा ने अपनी आखो को स्थिर करते हुए कहा और साथ ही महाराज को असावधान देखकर छलाग मार कर महाराजा के हाथ से कटार छुडाने के लिये हाथ मारा। महाराज जसमा का हाथ अलग करते हैं तब तक तो कटार जसमा के हाथ मे पहुच चुकी थी। वह गरजकर बोली—महाराज ! चौंकना मत, मैं अभी तुम्हारे सैनिको के देखते-देखते तुम्हारा खून पी सकती हू और तुम्हारे किये का बदला ले सकती हू परन्तु मैं ऐसा करना नही चाहती। मैं भले हो विधवा हुई पर गुर्जरभूमि को विधवा नही बनाना चाहती। यह कहने के साथ

ही जसमा कटार उठाती हुई बोली—लो ! जिस रूप के कारण तुमने मेरा परिवार नष्ट किया है, उसका खोखा सम्हालो और जसमा ने कटार हृदय में भोक ली ।

वीरागना सती जसमा ने और कोई उपाय न देखकर वीरता का परिचय देते हुए अपना बलिदान देकर ससार के सामने स्त्रीधम का उच्च आदर्श स्थापित किया है ।

जसमा का जीवन तो पवित्र था ही पर तु उसमे इन्द्रिय-सयम और मनोबल भी उच्च कोटि का था। महाराज ने उसे लुभाने के लिए अनेको प्रयत्न किये। खान-पान, वस्त्राभूषण गान-तान, महलादि के अनेको प्रलोभन दिये परन्तु पतिव्रता इन सब चीजो को अपने जीवन को पवित्र बनाए रखने में विघ्न-स्वरूप समझती है, यह जसमा ने अच्छी तरह बता दिया ।

इसके विपरीत आज की अनेक नारियाँ उत्तम-उत्तम भोजन, उत्तम वस्त्राभूषण, उत्तम रहन-सहन के पीछे बावली होकर मौज-शोक, ऐश-आराम को ही सब कुछ समझकर अपने धर्म-कर्म को भूल जाती हैं और अपनी जाति, समाज व देश को कलकित करने की कोशिश करती हैं । उनके लिए जसमा का चरित्र एक पाठ है, एक उज्ज्वल उदाहरण है । जसमा ने बता दिया है कि छोटी से छोटी जाति मे भी नारी सती, पतिव्रता और वीरागना हो सकती है और जब कि छोटी-छोटी जाति मे भी ऐसे नारीरत्न होते हैं तो बडे-बडे घराने अत्यन्त ऊचे कहलाने वाले कुल—खानदान हैं, उनमे प्रत्येक नारी को कैसा होना चाहिए, यह स्पष्ट है ।

परन्तु पहले के समय की अपेक्षा भी हमारा आज का जीवन अत्यन्त दूषित हो गया है। उस पर भी शहरो का वातावरण तो

गन्दा है ही पर गावो मे भी इसका असर होना शुरु हो गया है। पहले जहा किसी गाव के एक घर की लडकी को समस्त गाव वाले अपनी बेटी मानते थे और बहू को अपनी बहू, वहा आज एक ही घर मे भी एक-दूसरे के सम्बन्ध को पवित्र बनाए रखना कठिन हो गया है। फिर भी आज भी सीता, अ जना, सावित्री-सरीखी नारिया मिल सकती हैं पर राम, पवन व सत्यवान् जैसो का तो कही दर्शन भी नही हो सकता।

पुरुष जाति मे स्वार्थ की भावना पूर्ण रूप से घर कर गई है। आज का प्रत्येक पुरुष तो अपनी पत्नी को पूर्ण पतिव्रता देखना चाहता है पर अपने लिए पत्नीव्रत का नाम आते ही नाक भी चढाता है। पत्नी को श्मशान मे फूक कर आ भी नही पाते और दूसरी शादी करने के लिए उतावले हो उठते हैं। यह स्वार्थ-वृत्ति नही तो और क्या है ? प्राचीन समय मे रामचन्द्र जी ने सीता के अभाव मे किसी तरह भी दूसरी पत्नी न लाकर अश्वमेध यज्ञ मे सीता की स्वर्णमूर्ति बनवा कर ही सीता की पूर्ति की थी, क्योकि रामचन्द्रजी एक पत्नीव्रत के व्रती थे। उसी प्रकार यदि आज भी पतिव्रत की ही तरह पत्नीव्रत को भी उच्च स्थान नही दिया जाता तो स्त्री-पुरुषो का जीवन बहुत आदर्शमय नही हो सकता।

आजकल तो स्त्रियो की समस्या को लेकर भारी आदोलन खडा हो रहा है। स्त्री-सुधार के लिये गर्मागर्म व्याख्यान दिये जा रहे हैं। बडे-बडे अखबारो और पुस्तको मे बहस छिड रही है। स्त्रियो को बराबरी के अधिकार दिलाने को उतावले हो रहे हैं। पर पुरुष यह नहीं देखते कि हम भावनाओ के वेग मे बहकर गलत रास्ते पर जा रहे हैं। स्त्रिया अपने उद्धार-आदोलन से फायदा उठाकर पुरुषो के जुल्मों और अत्याचारो को गिन-गिन कर नारी

और पुरुष के बीच के अन्तर को और बढ़ाए चली जा रही हैं।

यह अनुचित है। स्त्रियो को गलत-मार्ग पर चलाने की अपेक्षा उचित यही है कि पुरुष अपने सच्चे कर्त्तव्य और आदर्श को ख्याल मे रखकर राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर आदि को अपने जीवन में पथप्रदर्शक समझें और स्त्रिया सीता, सावित्री, अ जना, दम-यन्ती, मीरा आदि को आदर्श बनावें तथा दोनों एक-दूसरे के प्रति मधुरता, सरलता, सहानुभूति भरा व्यवहार रखकर एक-दूसरे के जीवन को ऊचा उठाए तथा एक-दूसरे के दोषो को निकाल कर गिनाने की अपेक्षा एक-दूसरे की कठिनाइयों, व एक-दूसरे के सुख-दु ख को समझने की चेष्टा करें।

आजकल का समय कुछ विचित्र-सा ही है। अपने कौटुम्बिक जीवन को मधुर बनाने की तरफ तो किसी का ध्यान नहीं है पर जाति, समाज और देश के उत्थान के लिये सभी प्रयत्न कर रहे हैं। यह तो वही हुआ, जैसे जड को न सीचकर पत्तियो में पानी देना। इसका नाम उन्नति नही है। समाज का उत्थान इस प्रकार नहीं हो सकता। कारण कि जिस नीव पर हम समाजोद्धार के भव्य महल का सुनहरा स्वप्न देख रहे हैं, वह नीव खराब है। समाज की नीव कुटुम्ब है। अनेको समाज-सेवको, नेताओ के घरेलू जीवन अत्यन्त दु ख-पूर्ण होते हैं। पति-पत्नी में जैसा परस्पर सम्बन्ध होना चाहिए वैसा कभी नहीं रहता और यही वजह है कि स्त्री का सहधर्मिणी नाम बिलकुल उलटा बनता जा रहा है। पुरुष जमाने भर के कामो मे इस प्रकार डूबे रहते हैं कि जरा भी वे घर का ख्याल नही रखते और स्त्रिया पति का प्रेम न पाकर, बल्कि समानता का खिताब पाकर, पुरुषो के विरुद्ध शिकायतें दर्ज किया करती हैं।

समाज की उन्नति की जड सुखमय, शान्त और संतोषयुक्त गृह ही है और यह तभी हो सकता है जब कि पति-पत्नी एक-दूसरे के अन्दर खो जाने की कोशिश करें। और एक ही नही हर घर में इसी प्रकार सुखमय दाम्पत्य जीवन विताने की कोशिश की जाय। एक के ही किये यह नही हो सकता। कहते हैं—

एक बार अकबर ने बावडी खुदवाई। पानी उसमे बिलकुल नहीं था। बीरबल ने उसे सलाह दी कि शहर भर से कह दिया जाय कि प्रत्येक व्यक्ति रात को इस बावडी मे एक-एक घड़ा दूध डाल जाय। ऐसा ही किया गया। शहर भर मे मुनादी करवा दी गई कि रात को हर एक को इसमे एक घडा दूध छोड देना पडेगा। रात होने पर प्रत्येक ने सोचा कि सब तो दूध डालेंगे ही, यदि मैं चुपके से एक घडा पानी डाल आऊ तो उतने सारे दूध में क्या मालूम पडेगा ? सब ने इसी प्रकार किया। सुबह देखा गया तो बावडो पानी से भरी थी। दूध का तो नाम भी नहीं था।

इसी प्रकार पति और पत्नी दोनो के सहयोग से घर का सुधार और सभी घरो से समाज का और समाज से देश का सुधार होना निश्चित है। पर समाज के सुधार से यह तात्पर्य हरगिज नहीं है कि स्त्रिया पढ लिखकर एकदम ही आप-टूडेट हो जावें, पुरुषो की गलतिया ढू ढ-ढू ढ कर अपनी गलतियो को सुधारने की अपेक्षा बदला लेने की भावना लिये हुए बरावरी का दावा करती जाए। नारी घर की देवी है। पुराणादि मे पति को देवता बताया गया है, पर इसका यह मतलब नहीं कि पत्नी देवी नहीं है। हमारे गृहो मे तो हर बात मे पत्नी का महत्त्व और जिम्मेवारी पति से भी अधिक है क्योंकि स्त्री ने ही पुरुष को जन्म दिया है। अत यह विचार करना कि पुरुष जैसा करते हैं, हम भी वहीं क्यो न

करें, अनुचित है। यह कोई वजह नहीं कि पुरुष गिर गए हैं तो नारियों को भी गिरते ही जाना चाहिये। नही, बल्कि यह सोचना चाहिए कि स्त्री ही समाज का निर्माण करने वाली है क्योकि वह पुरुष का निर्माण करती है। अत एक पुरुष के ऊचे उठने अथवा गिरने से समाज मे जितनी खराबी नहीं आती, उतनी एक स्त्री के गिरने पर आती है। इसलिए आज, जबकि पुरुषों ने अपना पुरातन तेज, गौरव खो दिया है, तब तो नारी का अनिवार्य फर्ज है कि वह अपने जीवन को पवित्र रखते हुए अपने त्याग, सेवा कष्टसहिष्णुता आदि से सच्चे नारीत्व का, सच्चे दाम्पत्य का आदर्श उपस्थित कर अपना, अपने पति का, व आगे चलकर अपनी सन्तान का जीवन उज्ज्वल बनाए।

हिन्दू नारी का सारा जीवन ही कष्टसहिष्णुता से भरा हुआ, त्यागमय और सेवामय होता है। दाम्पत्य जीवन से सेवा बडी ऊची और कल्याणकारी वस्तु है। इससे चाहे दूसरो को पूर्ण खुशी न भी हो पर अपना मन स्वय ही बडा पवित्र और निर्मल हो जाता है। दाम्पत्य जीवन को मधुर और सुखी बनाने के लिये अथक परिश्रम और सेवा की जरूरत पडती है। उसके बिना नारी का काम नही चल सकता। और वह भी सिर्फ पति की ही नही अपितु अपने कुटुम्ब की सेवा का भी जबर्दस्त बोझ अकेली नारी के कन्धो पर रहता है। पति के सारे कुटुम्ब से कटी-कटी रहने वाली पत्नी भले वही पति की प्रसन्नता के लिए प्रयत्न करती रहे लेकिन उसका वह परिश्रम पति के आनन्द को बढ़ा नहीं सकता। धीरे-धीरे वह पत्नी के प्रति उदासीन होता जायगा और सुखमय दाम्पत्य में भी कलह का अकुर अपनी जड जमाने में समर्थ हो जायगा।

अनेकों स्त्रियां आजकल इतनी ईर्ष्यालु होती हैं कि अगर घर मे उनका पति कमाऊ होता है तो सास-ससुर देवर-जेठ आदि सभी को दिन-रात व्यग-बाणों से छेदा करती हैं, जिसका फल कभी-कभी तो अत्यन्त ही दु खदायी हो जाता है और दाम्पत्य सुख को एकदम नष्ट कर देता है । इसलिये जरूरी है कि हर पत्नी को सदा यह ध्यान मे रखना चाहिये कि सास ने मेरे पति के लिये अनेको कष्ट सहे हैं, उसे जन्म दिया है । अत. पति जैसा भी है, जो कुछ भी कमाता है, उसमे सास का सर्व-प्रथम और बडा भारी हिस्सा है । क्योकि पति को अच्छा या बुरा बनाने का श्रेय भी तो सास को ही है, इसलिये प्रत्येक पत्नी को पति के साथ ही सास ससुर एव समस्त कुटुम्बी-जनो को सुख पहुचाने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये, भले ही इसमे स्वय को कुछ कष्ट हो पर उसे अपने कष्ट की परवाह न करके भी और सबको ज्यादा से ज्यादा सुख मिले, मन मे यही भावना हमेशा रखना व इसके लिये प्रयत्न करना चाहिये । दाम्पत्य सुख की यह सबसे बडी और मजबूत कु जी है ।

दाम्पत्य सुख मे सबसे मुख्य बात यही है कि पति का पत्नी मे गहरा स्नेह व पत्नी की पति मे अत्यन्त गहरी श्रद्धा हो । ऐसा अगर नही होगा तो दम्पती को गृहस्थी मे कभी पूर्ण सुख का अनुभव नही हो सकता क्योकि स्त्री के मन के भाव ही उसे सुखमय या दु खमय बना सकते हैं । नारी जाति अत्यन्त कोमल और भोली होती है । पति का थोडा-सा प्रेम पाने पर ही बहुत अधिक सुख का अनुभव करती है एवं थोडा-सा रूखापन पाने पर बहुत अधिक दु ख का । हालाकि वह यह कहती किसी से नही, मूक रहकर ही सब कुछ सहन करती है, पर फिर भी मन पर तो सब भावनाओ का असर होता है । इसलिये यह जरूरी है कि प्रत्येक बहिन को इस बात का ख्याल रखना चाहिये कि मन के बाधे हुए हवाई

किले सभी नहीं बने रहते । अत मन मे कल्पना किये हुए पति, घरद्वार सभी कुछ वैसे ही न मिलने पर भी कभी उद्विग्न और निराश न हों ।

दु ख को बहुत कुछ घटाना-बढाना तो मनोभाव पर भी निर्भर है । अत जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, मनोनुकूल वातावरण न मिलने पर भी जो कुछ मिले, उसी के सहारे जीवन निर्माण करने की कोशिश करनी चाहिये । सुख की सबसे बडी कु जी सन्तोष है । सतोष का फल सदा मीठा होता है यह सत्य है कि अधिक सुख प्राप्त करने का यत्न सभी स्त्रिया करती हैं पर अधिक सुख न मिलने पर भी जो कुछ मिला है, उस पर सतोष करने वाली स्त्री ही सुखी हो सकती है । किसी भी हालत मे हो पर पति के सुख में सुख मानने वाली व हर अवस्था मे पति का कल्याण चाहने वाली स्त्री ही सच्चे दाम्पत्य सुख का अनुभव कर सकती है व करा सकती है ।

प्राचीन काल का दाम्पत्य सम्बन्ध कैसा आदर्श था ! पत्नी अपने आपको पति में विलीन कर देती थी और पति उसे अपनी अर्धांगना, अपनी शक्ति, अपनी सखी और अपनी हृदय-स्वामिनी समझता था ! एक पति था, दूसरी पत्नी थी, पुरुष स्वामी और स्त्री स्वामिनी थी । एक का दूसरे के प्रति समर्पण का भाव था । वहा अधिकारो की माग नहीं थी, सिर्फ समर्पण था । जहा दो हृदय मिलकर एक हो जाते हैं, वहा एक को हक मागने का और दूसरे को हक देने का प्रश्न ही उपस्थित नही होता। ऐसा आदर्श दाम्पत्य सम्बन्ध किसी समय भारतवर्ष मे था । आज विदेशों के अनु-करण पर जहां दाम्पत्य सम्बन्ध नाम मात्र का है—भारत मे भी विकृति आ गई है । नतीजा यह हुआ कि पति-पत्नी का अद्वैत-

भाव नष्ट होता जा रहा है और राजकीय कानूनो के सहारे समानाधिकार की स्थापना की जा रही है। आज की पढी-लिखी स्त्री कहती है—

मै अगरेजी पढ़ गई सैया।
रोटी नहीं पकाऊंगी ॥

शिक्षा का परिणाम यह निकला है। पहले की स्त्रियां प्राय' सब काम अपने हाथों से करती थीं। आजकल सभी काम नौकरो द्वारा कराये जाते हैं। परिणाम यह हुआ कि डाक्टरो की बाढ आ गई और स्त्रियो को 'डाकिन-भूत लगने लगे। स्त्रियो के निकम्मे रहने के कारण हिस्टीरिया आदि रोग होते हैं और डाकिन भूत के नाम पर लोग ठगाई करते हैं। अगर स्त्री को सही मार्ग पर चलना है तो इन सब बुराइयो को छोडना पडेगा।

कई एक भोली बहिनें हाथ से पीसने मे पाप लगना समझती हैं और दूसरे से पिसवा लेने मे पाप से बच जाने की कल्पना करती हैं। पीसने मे आरम्भ तो होता ही है लेकिन अपने हाथ से यतना और विवेक से काम किया जाय तो बहुत से निरर्थक पापो से बचाव भी हो सकता है। शक्ति होते हुए दूसरे से काम कराना, एक प्रकार की कायरता है और कहना चाहिए कि अपनी शक्ति का विनाश करना है। इस प्रकार का परावलम्बी जीवन बिताना अपनी शक्ति की घोर अवहेलना करना है —

पग धरिता संतोष ने वरया ने कडा।
हिया कंठ मे खरा हार नोसर्या धरा ॥
लोक दोई ने सुधार वारा चूड़ला करा।

मान राखणो बडां रो सिर बोर गूंथ ला ।।बेना०।।

बुद्धिमती स्त्रियां कहती हैं—जिस प्रकार सीता ने पैर के आभूषण उतार दिये हैं, उसी प्रकार अगर हम भी दिखावे के लिये पैर के गहने उतार दें तो इससे कोई लाभ नही होगा। पैर के आभूषण पैर मे भले ही पडे रहे, मगर एक शिक्षा याद रखनी चाहिए। अगर सीता मे धैर्य और सतोष न होता तो वह वन में जाने को तैयार न होती। सीता मे कितना धैर्य और कितना सतोष है कि वह वन की विपदाओं की अवगणना करके और राजकीय वैभव को ठुकरा करके पति के पीछे-पीछे चली जा रही है। हमे सीता के चरित्र से इस धैर्य और सतोष की शिक्षा लेनी है। ये गुण न हुए तो अभूषणो को धिक्कार है।

जहां ज्यादा गहने हैं, वहां धैर्य की और सतोष की उतनी ही कमी है। वन-वासिनी भीलनी पीतल के गहने पहनती है और रूखा-सूखा भोजन करती है, फिर भी उसके चेहरे पर जैसी प्रसन्नता और स्वस्थता दिखाई देगी, बड़े घर की महिलाओ मे वह शायद ही कही दृष्टिगोचर हो। भीलनी जिस दिन बालक को जन्म देती है, उसी दिन उसे झोंपडी मे रखकर लकडी वेचने चल देती है। यह सब किसका प्रताप है? सतोष और धैर्य की जिन्दगी साक्षात् वरदान है। इसी से दाम्पत्य-सम्बन्ध मधुर बनता है।

❀ ❀ ❀

आपने पत्नी का पाणिग्रहण धर्मपालन के लिए किया है। इसी प्रकार स्त्री ने भी किया है। जो नर या नारी इसी उद्देश्य को भूलकर खान-पान और भोग विलास मे ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझते हैं, वे धर्म के पति-पत्नी नहीं वरन् पाप के पति-पत्नी हैं।

आज राग के वश होकर पति-पत्नी न जाने कैसी-कैसी अनीति का पोषण कर रहे हैं। पर प्राचीन साहित्य देखने से स्पष्ट विदित होता है कि उस समय पति-पत्नी अलग-अलग कमरो मे सोते थे—एक ही जगह नही सोते थे। पर आज की स्थिति कितनी दयनीय है! आज अलग-अलग कमरों मे सोना तो दूर रहा अलग-अलग बिस्तर पर भी बहुत कम पति-पत्नी सोते हैं। इस कारण विषय-वासना को कितना वेग मिलता है, यह सक्षेप मे नहीं बताया जा सकता। अग्नि पर घी डालने से वह बिना पिघले नही रहता, एक ही शय्या पर शयन करने से अनेक प्रकार की बुराइया उत्पन्न होती हैं। वह बुराइयां इतनी घातक होती हैं कि उनसे न केवल धार्मिक जीवन बिगडता है वरन् व्यावहारिक जीवन भी निकम्मा बन जाता है।

लग्न के समय वर-वधू अग्नि की प्रदक्षिणा करते हैं। पति के साथ अग्नि की प्रदक्षिणा करने के पश्चात् एक सच्ची आर्य महिला अपने प्राणो का उत्सर्ग कर देती है परन्तु की हुई प्रतिज्ञा से विमुख नहीं होती।

पुरुष भी पत्नी के साथ अग्नि की प्रदक्षिणा करते हैं परन्तु जो कर्त्तव्य स्त्री का माना जाता है, वही क्या पुरुष का भी समझा जाता है?

जैसे सदाचारिणी स्त्री पर-पुरुष को पिता एव भाई के समान मानती है, उसी प्रकार सदाचारशील पुरुष वे ही हैं जो पर-स्त्री को माता-बहिन की दृष्टि से देखते हैं। 'पर-ती लखि जे धरती निरखें, धनि हैं धनि हैं धनि हैं नर ते।'

पति-पत्नी सम्बन्ध की विडम्बना देखकर किसका हृदय आहत नहीं होगा ? जिन्होंने पति और पत्नी बनने का उत्तरदायित्व स्वेच्छा से अपने सिर लिया है, वह भी पति-पत्नी के कर्त्तव्य को न समझें, यह कितने खेद की बात है। पति का कर्त्तव्य पत्नी को स्वादिष्ट भोजन देना, रंग-बिरंगे कपड़े देकर तितली के समान बना देना या मूल्यवान् आभूषणों से गुड़िया के समान सजा देना नहीं है। इसी प्रकार पत्नी का कर्त्तव्य पति को सुस्वादु भोजन बनाकर परोस देने में समाप्त नहीं होता। वासना की पूर्ति का साधन बनना भी स्त्री का कर्त्तव्य नहीं है। ऐसे कार्यों के लिए ही दाम्पत्य सम्बन्ध नहीं है। दम्पती का सम्बन्ध एक-दूसरे को सहायता देकर आत्म-कल्याण की साधना में समर्थ बनने के लिए है। जहां इस उद्देश्य की पूर्ति होती है, वहीं सात्त्विक दाम्पत्य समझा जा सकता है।

था। इससे सिद्ध होता है कि अप्रत्यक्ष रूप से भी माता-पिता के मनोभावों से ही बच्चे के मनोभावों का निर्माण और विकास होता है।

हमारे इतिहास में ऐसे सैकड़ो उदाहरण अंकित हैं, जिनमें यह बताया है कि अनेक महान् पुरुषों का जीवन-निर्माण उनकी माताओं के द्वारा ही किया गया है। रानी कौशल्या के हृदय की उदारता, वत्सलता, दयालुता रामचन्द्र जी के जीवन में भरी गई। जीजाबाई, जो हिन्दू जाति के गौरव व प्रतिष्ठा के लिये मर-मिटने को निरन्तर तत्पर रहती थी, अपने बेटे शिवाजी के जीवननिर्माण मे साधन हुई। उन्होने बचपन से ही शिवाजी को रामायण महाभारत आदि की कथाएं सुना-सुना कर उनके शिशु-हृदय में ओज और वीरत्व का बिगुल फूंकना शुरु कर दिया था तथा देश और जाति की रक्षा प्राण देकर भी करने की भावना कूट-कूट कर भर दी थी। उसी वीर मा की शिक्षा का फल था कि उसके वीर बेटे शिवा ने हिन्दू साम्राज्य की नींव रखकर हिन्दू जाति का उद्धार किया।

वीर और स्वाभिमानिनी शकुन्तला का पुत्र भरत अपनी मा के हाथो शिक्षा पाकर निःशंक शेर के मुंह के दांत गिनने का शौक करने लगा।

इसी प्रकार महात्मा बुद्ध की भी कथा है। जब वे अपनी मां के गर्भ मे थे, उस समय उनकी मां को बहुत ही वैराग्य उत्पन्न हुआ। संसार के दुःख, दारिद्र्य, रोगादि को देखकर उनके मन में निरन्तर यह भावना रही कि मेरा पुत्र बड़ा होकर इस जगत् का दुःख अवश्य दूर करे। इन्हीं भावनाओ मे बुद्ध का जीवननिर्माण हुआ और वे लोक भर में कल्याणकारी सिद्ध हुए।

इसी प्रकार हमारे देश मे ही नहीं, पाश्चात्य देशों में भी अनेक महापुरुषो ने माताओ से ही सबक सीखा है। ईसाई धर्म के प्रणेता ईसा को लीजिये। उनके पूज्य बनने का श्रेय उनकी माता मरियम को ही पूर्ण रूप से है। वह निरन्तर बालक ईसा को धार्मिक शिक्षा दिया करती थी और धार्मिक पुस्तकें पढ-पढ कर उनकी प्रतिभा का विकास किया करती थी। इन बातों से ही उनके चरित्र मे महानता आई और उनकी आत्मा का पौरुष सतत बढ़ता ही गया।

नैपोलियन बोनापार्ट ने भी अपनी माता के अत्यन्त कठोर शासन मे रहकर अपने जीवन का निर्माण किया। अपनी मा के लिये वे स्वय ही कह गए हैं कि —"मेरी मा एक साथ ही कोमल और कठोर थीं। सभी सतानें उनके लिये समान थीं। कोई बुरा काम करके हम बाद मे कभी उनसे क्षमा नही पा सकते थे। हमारे ऊपर मा की तीक्ष्ण दृष्टि रहा करती थी। नीचता की वे अत्यन्त अवज्ञा करती थी। उनका मन उदार और चरित्र उन्नत था। मिथ्या से उन्हें आन्तरिक घृणा थी। औद्धत्य देखकर उनके नेत्र कठोर हो जाते थे। हमारा एक भी दोष उनकी दृष्टि से छिपना सम्भव नहीं था।" इस प्रकार उनकी मा ने अपने पुत्र का चरित्र निर्माण किया और सघर्षों में कष्ट सहन करने की शक्ति दी।

जार्ज वाशिंगटन ने कहा है—'मेरी विद्या, बुद्धि, धन, वैभव, पद एव सम्मान इन सब का मूल कारण मेरी आदरणीया जननी ही है।'

मुसोलिनी लिखते हैं—सब सतानों मे माता का मुझ पर अधिक स्नेह था। वह जितनी शांत थी, उतनी ही कोमल और तेजस्विनी थी। वह केवल मेरी मां ही न थी, अध्यापिका भी थी।

मुझे सदा भय रहा करता था कि मेरी मा मुझसे अप्रसन्न न हो। वे मुझसे बडी आशा रखती थी। वे कहा करती थीं कि 'यह भविष्य मे कोई महान् व्यक्ति होगा। उन्होने सदा इसका ध्यान रखा कि उनकी सतान- निर्भीक, साहसी, दृढ, और निश्चयशील बने'। इसी से यह साबित हुआ है कि मुसोलिनी का अपरिमित तेजभरा पौरुष उनकी माता की ही देन थी।

## २–माता का दायित्व

आजकल की स्त्रियां इस वात को भूल चली हैं। अपने बच्चे के जीवन–निर्माण मे, चरित्र विकास मे, उनका हाथ कितना महत्त्वपूर्ण है, यह वे समझने की कोशिश नहीं करती हैं। जन्म से ही वे वच्चे को लाड–प्यार करके बिगाड देती हैं और इस प्रकार वे बच्चो के उज्ज्वल जीवन को अन्धकारमय पथ की ओर अग्रसर करने मे सहायक होती हैं। जिन गुणों को मा शुरु से बच्चे के जीवन मे उतारना चाहती है, मा स्वय उन सवका आचरण करे, क्योकि झूठ बोलकर मा बच्चे को सत्यवादिता का पाठ नही पढा सकती। स्वय क्रोध करके वच्चे को शात रहने की सीख नहीं दी जा सकती। तात्पर्य यह है कि उज्ज्वल चरित्र वाली माता ही वच्चे को महापुरुष बनाने में समर्थ हो सकती है।

बच्चों के बचपन में ही सस्कार सुधारने चाहिये। वडे होने पर तो वे अपने आप सब बातें समझने लगेंगे, मगर उनका झुकाव और उनकी प्रवृत्ति वचपन मे पडे हुए सस्कारो के ही अनुसार होगी। वचपन मे जिन बच्चो के सस्कार माता–पिता, विशेष कर माता के द्वारा नहीं सुधरे, उनकी दशा यह है कि वे कोई भी अच्छी बात इस कान से सुनते और उस कान से निकाल देते हैं।

इसके विपरीत, सुसस्कारी पुरुष जो अच्छी और उपयोगी बात पाते हैं, उसे ग्रहण कर लेते हैं। यह बचपन की शिक्षा का महत्त्व है।

बाल-जीवन को शिक्षित और सुसस्कृत बनाने के लिये घर ही उपयुक्त शाला है। माता-पिता ही बच्चे के सच्चे शिक्षक हैं। परन्तु माता और पिता सुशिक्षित और सुसस्कृत हों, तभी उनकी प्रजा वैसी बन सकती है। अतएव माता या पिता का पद प्राप्त करने के लिये माता-पिता को शिक्षित और सस्कारी बनना आवश्यक है।

बालक का जीवन अनुकरण से प्रारम्भ होता है। वह बोलते-चालते, खाते-पीते और कोई भी काम करते घर का और विशेषतया माता का ही अनुकरण करता है। क्या बोल-चाल,क्या व्यवहार, क्या मनोवृत्तिया और क्या अन्य प्रवृत्तिया, सब मा की ही नकल होते हैं, जिसके प्रति उसके हृदय मे स्नेह का भाव सहज उपज आता है। अतएव प्रत्येक माता को सोचना चाहिये कि अगर हम बालको को सुसस्कृत, सदाचारी, विनीत और धार्मिक बनाना चाहती हैं तो हमारे घर का वातावरण किस प्रकार होना चाहिये ?

जहां माता क्षण-क्षण में गालिया बड-बडाती हो, पिता माता पर चिढ़ता रहता हो और उद्धततापूर्ण व्यवहार करता हो, वहां बालक से क्या आशा की जा सकती है ? हजार यत्न करो, बालक को डराओ, धमकाओ, मारो-पीटो, फिर भी वह सुसस्कारी या विनयी नहीं बन सकता। 'मां सौ शिक्षको का काम देती है' यह कथन जितना सत्य है उतना ही आदरणीय और आचरणीय है।

बालक को डरा धमका-कर या मार-पीटकर अथवा ऐसे

ही किसी हिंसात्मक उपाय का अवलम्बन लेकर नहीं सुधारा जा सकता।

## ३–सन्तति-सुधार का उपाय

प्राय देखा जाता है कि जब बालक मचलता है या कहा नही मानता तो सर्वप्रथम मा को उसके प्रति आवेश आ जाता है और आवेश आते ही मुख से गालियो की वर्षा आरम्भ हो जाती है, लात–घूसे आदि से उस अनजान बालक पर मा हमले किया करती है। कभी–कभी तो इसका परिणाम इतना भयकर होता है कि आजीवन माता–पिता को पछताना पडता है। वास्तव मे यह प्रणाली बच्चो के लिये लाभ के बदले हानि उत्पन्न करती है। इससे बालक गालिया देना सीखता है, और सदा के लिये ढीठ बन जाता है। इस ढिठाई मे से और भी अनेको दुर्गुण फूट पडते हैं। इस प्रकार बालक का सारा जीवन बर्बाद हो जाता है।

विवेकशील माता भय को प्रणाली का उपयोग नही करती। वह आवेश पर अकुश रखती है। बालक की परिस्थिति को समझने का यत्न करती है तथा उसे सुधारने के लिये घर का वातावरण सुन्दर बनाने की कोशिश करती है। ऐसा करने मे माता के जीवन का विकास होता है और बालक के जीवन का भी। वह यह भली-भाँति जानती है कि बालक अगर रोता है तो उसका इलाज डराना नही है, रोने के कारण को खोजकर दूर करना है। इसी प्रकार अगर बालक मे कोई दुर्गुण उत्पन्न हो गया है तो उसे वह अपनी किसी कमजोरी का फल समझना है और समझना ही चाहिये कि माता को किसी दुर्बलता क बिना बालक मे कोई भी दुर्गुण क्यों पैदा हो ? इस अवस्था मे माता के लिए उसका वास्तविक कारण

खोज निकालना और दूर करना ही इलाज है। समझदार मा ऐसे अवसर पर धैर्य से काम लेती है।

भय, डराने वाले और डरने वाले के अन्तरंग या बहिरग पर अनेक प्रकार से आघात करता है। अत यह भय हिंसा का भी रूप है। आत्मा के गुणो का घात करने वाली प्रवृत्ति करना हिंसा है। जो ऐसी प्रवृत्ति करता है वह हिंसक है, यह जैनागम का विधान है।

आजकल हर माता को सद्धर्म की उन्नत भावना की तालीम लेने की आवश्यकता है क्योंकि सामाजिक जीवन मे देखा जाता है कि आज के माता-पिताओ के मन काम-वासना से ग्रसित है। दोनों के मन क्लेश के रग में रगे हुए हैं और बात-बात मे वे अश्लील वाक्प्रहार और समय मिले तो ताडन-प्रहार करते भी सकोच नही करते। जहां यह स्थिति है, वहा भला शिक्षा और सस्कृति का सरक्षण किस प्रकार हो सकता है ?

माता का जीवन जब तक शिक्षित, सस्कृत और आदर्श न बने, तब तक सतान मे सुसस्कारो का सिचन नही हो सकता। अतएव अपनी सतान की भलाई के लिये माता को अपना जीवन संस्कारमय अवश्य बनाना चाहिये। प्रत्येक मा को यह न भूल जाना चाहिये कि आज का मेरा पुत्र ही भविष्य का भाग्य-विधाता है।

माता, बच्चे या बच्ची का गुड्डे-गुडिया की तरह शृंगार कर और अच्छा भोजन देकर छुट्टी नही पा सकती। उसे यह अच्छी तरह समझना चाहिये कि मैंने जिसे जीवन दिया है, उसके । न का निर्माण भी मुझे ही करना है। जीवन-निर्माण का अर्थ

है—सस्कार सम्पन्न बनाना और बालक की विविध शक्तियों का विकास करना । शक्तियो का विकास हो जाने पर वह सन्मार्ग में लगे, सत्कार्य मे उसका प्रयोग हो, दुरुपयोग न हो, यह सावधानी रखना माता का पूर्ण कर्त्तव्य है ।

स्त्रिया जग-जननी की अवतार हैं । स्त्रियों की कूंख से ही महावीर बुद्ध, राम, कृष्ण आदि उत्पन्न हुए हैं । पुरुष समाज पर स्त्री-समाज का बडा भारी उपकार है । उस उपकार को भूल जाना और उसके प्रति अत्याचार करने मे लज्जित न होना घोर कृतघ्नता है । समाज का एक अग स्त्री और दूसरा अग पुरुष है । शरीर का एक हिस्सा भी खराब होने से शरीर दुर्लब हो जाता है, उसी प्रकार समाज भी किसी हिस्से के विकारयुक्त होने से दूषित होने लग जाता है । क्या यह सम्भव है कि किसी का आधा अग बलिष्ठ और अधा निर्वल हो ? जिसका आधा अग निर्वल होगा, उसका पूरा अग निर्वल होगा ।

शरीर मे मस्तिष्क का जो स्थान है, समाज में शिक्षक का भी वही स्थान है । पर इनमें सबसे ऊचा स्थान बच्चे के जीवन-निर्माण में माता का है । बच्चे के प्रति मा का जो आकर्षण ममत्व है, वही बच्चे को उचित रूप से जीवन-पथ में अग्रसर होने का प्रयत्न किया करता है ।

## ४-मातृ-स्नेह की महिमा

माता का हृदय बच्चे से कभी तृप्त नहीं होता । माता के हृदय में बहने वाला वात्सल्य का अखण्ड झरना कभी सूख नहीं सकता । वह निरन्तर प्रवाहित होता रहता है । माता का प्रेम

सदैव अतृप्त रहने के लिये है और उसकी अतृप्ति मे ही शायद जगत् की स्थिति है । जिस दिन मातृ-हृदय सन्तान-प्रेम से तृप्त हो जायगा, उस दिन जगत् मे प्रलय हो जायगा ।

बच्चे के प्रति मां के हृदय मे इतना उत्कट प्रेम होता है कि मनुष्य तो खैर समझदार होता ही है, पर पशु-पक्षी का भी अपने बच्चे के प्रति ममत्व देखकर दग रह जाना पडता है ।

सुबुक्तगीन बादशाह का वृत्तान्त इतिहास मे आया है । वह अफगानिस्तान का बादशाह था । वह एक गुलाम खानदान मे पैदा हुआ था । एक बार वह ईरान से अफगानिस्तान की ओर घोड़े पर सवार होकर आ रहा था । मार्ग की थकावट से या किसी अन्य कारण से उसका घोडा मर गया । जो सामान उससे उठ सका, वह तो उसने उठा लिया और बाकी का वहीं छोड दिया । मगर उसे भूख इतनी तेज लगी कि वह अत्यन्त व्याकुल हो गया । इसी समय एक तरफ से हरिनों का एक झुड आ निकला और उसने दौडकर उसमे से एक बच्चे की टाग पकड ली । झुड के और हरिन-हरिनिया तो भाग गए पर उस बच्चे की माता वही ठिठक गई और अपने बच्चे को दूसरे के हाथ मे पकडा देख-कर आंसू बहाने लगी । अपने बालक के लिये उसका दिल कटने लगा ।

बच्चे को लेकर सुबुक्तगीन एक पेड के नीचे पहुचा और उसे भून कर खाने का विचार करने लगा । उसने रूमाल से बच्चे की टागें बाध दी ताकि वह भाग न जाए । उसके बाद वह कुछ दूर जाकर एक पत्थर से अपनी छुरी पैनी करने लगा । इतने मे मृगी बच्चे के पास जा पहुची और वात्सल्यवश बच्चे को चाटने लगी, रोने लगी और अपना स्तन बच्चे की ओर करने लगी । बच्चा

बेचारा बंधा हुआ तड़फ रहा था। वह अपनी माता से मिलने और उसका दूध पीने के लिये कितना विकल था, यह कौन जान सकता है? मगर वह विवश था। टांगें बंधी होने के कारण वह खडा भी नही हो सकता था। अपने बच्चे की यह हालत देखकर मृगी की क्या हालत हुई होगी यह कल्पना करना भी कठिन है। माता का भावुक हृदय ही मृगी की अवस्था का अनुमान कर सकता है कि मगर वह लाचार थी। वह आंसू बहा रही थी और इधर-उधर देखती जाती थी कि कोई किसी ओर से आकर मेरे बच्चे को बचा ले।

इतने मे ही छुरी पैनी करके सुबुक्तगीन लौट आया। बच्चे की मा हरिनी यहा भी इसके पास आ पहुची है। यह देखकर उसको आश्चर्य हुआ। उसने हरिनी के चेहरे पर गहरे विषाद की परछाई देखी और नेत्रों मे बहते हुए आसू देखे। यह देखकर उसका हृदय भी भर आया। वह व्याकुल होकर सोचने लगा कि मेरे लिए तो यह बच्चा दाल-रोटी के बराबर है, पर इस मां के हृदय मे इसके प्रति कितना गहरा प्रेम है! इसका हृदय इस समय कितना तड़प रहा होगा? अपना खाना-पीना छोडकर अपने प्राणो की भी परवाह न करके हरिणी यहा तक भाग आई है। धिक्कार है, मेरे ऐसे खाने को, जिससे दूसरे को घोर व्यथा पहुच रही है। अब मैं चाहे भूख का मारा मर ही जाऊ पर अपनी मा के इस दुलारे को हर्गिज नही खाऊंगा।

आखिर उसने बच्चे को छोड दिया। बच्चा अपनी मा से और माता अपने बच्चे से मिलकर उछलने लगे। यह स्वर्गीय दृश्य देखकर सुबुक्तगीन की प्रसन्नता का पार न रहा। इस प्रसन्नता में वह खाना-पीना भी भूल गया। आज उसकी समझ में आया और

से विश्वास हो गया कि मा के प्रेम से बढ़कर विश्व मे कोई दूसरी चीज नही ।

मातृ-प्रेम के समान संसार में और कोई प्रेम नही । मातृ-प्रेम ससार की सर्वोत्तम विभूति है, संसार का अमृत है, अतएव जब तक पुत्र गृहस्थ-जीवन से पृथक् होकर साधु नही बना है, माता तब तक उसके लिए देवता है ।

मातृ-हृदय की दुनिया मे सभी ने प्रशंसा की है । आज के वैज्ञानिको का भी यही कहना है कि माता मे हृदय का बल होता है । इसी बल के कारण वह सन्तान का पालन करती है और सन्तान के लिए कष्ट उठाती है । यदि माता में हृदय-बल न होता तो वह स्वय कष्ट सह करके सन्तान का पालन क्यो करती ? कहा जा सकता है कि माता भविष्य सम्बन्धी आशाओ से प्रेरित होकर सन्तान का पालन करती है । इसके उत्तर मे यही कहा जायगा कि पशु-पक्षियो को अपनी सन्तान से क्या आशा रहती है ? पक्षी के बच्चे बड़े होकर उड जाते हैं । वे न पिता को पहचानते हैं और न माता को ही । फिर पक्षी अपनी सन्तान का पालन क्यो करते हैं ? उन्हे किसी प्रकार की आशा नही रहती फिर भी वे अपनी सन्तान का उसी प्रेम के साथ पालन करते हैं । इसका एक मात्र कारण हृदयबल ही है । इस प्रकार मातृ-हृदय ससार की अनूठी सम्पदा है अनमोल निधि है । यही कारण है, दुनिया मे मातृ-हृदय की सभी ने प्रशसा की है ।

इस प्रकार माता अपने उत्कट हृदय-बल से संतान का पालन करती है, लेकिन आजकल के लोग उस हृदय-बल को भूल कर मस्तिष्क के विचारो मे अधीन हो जाते हैं और पत्नी के गुलाम बन कर माता की उपेक्षा करते हैं । यह कृतघ्नता नही तो क्या है ?

ससार में प्रत्येक प्राणी को सोचना चाहिए कि मेरी मात
ने मुझे हृदय-बल से ही पाला है। माता मे हृदय-बल न होता
करुणा न होती तो वह मेरा पालन क्यो करती ? हृदय-बल के
प्रताप से ही वह मेरा रोना सुनकर पालने के पास दौडी आती थी
और सब काम छोडकर पहले मेरी फरियाद सुनती थी।

माता अपने पुत्र को कभी थप्पड भी मार देती है प
उसका हृदय तो पुत्र के कल्याण की कामना से सदैव परिपूर्ण ह
रहता है और इसी से फिर वह उसे पुचकार भी लेती है। मात
को थप्पड भी मारनी पडती है और पुचकारना भी पडता है, लेकि
जो भी वह करती है हृदय की प्रेरणा से। उसके हृदय मे बाल
की एकान्त कल्याण-कामना निरन्तर वतमान रहती है।

## ५—मातृ-भक्ति

हृदय-बल न होने अथवा हृदय-बल पर मस्तिष्क-ब
की विजय होने पर ही माता का अपमान किया जाता है औ
पत्नी की अधीनता स्वीकार की जाती है। यद्यपि ससार मे ऐसे
ऐसे नर-वीर भी हुए हैं, जिन्होने माता के लिये सब कुछ, यहा त
कि पत्नी को भी त्याग दिया है। लेकिन ऐसे लोग भी कम न
हैं, जो स्त्री को प्रसन्न करने के लिये माता का अपमान करने
नही चूकते।

हृदय-बल के बिना जगत् का काम क्षण भर भी न
चलता। माता मे हृदय-बल न होता तो मस्तिष्क-बल वाले व्यक्ति
का जन्म ही कैसे होता ? उसका पालन-पोषण कौन करता ? अ
एव स्पष्ट है कि मस्तिष्क-बल की अपेक्षा हृदय-बल की ही अधि

र
वश्यकता है। और आवश्यकता ही नही, पर यह कहना भी
ुचित नही कि मस्तिष्क के बल को हृदय-बल के अधीन ही
ोना चाहिये। जैसे माता अपने पुत्र को अपने अधीन रखकर
सकी उन्नति करती है, उसी प्रकार मस्तिष्क-बल को हृदय-बल के
धीन रखकर विकसित करना चाहिये। माता यह कदापि नही
ाहती कि मेरे पुत्र की उन्नति न हो। वह उन्नति चाहती है और
ीलिये शिक्षा दिलवाती है मगर रखना चाहती है अपनी अधीनता
। वह अपने बालक का निरकुश होना पसद नही करती। यह
ात अलग है कि आज की शिक्षा का ढग बदला हुआ है और
ाताएं भी इसी ढग से प्रभावित होकर ऐसी ही शिक्षा दिलवाती
। लेकिन जो कुछ भी वे करती हैं, पुत्र की हितकामना से
रित होकर ही।

पर आज का ससार मस्तिष्क-बल से हृदय-बल को दबाता
ला जा रहा है। यह अनुचित है। जैसे अपनी माता को अपनी
त्नी के पैरो पर गिरने को बाध्य करना उचित नही है उसी
कार जिस हृदय-बल से आपका जन्म हुआ, उस हृदय-बल को
चलना नीचता है।

अपनी माता को भूलकर पत्नी का गुलाम बन जाना, ज्ञान
 निशानी नही है। जिस माता ने पुत्र का पालन-पोषण किया
 उसी की उपेक्षा करना क्या पुत्र को उचित है?

कल्पना करो कि एक आदमी किसी श्रीमंत की लडकी को
ाह कर लाया, लडकी छबिली है, बनी-ठनी है और आजकल
 फैशन के अनुसार रहती है। दूसरी ओर उस पुरुष की माता
 जो पुराने विचारो की है। अब वह पुरुष किसके अधीन होकर
 चाहेगा? वास्तव मे उसे माता के अधीन रहना चाहिये।

उचित तो यही है पर देखा जाता है कि इसके विपरीत पुरुष पत्नी के अधीन हो जाता है। वह यह नही सोचता कि ससुर ने मेरी श्रीमताई देखकर अपनी लडकी दी है पर माता ने क्या देखकर मेरा पालन-पोषण किया है ? माता ने केवल हृदय की प्रेरणा से ही तो मेरा पालन किया है ? उसने और कुछ नही देखा। हार्दिक विचारों से प्रेरित होकर ही माता ने मेरे लिये कष्ट उठाये हैं और उस हृदय को भूल जाना या उपेक्षा करना कृतघ्नता है। मगर ऐसा विचार कितनो का होता है ? ससार मे आज पत्नी के अधीन होकर माता की उपेक्षा करने वाले ही अधिक होगे।

माता का स्थान अनोखा होता है। माता पुत्र को जन्म देती है। माता से ही पुत्र को शरीर मिलता है। सतान पर माता का असीम ऋण है। उस ऋण को चुकाना अत्यन्त कठिन है। मगर क्या आजकल सतान यह समझती है ? आज तो कोई-कोई सपूत ऐसे होते हैं कि नीति की सीख देने के कारण भी अपनी माता का सिर फोडने को तैयार हो जाते हैं। औरतो की बातो मे आकर पत्नी का अपमान कर बैठते हैं। पर पुराना आदश क्या ऐसा था? राम का आदश भारत को क्या शिक्षा देता है ? राम सोचा करते थे कि मा अगर आशीर्वाद दे देगी कि जाओ, जगल मे रहो तो मैं जगल मे भी आनन्द से रहूगा। ऐसा अद्भुत और आदर्श चरित्र भारत को छोडकर कहा मिल सकता है ? नैपोलियन के लिये कहा जाता है कि वह माता का बडा भक्त था। वह कहा करता था— तराजू के एक पलडे में सारे ससार का प्रेम रखू और दूसरे पलडे मे मातृ-प्रेम रखू तो मेरा मातृ-प्रेम ही भारी ठहरेगा।

मातृ-भक्ति का अनुपम उदाहरण मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र ने उपस्थित किया था। कैकेयी ने राजा दशरथ से अपने दो

वरदानों से रामचन्द्र के लिए चौदह वर्ष का वनवास और अपने पुत्र भरत के लिये राज्य-सिहासन की माग की। यद्यपि राम को वनवास देना अनुचित एव अन्यायपूर्ण था, फिर भी वनवास के कठोर दु खो और यातनाओ की चिन्ता न करते हुए रामचन्द्र माता की आज्ञा शिरोधार्य कर वन जाने को उद्यत हो गए। उनकी माता कौशल्या के दु ख की सीमा न रही। उन्हे स्वप्न मे भी यह आशा न थी कि कैकेयी वरदान मे इस प्रकार की याचना कर बैठेगी। वे मातृ-स्नेहवश विकल हो उठी और मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। अत्यन्त स्नेह से इतने वर्षों तक पालन-पोषण करने वाली माता को यकायक इतना बडा वियोग बिलकुल असह्य-सा प्रतीत हुआ। वे अपने पुत्र को क्षण मात्र के लिए भी आखो से ओझल नही देखना चाहती थी। वे सर्वदा उसे अपने नयनो मे रखकर अपने हृदय को शीतल एव आह्लादमय बनाना चाहती थी। प्रतिक्षण उनके मन मे रामचन्द्र की सुन्दर व सजीव मूर्ति व्याप्त रहती थी। क्षण भर भी उन्हे देखकर वे स्वर्गीय सुख का अनुभव करती थी। पुत्र के बिना उनके लिए कुबेर की समस्त धन-सम्पत्ति भी तुच्छ थी। मातृत्व स्नेह को ऐश्वर्य के पलडे मे तो किसी भी तरह नही तोला जा सकता।

कौशल्या यह सोच-सोच कर अत्यन्त विकल हो रही थी कि मैं इसका वियोग कैसे सह सकूगी ? प्राण ( राम ) चले जाने पर यह निष्प्राण शरीर कैसे रहेगा ?

इस प्रकार के विचारो से व्यथित कौशल्या मूर्च्छित हो गई। राम आदि ने शीतोपचार करके उन्हे सचेष्ट किया। सचेष्ट होकर आसू बहाती हुई कौशल्या फिर प्रलाप करने लगी—हाय, मैं जीवित क्यो रही ? पुत्र-वियोग का यह दारुण दु ख सहने की

अपेक्षा मर जाना ही मेरे लिए अच्छा था। मर जाती तो वियोग की ज्वालाओ से तिल-तिल करके जलने से तो बच जाती ! मेरा हृदय कैसा वज्र-कठोर है कि पुत्र वन को जा रहा है और मैं जी रही हू ।

कौशल्या की मार्मिक व्यथा का प्रभाव राम पर पडे बिना न रहा । वे स्वय व्यथित हो उठे और सोचने लगे-अयोध्या की महारानी, प्रतापी दशरथ की पत्नी और राम की माता होकर भी इन्हें कितनी वेदना है ! मेरी माता इतनी शोकातुरा ! मगर इनमे इतना मोह क्यो है ? वे माता का मोह और सताप मिटाने के लिए वचन-रूपी शीतल जल छिडकने लगे । कहने लगे माता, अभी आप धर्म की बात कहती थीं और पिताजी के वरदान को उचित बतलाती थी और अभी-अभी आपकी यह दशा ! बुद्धिमती और ज्ञानशीला नारी की यह दशा नही होनी चाहिए । यह कायर स्त्रियो को शोभा देता है-राम की माता को नही । इतनी कायरता देखकर मेरा भी चित्त विह्वल हो रहा है । जिस माता से मेरा जन्म हुआ, उसे इस तरह की कायरता शोभा नही देती । आप मेरे लिये दुःख मना रही हैं और मैं स्वेच्छापूर्वक वन जा रहा हू ! आपको इतना शोक क्यो है ?

सिहनी एक ही पुत्र जनती है मगर ऐसा जनती है कि उसे किसी भी समय उसके लिये चिन्ता नहीं करनी पडती । सिहनी गुफा मे रहती है और उसका बच्चा जगल मे फिरता रहता है । क्या वह उसके लिये चिन्ता करती है ? वह जानती है कि उसका बच्चा अपनी रक्षा अपने आप कर लेगा । माता ! जब सिहनी अपने बच्चे की चिन्ता नही करती तो आप मेरी चिन्ता क्यो करती हैं ? आपकी चिन्ता से तो यह आशय निकलता है कि राम कायर

है और आप कायर की जननी हैं। आप मेरे वन जाने से घबराती हैं पर वन मे जाने से ही मेरी महिमा बढ सकती है। फिर मैं सदा के लिये नहीं जा रहा हू, कभी न कभी लौट कर आपके दर्शन करूंगा ही। आप मुझे जगत् का कल्याणकारी समझती हैं, मगर आपकी कायरता से तो उलटी ही बात सिद्ध होती है। इस प्रकार अनेको तरह से मातृ-भक्त रामचन्द्र जी ने माता को समझाया कि कही दुःख से अत्यधिक विकल होकर माता वचन-भग न करे और मैं माता की आज्ञा न मानने वाला कलंकी सिद्ध होऊं।

इसी प्रकार जब लक्ष्मण भी रामचन्द्र जी के साथ वन जाने को तैयार हो गए, तब उनकी माता सुमित्रा पुत्र-प्रेम के वशीभूत होकर अत्यन्त व्याकुल हो उठी। जैसे कुल्हाडी से काटने पर कल्प-लता गिर जाती है, उसी प्रकार वह भी मूर्छित होकर गिर पडी। लक्ष्मण यह देख बडी चिन्ता मे पड गए। वे सोचने लगे, कहीं स्नेह के वश होकर माता मुझे मनाई न करदे! लेकिन होश मे आकर सुमित्रा सोचने लगी—हाय, मेरी बहिन कैकेयी ने भी यह कैसा वर मांगा कि राम जैसे आदर्श पुत्र को वन जाना पड रहा है। उसने सब किये-कराए पर पानी फेर दिया। समस्त अवधवासियो की आशा मिट्टी मे मिल गई। हाय राम! तुम क्यो संकट मे पड गए! मगर नही, यह मेरी परीक्षा का अवसर है, पुत्र को कर्त्तव्यपथ से च्युत करने वाली मा कैसी? मा का मातृत्व इसी मे है कि वह पुत्र को निरन्तर उचित मार्ग की ओर अग्रसर करे। स्नेह से विह्वल होकर उचित मार्ग पर जाते हुए पुत्र को लौटा कर कर्त्तव्य-भ्रष्ट करना मातृत्व को लज्जित करना है। मैं गौरवमयी मा हू। सारा विश्व मेरे पुत्र की जगह है। मैं जग-जननी हूं।

मातृत्व के गौरव की आभा से दीप्त सुमित्रा ने अपना

कर्त्तव्य तत्काल निश्चित कर लिया। मीठी वाणी से उन्होंने लक्ष्मण से कहा—वत्स, जिसमे राम को और तुम्हें सुख हो, वही करो। मैं तुम्हारे कर्त्तव्य-पालन मे तनिक भी बाधक होना नहीं चाहती। थोडे मे इतना ही कहती हू कि इतने दिनो तक मैं तुम्हारी माता और राजा दशरथ तुम्हारे पिता थे। मगर आज से राम तुम्हारे पिता और सीता तुम्हारी माता हुई। तुमने राम के साथ वन जाने का निश्चय किया है, यह तुम्हारा नया जन्म है। मैं तुम्हारी पुण्य सम्पत्ति का क्या वखान करू ? तू राम के रग में गहरा रग गया है, यह कम सौभाग्य की वात नहीं है। पुत्र ! तू ने राजमहल त्याग कर राम की सेवा के लिये वन जाने का विचार करके मेरी कूंख को प्रशस्त बना दिया है। तेरी बुद्धि अच्छी है; पर फिर भी मैं तुझे कुछ सीख देती हू। वत्स ! अप्रमत्त भाव से राम की सेवा करना। उन्हीं को अपना पिता और जानकी को अपनी माता समझना। मैं तुझे राम को सौंपती हू। राम को सौपने के वाद तुझे कोई कष्ट नहीं हो सकता। पुत्र ! अयोध्या वही है, जहा राम हैं। जहा सूर्य है, वहीं दिन है। जव रम ही अयोध्या छोड रहे हैं तो तुम्हारा यहा क्या काम है ? इसलिये तुम आनन्द से जाओ। माता-पिता, गुरु, देव, वन्धु और सखा को प्राण के समान समझ कर उनकी सेवा करना नीति का विधान है। तुम राम को ही सव कुछ समझना और सर्वतोभाव से उन्हीं की सेवा मे निरत रहना।

वत्स ! जननी के उदर से जन्म लेने की सार्थकता राम की सेवा करने मे ही है। यह तुम्हें अपने जीवन का वहुमूल्य लाभ मिला है। पुत्र ! तू आज वडभागी हुआ और तेरे पीछे मैं भी भाग्यशालिनी हुई। सब प्रकार के छल कपट को छोडकर तेरा सम्पूर्ण मन राम मे ही लगा है, इससे मैं तुझ पर वार-वार वलि

जाती हूं। मैं उसी स्त्री को पुत्रवती समझती हू, जिसका पुत्र सेवाभावी, त्यागी, परोपकारी, न्याय-धर्म से युक्त और सदाचारी हो। जिसके पुत्र मे ये गुण नही, उस स्त्री का पुत्र को जन्म देना ही वृथा है।

पुत्र सभी स्त्रिया चाहती हैं, पर पुत्र कैसा होना चाहिये, यह बात कोई बिरली ही समझती है। कहावत है—

**जननी जने तो ऐसा जन, कै दाता कै सूर।**
**नीतर रहजे बांझड़ी, मती गमाजे नूर ॥**

अर्थात्—मा, अगर पुत्र पैदा करना है तो ऐसा करना कि या तो वह दानी हो और या शूरवीर हो। नही तो बाझ भले ही रहना पर अपनी शक्ति को कलंकित नहीं करना।

बहिनें पुत्र तो चाहती हैं पर यह जानना नहीं चाहती कि पुत्र कैसा होना चाहिए ? पुत्र उत्पन्न हो जाने पर उसे सुसंस्कारी बनाने की कितनी जिम्मेवारी आ जाती है, इस बात पर ध्यान न देने से उनका पुत्र उत्पन्न करना व्यर्थ हो जाता है।

सुमित्रा फिर कहती है—लक्ष्मण! तेरा भाग्योदय करने के लिये ही राम वन मे जा रहे हैं। वह अयोध्या मे रहते तो उनकी सेवा करने वालो की कमी नही रहती। वन मे की जाने वाली सेवा, तेरी सेवा—मूल्यवान् सिद्ध होगी। सेवक की परीक्षा संकट के समय पर ही होती है। राम वन न जाते तो तुम्हारी परीक्षा कैसे होती ?

धन्य है सुमित्रा! उसके हृदय मे पुत्र-वियोग की व्यथा

कितनी गहरी होगी, इसका अनुमान लगाना कठिन है। लेकिन उसने धैर्य नही छोडा। वह लक्ष्मण से कहने लगी—वत्स! राग, द्वेष और मोह त्याग करके वन मे राम और सीता की सेवा करना। राम के साथ रहकर सब विकार तज देना। जब राम और सीता तेरे साथ हैं तो वन तुझे कष्टदायक नही हो सकता। हे वत्स! मेरा आशीर्वाद है कि तुम दोनो भाई सूर्य और चन्द्र की भाति जगत् का अन्धकार मिटाओ, प्रकाश फैलाओ, तुम्हारी कीर्ति अमर हो।

रामचन्द्र जी के वनवास के लिये प्रस्थान कर देने पर तो अवधनिवासी बहुत ही व्याकुल हुए। वे तो चाहते थे कि राम राज्य-सिंहासन को सुशोभित करें। अत उन्हे लौटाने के लिये फिर सब लोग वन को गए। साथ मे कैकेयी भी स्वय वहा पहुची और उन्हे लौटाने का प्रयत्न करने लगी। यद्यपि वह विमाता थी, लेकिन यह बात नही थी कि वह कौशल्या, सुमित्रा आदि से द्वेष रखती थी तथा राम-लक्ष्मण आदि से प्रेम नही करती थी। कैकेयी के चरित्र से यह स्पष्ट था कि उसके हृदय मे किसी भी प्रकार की मलिनता नही थी। वह भी उतनी ही दयार्द्र तथा कोमल स्वभाव वाली थी, जितनी कि कौशल्या व सुमित्रा। तीनो सहोदरो की भाति एक-दूसरे से प्रेम करती थीं। उनके चारो पुत्रो मे भी किसी प्रकार का भेद-भाव न था। सुमित्रा लक्ष्मण को भी उतना ही प्रेम करती थी, जितना राम को। कौशल्या और कैकेयी ने भरत और राम से अपने पुत्रो की ही भाति स्नेह किया था। कैकेयी को किन्हीं विशेष परिस्थितियो तथा कुछ गलतफहमियो से दो वर-दान मांगने पडे। उसका पूर्व-चरित्र कदापि इतना दूषित नहीं था। राम के चले जाने पर उसे बहुत ही दु ख हुआ। अपने किये पर उसे बहुत पश्चात्ताप हुआ। उसके सहज स्नेह और वात्सल्य पर एक

प्रकार की कुबुद्धि का जो वातावरण पड गया था, वह हट कर निर्मल स्नेह–रस मे परिणत हो गया, क्योकि आखिर मातृप्रेम ही तो ठहरा! कुछ समय के लिये चाहे माता बच्चे को यातनाएं तथा ताडनाए भी दे, पर उसका प्रेम तो कही नहीं जा सकता। वह तो हृदय की एक सदैव स्थित रहने वाली बहुमूल्य वस्तु है, जो माता से कभी पृथक् नही की जा सकती। कैकेयी के हृदय से पुत्रप्रेम फूट–फूट कर बह निकला। वह राम को अयोध्या लौट चलने के लिए आग्रह करने लगी। राम के हृदय मे तो माताओ के प्रति कोई भेद–भाव था ही नही, वे जरा भी भिन्नता का अनुभव नहीं करते थे।

महारानी कैकेयी ने अत्यन्त सरल हृदय से पश्चात्ताप किया। वह बोली—'वत्स! जो कुछ होना था, सा हो चुका। मुझे कलक लगना था सो लग गया। अब इस स्थिति का अन्त लाना तुम्हारे हाथ है। मेरा कलक कम करना हो तो मेरी बात मान कर अयोध्या चलो। तुमने मुझे बहिन कौशल्या के ही समान समझा है तो मेरी बात अवश्य मान लो। मैं अब तक भरत को ही अपना सबसे अधिक प्रिय समझती थी। मोहवश मैं मानती थी कि भरत ही मेरा पुत्र है और वही मुझे सबसे अधिक प्रिय होना चाहिए। अपने प्रिय के लिए सब कुछ किया जाता है। इसीलिए मैंने सोचा कि अगर मैंने भरत के लिये वरदान मे राज्य न मांगा तो फिर वर मागना ही किस काम का? लेकिन भरत ने मेरी भूल सुधार दी है। भरत ने मुझे सिखा दिया है कि 'अगर मैं तुम्हे प्रिय हू तो राम मुझ प्रिय हैं। तू मेरे प्रिय से छुडा कर मुझे सुखी कैसे कर सकती है? यह राज्य तो राम के सामने नगण्य है। मुझ से राम को दूर करना तो मेरे साथ शत्रुता करना है। राज्य मुझे प्यारा नही है, मुझे तो राम प्यारे हैं।' इस प्रकार भरत के समझाने से मैं समझ

गई हू कि अपने प्रिय राम के बिछुड जाने से भरत निष्प्राण-सा हो रहा है। राम, तुम मेरे प्रिय के प्रिय हो तो मेरे लिए तो दुगुने प्रिय हो। अब तुम मुझे छोडकर अलग नहीं रह सकते। यह निश्चय है कि तुम्हारे रहते ही भरत मेरा रह सकता है। तुम्हारे न रहने पर भरत भी मेरा नहीं रह सकता।'

कैकेयी कहती है—'राम ! मैं नही जानती थी कि भरत मेरा नहीं राम का है। अगर मैं जानती कि मैं राम की रहू तभी भरत मेरा है, नही तो भरत भी मेरा नही है, तो मैं तुम्हारा राज्य छीनने का प्रयत्न ही न करती। मुझे क्या पता था कि भरत राम को छोडने वाली माता को छोड देगा।'

अगर आपके माता-पिता परमात्मा का परित्याग कर दें और ऐसी स्थिति हो कि आपको माता–पिता या परमात्मा मे से किसी एक को ही चुनना पडे तो आप किसे चुनेंगे ? माता–पिता का परित्याग करेंगे या परमात्मा का ? परमात्मा को त्यागने वाला चाहे कोई भी क्यो न हो, उसका त्याग किये बिना कल्याण नही हो सकता।

कैकेयी फिर कहने लगी—'मुझे पहले मालूम नहीं था कि तुम भरत को अपने से भी पहिले मानते हो। काश ! मैं पहले समझ गई होती कि तुम भरत का कष्ट मिटाने के लिये इतना महान् कष्ट उठा सकते हो। ऐसा न होता तो तुम्हारा राज्य छीनने की हिम्मत किसमे होती ? खास तौर पर जब लक्ष्मण भी तुम्हारे साथ थे। तुमने महाराज के सामने भरत को और अपने आपको बांई और दांई आंख बताया था। यह सचाई अब मैं भली-भांति समझ रही हू। मैं अब जान गई कि तुम भरत को प्राणों से भी ज्यादा प्यार करते हो।'

कैकेयी कहती गई—'वत्स ! तुम्हारे राज्य-त्याग से सूर्यवंश के एक नररत्न की परीक्षा हुई है । तुम्हारे वन आने पर लक्ष्मण ने भी सब सुखो का त्याग करके वन आना पसंद किया । भरत ने राजा होकर भी क्षण भर भी शाति नही पाई । शत्रुघ्न भी बेहद दुखी हो रहा है । चारो भाइयो मे से एक भी अपना स्वार्थ नही देखता है । सभी एक-दूसरे को सुखी करने के लिये अधिक से अधिक त्याग करने के लिये तैयार हैं । सब का सब पर अपार स्नेह है । तुम्हारा यह भ्रातृप्रेम मेरे कारण ही प्रकट हुआ है । इस दृष्टिकोण से मेरा पाप भी पुण्य-सा हो गया है और मुझे सतोष दे रहा है । भले ही मैंने अप्रशस्त कार्य किया है किन्तु फल उसका यह हुआ कि चिरकाल तक लोग भ्रातृप्रेम के लिए तुम लोगों का स्मरण करेंगे । कीचड-कीचड ही है पर कमल उत्पन्न होने से कीचड की भी शोभा बढ जाती है । मेरा अनुचित कृत्य भी इस प्रकार अच्छा हो गया । मैं अच्छी हू या बुरी, जैसी भी हू, सो हू । मगर तुम्हारा अन्तःकरण सर्वथा शुद्ध है । मेरी लाज आज तुम्हारे हाथ मे है । अयोध्या लौटने पर ही उसकी रक्षा होगी, अन्यथा मेरे नाम पर जो धिक्कार दिया जा रहा है, वह बद न होगा ।'

कैकेयी मे अपनी भूल सुधारने का साहस था । इसी कारण उसने बिगडी बात बना ली । वह कहने लगी—'राम, मैं तर्क नहीं जानती । मुझे वाद-विवाद करना नही आता । मैं राजनीति से अनभिज्ञ हू । मेरे पास सिर्फ अधीर हृदय है । अधीर हृदय लेकर मैं तुम्हारे पास आई हू । मैं माता हू और तुम मेरे पुत्र हो, फिर भी प्रार्थना करती हू कि अब अयोध्या लौट चलो । 'गई सो गई अब राख रही को ।' बीती बात को बार-बार याद करके वर्त-मान की रक्षा न करना अच्छा नही है ।

हे राम ! इस परिवर्तनशील ससार मे एक-सा कौन रहता

है ? सूर्य भी प्रतिदिन तीन अवस्थाएं धारण करता है। इसी प्रकार सभी कुछ बदलता रहता है। तो फिर तुम्हारी इस स्थिति मे परिवर्तन क्यो नही होगा ? मेरे भाग्य ने मेरे साथ छल किया था, इससे मुझे अपयश मिला, लेकिन मेरा भाग्य अब बदल गया है और इसी कारण मुझे अपनी भूल मालूम पडी है। अब मैं पहले वाली कैकेयी नही हू। पुत्र ! मैं तुम्हारे निहोरे करती हू कि अब तुम अयोध्या वापिस लौट चलो।

रामचन्द्र जी अभी तक माता की बातें सुन रहे थे। अब उन्होंने नम्रतापूर्वक मुस्कराते हुए कहा—'माताजी, बचपन से ही आपका मातृस्नेह मुझ पर रहा है और अब भी यह वैसा ही है। आप माता हैं, मैं आपका पुत्र हू। माता को पुत्र के आगे इतना अधीर नही होना चाहिए। आपने ऐसा किया ही क्या है, जिसके लिए इतना खेद और पश्चात्ताप करना पडे ? राज्य कोई बडी चीज नही है और वह भी मेरे भाई के लिए ही आपने मागा था, किसी गैर के लिए नही। जब मैं और भरत दो नही हैं, तब तो यह प्रश्न ही नही उठता कि कौन राजा है और कौन नही ? इतनी साधारण-सी बात को इतना अधिक महत्त्व मिल गया है। आप चिन्ता न करें। मेरे मन मे तनिक भी मैल नही है। भरत ने एक जिम्मेदारी लेकर मुझे दूसरा काम करने के लिए स्वतन्त्र कर दिया है।'

'माताजी ! जहा मा-बेटे का सम्बन्ध हो, वहा इतनी लम्बी बात-चीत की आवश्यकता ही नहीं है। आपके सम्पूर्ण कथन का सार यही है कि मैं अवध को लौट चलू लेकिन यह कहना माता के लिए उचित नही है। आप शांत और स्थिर चित्त हो विचार करें कि ऐसी आज्ञा देना क्या उचित होगा ? आपकी आज्ञा मुझे

सदैव शिरोधार्य है । माता की आज्ञा का पालन करना पुत्र का कर्त्तव्य है लेकिन माता ! तुम्ही ने तो मुझे पाल-पोसकर एक विशिष्ट साचे मे ढाला है । मुझे इस योग्य वनाया है । इसलिये मैं तो आपकी आज्ञा का पालन करूगा ही, मगर निवेदन यही है कि आप उस साचे को न भूलें, जिसमे आपने मुझे ढाला है । मेरे लिए एक ओर आप हैं और दूसरी ओर सारा ससार है । सारे ससार की उपेक्षा करके भी मैं आपकी आज्ञा मानना उचित समझूंगा ।'

'माताजी, आपका आदेश मेरे लिए सबसे बडा है और उसकी अवहेलना करना बहुत बडा पाप होगा लेकिन यह बात आप स्वय सोच लें कि आपका आदेश कैसा होना चाहिए ? आप मुझसे अवध चलने को कहती हैं, यह तो आप अपनी आज्ञा की अवहेलना कर रही हैं । मैंने आपकी आज्ञा पालन करने के लिये ही वनवास स्वीकार किया है । क्या अब आपकी ही आज्ञा की अवहेलना करना उचित होगा ? ऐसे साचे मे आपने मुझे ढाला ही नहीं है । रघुवंश की महारानिया एक बार जो आज्ञा देती हैं, फिर उसका कदापि उल्लघन नही करतीं ।'

आप कह सकती हैं कि क्या मेरा और भरत का यहां आना असफल हुआ ? लेकिन यह बात नही है । आपका आगमन सफल हुआ है । यहां आने पर ही आपको मालूम हुआ होगा कि आपका आदेश मेरे सिर पर है । पहले आप सोचती होंगी कि वन मे राम आदि दुखी हैं । क्या आपको हम तीनो के चेहरे पर कही दुख की रेखा भी दिखाई पडती है ? हमने ससार को यह दिखा दिया कि सुख अपने मन मे है, कही बाहर से नहीं आता ।'

'माता ! आपने यहां आकर देख लिया कि राम, लक्ष्मण

और जानकी दुःखी नहीं हैं वरन् सन्तुष्ट और सुखी हैं। अगर अब
भी आपको विश्वास न हो तो हम फिर भी कभी विश्वास दिला
देंगे कि हम प्रत्येक परिस्थिति में आनन्दमय ही रहते हैं, कभी दुःखी
नहीं होते। सूर्यकुल में जन्म लेने वालों की प्रतिज्ञा होती है कि
वे प्राण जाते समय भी आनन्द मानें, लेकिन वचन-भग होते समय
प्राण जाने की अपेक्षा अधिक दुःख मानें। पिताजी ने भी यही
कहा था, ऐसी दशा मे आप अयोध्या से चलकर मेरे प्रण को भग
करेंगी और मुझे दुःख मे डालेंगी ? अगर आप सूर्यकुल की परम्परा
को कायम रहने देना चाहती हैं और मेरे प्रण को भग नहीं होने
देना चाहती तो अयोध्या लौटने का आग्रह न करें। साथ ही साथ
आत्म-ग्लानि की भावना का भी परित्याग कर दें। मैं स्वेच्छा से
ही वनवास कर रहा हूं। इसमें आपका कोई दोष नहीं है। विशे-
षत इस दशा मे जबकि आप स्वय आकर अयोध्या लौट चलने का
आग्रह कर रही हैं तो उसमें आपका दोष कैसे हो सकता है ?

माताजी ! मैंने जो कुछ भी कहा है, स्वच्छ अन्तःकरण से
ही कहा है। आप उस पर विश्वास कीजिये। आप मेरी गौरव-
मयी मां हैं, ऐसा मन मे विचार कर प्रसन्नतापूर्वक मुझे वनवास
का आदेश दीजिये।

इस प्रकार मातृप्रेम व वात्सल्य का उदाहरण कैकेयी ने
उपस्थित कर भारतीय नारियों के लिए एक आदर्श स्थापित किया।
विमाता होते हुए भी उसके हृदय मे स्नेह की धाराएं सदा प्रवा-
हित होती थी। किन्हीं परिस्थितियों मे या अज्ञानतावश चाहे कुछ
समय के लिए माता बच्चे पर नाराज भी हो उठे पर इसका यह
तात्पर्य नहीं कि वह उससे स्नेह नहीं करती। बाल्यकाल में माताओं
के उन्हीं सस्कारों का ही तो परिणाम था, जिनके कारण राम में

ऐसे आदर्श व्यक्तित्व और चरित्र की नीव पडी। अगर माताएं योग्य न होती, अशिक्षित, असस्कृत और मूर्ख होती तो उनसे क्या आशा की जा सकती थी कि वे रामचन्द्र जैसे पुत्र-रत्न को पैदा करती ? तीनो माताएं सगी माताओ से किसी प्रकार कम न थी, अत. तीनो के सत्सस्कार चारो पुत्रो पर अंकित थे।

नाना यातनाएं सहकर भी रामचन्द्र ने विश्व को बता दिया कि जब तक माता-पिता खाने-पीने को दें, अच्छा पहनने-ओढ़ने को दें, खूब सुखपूर्वक रखें, तब तक उनकी सेवा करने मे कोई विशेषता नही है। बिशेषता तो तब है, जब माता-पिता द्वारा सभी कुछ छीन लेने पर भी पुत्र उनकी उसी प्रकार सेवा करे, जैसी पहिले करता था। इस प्रकार सेवा करने वाला पुत्र वास्तव मे सच्चा पुत्र है और भाग्यशाली है।

## ९-माता का उपकार

मा बच्चे को जन्म देती है। नौ महीने उदर मे रखे हुए नाना तकलीफो का सामना करती है। पैदा होने के बाद तो उसके सकटो की गिनती ही नही रहती। फिर भी वह हसती-हसती पुत्र का मुह देखकर सब कुछ सहन करती है। माता का पुत्र पर असीम उपकार है। माता बालक को जन्म देती है, अतएव कहा जा सकता है कि यह शरीर माता ने दिया है लेकिन बहुत से लोग माता-पिता के महान् उपकारो का विस्मरण करके पीछे से आई हुई स्त्री के मनोहारी हावभाव से मुग्ध होकर उसकी सम्मोहिनी माया के जाल मे फसकर, माता-पिता के शत्रु बन जाते हैं और स्त्री की उगली के इशारे पर नाचते हैं। वह जिस प्रकार नचाती है, पुरुष बन्दर की तरह उसी प्रकार नाचता है। कई लोग

तो माता-पिता को इतनी पीड़ा देते हैं कि सुनकर हृदय मर्माहत हो उठता है। उन्हें अपशब्द सुनाने, मार-पीट करने तक की घटनाएं घटती हैं। ये सब बातें मनुष्य की कितने दर्जे की कृतघ्नता सूचित करती हैं!

जिस माता ने अपने यौवन के सौन्दर्य की परवाह न करके, अपने हृदय के रस से—दूध से बालक के प्राणों की रक्षा की, जिसके उदर में रहने पर उसकी रक्षा के लिये संयम से रही, प्रसव के पश्चात् जिसने सब प्रकार की घृणा को ममता के ऊपर न्यौछावर कर दिया, जो बालक पर अपना सर्वस्व निछावर करने को उद्यत रही, जिसकी बदौलत पुत्र, पत्नी पाने योग्य बना, जिसने अपने पुत्र और पुत्र-वधू से अनेकानेक मसूबे बाधे, उसी माता की वृद्धावस्था में जब दयनीय दशा होती है और वह भी अपने पुत्र के हाथ से, तब उस पूत को क्या कहा जा सकता है?

इस प्रश्न का उत्तर मिलना आज कठिन है। पुरुषों ने स्त्रियों की जो अवहेलना की है, उस अवहेलना की छाया में इस प्रश्न का उत्तर सूझना आज कठिन है।

अगर तटस्थता से विचार किया जाय तो ज्ञात होगा कि महिलावर्ग के प्रति कितना अन्याय किया जा रहा है! पुरुषों ने स्त्री-समाज को ऐसी परिस्थिति में रखा है, जिससे वे निरी बेवकूफ रहना ही अपना कर्त्तव्य समझें। कई पुरुष तो स्त्रियों को पैर की जूती तक कह देने का साहस कर डालते हैं लेकिन तीर्थंकर की माता को प्रणाम करके इन्द्र क्या कहा गया है, इस पर विचार करो। इस पर भी विचार करो कि इन्द्र ने तीर्थंकर की माता को प्रणाम क्यों किया और तीर्थंकर के पिता को प्रणाम क्यों नहीं किया?

इन्द्र कहता है—'हे रत्नकुक्षि-धारिणी ! हे जगत्विख्याता ! हे महामहिमा-मडिता माता ! आप धन्य हैं। आपने धर्म-तीर्थ की स्थापना करने वाले और भव-सागर से पार उतारने वाले, संसार मे सुख एव शाति की सस्थापना करने वाले त्रिलोकीनाथ को जन्म दिया है। अम्बे ! आप कृतपुण्या और सुलक्षणा हैं। आपने जगत् को पावन किया है।'

अब बताइये माता का पक्ष बडा होता है या पिता का ? इन्द्र पिता को सिर नही झुकाता, इसका क्या कारण है ? देवों का राजा इन्द्र मनुष्यो मे से ससारत्यागियो को छोड़कर अगर किसी को नमस्कार करता है, तो तीर्थंकर भगवान् की माता को ही। और किसी के सामने इन्द्र का मस्तक नही झुकता।

इन्द्र ने महारानी त्रिशला को नमस्कार किया सो क्या भूल की थी ? या सिद्धार्थ महाराज रानी त्रिशला की अपेक्षा किसी बात में कम थे ? महारानी त्रिशला को इन्द्र ने प्रणाम किया। इसका कारण यह है कि भगवान् महावीर माता के ही निकट हैं। भगवान् को बडा बताना और भगवान् जिनके प्रति अति सन्निकट हैं, उन्हें बडा न बताना, यह उनका अपमान है।

आजकल चक्कर उल्टा चल रहा है। लोग पूजा-पाठ, जप-तप आदि मे इन्द्र की स्थापना करते हैं, बुलाते हैं, उसे चाहते हैं पर इन्द्र भी जिसको प्रणाम करता है, ऐसी माता को नही चाहते। पर माता कितनी स्नेहमयी होती है ! वह पुत्र के सिवाय इन्द्र को भी नही चाहती। इन्द्र भगवान् की माता के पास प्रणाम करने जाता है पर भगवान् की माता क्या उससे किसी प्रकार की याचना करती हैं ? इन्द्र, माता को नमस्कार करता है पर माता इन्द्र को न चाहकर तीर्थंकर को ही चाहती है। ऐसी माता के

ऋण से क्या कोई उऋण हो सकता है ?

ठाणांग सूत्र मे वर्णन आता है कि गौतम-स्वामी ने भगवान् महावीर से पूछा, "भगवन्, अगर पुत्र माता-पिता को नहलाये, वस्त्राभूषण पहनावे, भोजन आदि सब प्रकार से सुख देवे और उन्हें कन्धे पर उठाकर फिरे तो क्या वह माता-पिता के ऋण से उऋण हो सकता है ? भगवान् ने उत्तर दिया—

नायमट्ठे समट्ठे ।

अर्थात् ऐसा होना सम्भव नही । इतना करके भी पुत्र माता के ऋण से उऋण नहीं हो सकता ।

इसका आशय यही है कि वास्तव मे इतना करने पर भी माता के उपकार का बदला नहीं चुका सकता । कल्पना कीजिये, किसी आदमी पर करोडों का ऋण है । ऋण मांगने वाला ऋणी के घर गया । ऋणी ने उसका आदर-सत्कार किया और हाथ जोड-कर कहा-'मैं आपका ऋणी हू और ऋण को अवश्य चुकाऊगा ।' अब आप कहिये कि आदर-सत्कार करने और हाथ जोडने से ही क्या वह ऋणी ऋणरहित हो गया ?

राजा बाग तैयार करवाए और किसी माली को सौंप दे । माली बाग में से दस-बीस फल लाकर राजा को सौंप दे तो क्या वह राजा के ऋण से मुक्त हो जाएगा ?

नही !

इसी प्रकार यह शरीर भी दगोंका माता-पिता के द्वारा बनाया गया है । उनके बनाए शरीर से ही उनकी सेवा की तो

क्या विशेषता हो गई ? यह शरीर तो उन्ही का था। फिर शरीर से सेवा करके पुत्र उनके उपकार से मुक्त किस प्रकार हो सकता है ?

एक माता ने अपने कलियुगी पुत्र से कहा—मैंने तुझे जन्म दिया है, पाल-पोसकर बडा किया है, जरा इस बात पर विचार तो कर बेटा !

बेटा नई रोशनी का था। उसने कहा—फिजूल बडबड मत कर। तू जन्म देने वाली है कौन ? मैं नही था, तब तू रोती थी, बाझ कहलाती थी। मैंने जन्म लिया, तब तेरे यहा बाजे बजे और मेरी बदौलत ससार मे पूछ होने लगी। नही तो बाझ समझकर कोई तेरा मुह देखना भी पसन्द नही करता था। फिर मेरे इस कोमल शरीर को तूने अपना खिलौना बनाया, इससे अपना मनोरजन किया, लाड-प्यार करके आनन्द उठाया। इस पर भी उपकार जतलाती हो ?

माता ने कहा—मैंने तुझे पेट मे रखा सो ?

बेटा-तुमने जान बूझकर पेट मे थोडे ही रखा था। तुम अपने सुख के लिये प्रयत्न करती थी। इसमे तुम्हारा उपकार ही क्या है ? फिर भी अगर उपकार जतलाती हो तो पेट का किराया ले लो।

यह आज की सभ्यता है। भारतीय सस्कृति आज पश्चिमी सभ्यता का शिकार बनी जा रही है और भारतीय जनता अपनी पूजी को नष्ट कर रही है।

माता ने कहा—कोठरी की तरह तू मेरे पेट का भाडा देने को तैयार है, पर मैंने तुझे अपना दूध भी तो पिलाया है।

बेटा—हम दूध न पीते तो तू मर जाती। तेरे स्तन फटने लगते। अनेक बीमारियां हो जाती। मैंने दूध पीकर तुझे जिन्दा रखा है।

माता ने सोचा—यह बिगडैल बेटा ऐसे नहीं मानेगा। तब उसने कहा—अच्छा चल गुरुजी से इसका फैसला करा लें। अगर गुरुजी कहेंगे कि पुत्र पर माता-पिता का उपकार नहीं है तो मैं अब से कुछ भी नहीं कहूंगी। मैं माता हूं। मेरा उपकार मान या न मान, मैं तेरी सेवा से मुंह नहीं मोड सकूंगी।

माता की बात सुनकर लडके ने सोचा—शास्त्रवेत्ता तो कहते हैं कि मनुष्य कर्म से जन्म लेता है और पुण्य से पलता है। इसके अतिरिक्त गुरुजी माता-पिता की सेवा करने को एकांत पाप भी कहते हैं। फिर चलने मे हर्ज ही क्या है?

यह सोचकर लडके ने गुरुजी से फैसला कराना स्वीकार कर लिया। वह गुरुजी के पास चला गया।

दोनों माता-पुत्र गुरु के पास पहुंचे। वहां माता ने पूछा—'महाराज, शास्त्र मे कहीं माता-पिता के उपकार का भी हिसाब बतलाया है या नहीं? गुरु ने कहा—जिसमे माता पिता के उपकार का वर्णन न हो, वह शास्त्र, शास्त्र ही नहीं। वेद मे माता-पिता के सम्बन्ध मे कहा है।

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव।

ठाणांग सूत्र मे भी ऐसी ही बात कही गई है।

गुरु की बात सुनकर मां ने पूछा—माता-पिता का उपकार

पुत्र पर है या पुत्र का उपकार माता-पिता पर है ?

गुरु ने ठाणांग सूत्र निकाल कर बतलाया और कहा—बेटा अपने माता-पिता के ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकता, चाहे वह कितनी ही सेवा करे।

गुरु की बात सुनकर पुत्र अपनी माता से कहने लगा—देखलो, शास्त्र मे भी यही लिखा है न कि सेवा करके पुत्र, माता-पिता के उपकार से मुक्त नही होता ! फिर सेवा करने से क्या लाभ है ?

पुत्र ने जो निष्कर्ष निकाला, उसे सुनकर गुरु बोले—मूर्ख, माता का उपकार अनन्त है और पुत्र की सेवा परिमित है। इस कारण वह उपकार से मुक्त नही हो सकता। पावनेदार जब कर्ज-दार के घर तकाजा करने जाता है, तब उसका सत्कार करना तो शिष्टाचार मात्र है। उस सत्कार से ऋण नही पट सकता। इसी प्रकार माता-पिता की सेवा करना शिष्टाचार मात्र है। इतना करने से पुत्र उनके उपकारो से मुक्त नही हो सकता। पर इससे यह मतलब नही निकलता कि माता-पिता की सेवा नहीं करनी चाहिये। अपने धर्म का विचार करके पुत्र को माता-पिता की सेवा करनी ही चाहिये। माता-पिता ने अपने धर्म का विचार करके तेरा पालन-पोषण किया है। नही तो क्या ऐसे माता-पिता नही मिलते, जो अपनी सतान के प्राण ले लेते हैं ?

गुरु की बात सुनकर माता को कुछ जोर बंधा। उसने कहा-अब सुनले कि मेरा तुझ पर उपकार है या नही ? इसके बाद उसने गुरुजी से कहा—महाराज, यह मुझसे कहता है कि तूने पेट मे रखा है तो उसका भाड़ा ले ले। इस विषय मे शास्त्र क्या कहता है ?

प्रश्न सुनकर गुरुजी ने शास्त्र निकालकर बताया । उसमे लिखा था कि गौतम स्वामी के प्रश्न करने पर भगवान् ने उत्तर दिया कि इस शरीर मे तीन अंग माता के, तीन अंग पिता के और शेष अंग दोनो के हैं । मांस रक्त और मस्तक माता के हैं । हाड, मज्जा और रोम पिता के हैं । शेष भाग माता और पिना दोनो के सम्मिलित हैं ।

माता ने कहा—बेटा ! तेरे शरीर का रक्त और मास मेरा है । हमारी चीजें हमे दे दे और इतने दिन इनसे काम लेने का भाड़ा भी चुकता कर दे ।

यह सब सुनकर बेटे की आंख खुली । उसे माता और पिता के उपकारों का ख्याल आया तो उनके प्रति प्रबल भक्ति हुई । वह पश्चाताप करके कहने लगा—मैं कुचाल चल रहा था । कुसगति के कारण मेरी बुद्धि मलिन हो गई थी । इसके बाद वह गुरुजी के चरणो मे गिर पडा और कहने लगा—माता-पिता का उपकार तो मैं समझ गया पर उस उपकार को समझाने वाले का उपकार समझ सकना कठिन है । आपके अनुग्रह से मैं माता-पिता का उपकार समझ सका हू ।

कहने का आशय यही है कि मातृत्व को समझने के लिये सर्वप्रथम माता-पिता के प्रति श्रद्धा की भावना लाओ ।

भले ही पुत्र कितना भी पढा-लिखा क्यों न हो, बुद्धि-वैभव कितना ही विशाल क्यो न हो, समाज मे कितनी ही प्रतिष्ठा क्यो न हो, फिर भी माता के समक्ष विनम्रता धारण करना पुत्र का कर्त्तव्य है । अगर पुत्र विनीत है तो उसके सद्गुणों का विकास ही होगा । प्रतिष्ठा मे वृद्धि ही होगी । ह्रास होने की तो कोई

सम्भावना ही नहीं की जा सकती। पुत्र अगर माता-पिता का आदर करेगा तो लोग भी उसका आदर करेंगे।

जो अविनीत है, जो माता-पिता की अवज्ञा करता है और जो माता पिता की इच्छा के विरुद्ध चलता है, वह कुल के लिये अगार है। इसीलिये वह अविनीत कहलाता है।

## ७-संस्कारों का आरोपण

अविनय, अशिक्षा आदि दुर्गुणो को दूर करने का प्रयत्न सर्वप्रथम बाल्यावस्था मे ही माता के द्वारा किया जाना चाहिये। बचपन के सस्कार जीवन भर के लिये होते हैं। माता के सभी अच्छे या बुरे सस्कार बच्चे पर पडे बिना नही रहते। माता अगर चाहे तो अपने सद्गुणो द्वारा बच्चे को गुणवान् बना सकती है।

ज्ञानियो का कथन है कि बालक का जितना सुधार बचपन मे होता है, उतना और कभी नही होता। मान लीजिये किसी वृक्ष का अकुर अभी छोटा है। वह फल-फूल नही देता। उस अंकुर से लाभ तो फल-फूल आने पर होगा, लेकिन फल-फूल आदि की समस्त शक्तिया उस अकुर मे उस समय भी अव्यक्त रूप मे मौजूद रहती हैं। अकुर अगर जल जाय तो फल-फूल आने की कोई क्रिया नही होती।

इसी प्रकार बालक मे मनुष्य की सब शक्तियाँ छिपी हुई हैं। योग्य दिशा मे उसका विकास होने पर समय पाकर उसकी शक्तियां खिल उठती हैं। मगर बालक को पालने मे डालकर दबा रखने से उसका विकास नही होता। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने एक जगह लिखा

है कि "पांच वर्ष तक के बालक को सिले कपडे पहनाने की आवश्यकता नही है। इस अवस्था मे बालक को कपडो मे लाद लेने का परिणाम यही होता है, जो अंकुर को ढाक देने से होता है। बालक कपडा पहनने से दबा रहता है। प्रकृति ने उसे ऐसी सज्ञा दी है कि कपडा उसे सुहाता नही और जबर्दस्ती करने पर वह रोने लगता है। लेकिन उसके रोने को मा-बाप उसी तरह नही सुनते जैसे भारतीयो के रोने को अंग्रेज नही सुनते थे। माताए अपने मनोरजन के लिये या बडप्पन दिखाने के लिये बच्चे को कपडो मे जकड देती हैं और इतने से सतुष्ट न होकर हाथ-पैरो मे गहनो की बेडिया भी डाल देती हैं। पैरो मे बूट पहना देती हैं। इस प्रकार जैसे उगते हुए अंकुर को ढक कर उसका सत्यानाश किया जाता है, उसी प्रकार बालक के शरीर को ढक कर, जकडकर उसका विकास रोक दिया जाता है। अशिक्षित स्त्रिया बालक के लिये गहने न मिलने पर रोने लगती हैं, जबकि उन्हे अपना और बच्चे का सौभाग्य मानना चाहिए।"

बच्चो के बचपन मे ही संस्कार सुधारने चाहिये। बडे होने पर तो वे अपने आप सब बातें समझने लगेगे। मगर उनका झुकाव और उनकी प्रवृत्ति बचपन मे पडे संस्कारो के अनुसार ही होगी।

आजकल बहुत कम माताए बच्चो को बचपन मे दी जाने वाली शिक्षा के महत्त्व को समझती है और अधिकांश माता-पिता शिक्षा को आजीविका का मददगार समझकर, पेट भरने का साधन मान कर ही बच्चो को शिक्षा दिलाते है। इसी कारण वे शिक्षा के विषय मे भी गलती करते है। लोग छोटे बच्चो के लिये कम वेतन वाले छोटे अध्यापक नियत करते है किन्तु यह बहुत बडी भूल है। छोटे बच्चो मे अच्छे संस्कार डालने के लिये अधिक

अनुभवी अध्यापक की आवश्यकता होती है ।

एक यूरोपियन ने अपनी लडकी को शिक्षा देने के लिये एक विदुषी महिला नियुक्त की । । उनसे एक सज्जन ने पूछा—आपकी लडकी तो बहुत छोटी है और प्रारम्भिक पढाई चल रही है, उसके लिये इतनी बडी विदुषी की क्या आवश्यकता है ? उस यूरोपियन ने उत्तर दिया—'आप इसका रहस्य नही समझ सकते । छोटे बच्चो मे जितने जल्दी सस्कार डाले जा सकते हैं, बडो मे नही । यह बालिका अच्छा शिक्षण पाने से थोडे ही दिनो मे बुद्धमती बन जाएगी ।'

प्राचीनकाल के शिक्षक विद्यार्थियो को यह समझाते थे कि माता-पिता का क्या दर्जा है और उनके प्रति पुत्र का क्या कर्त्तव्य है ? आज भी यह बात सिखाने की नितात आवश्यकता है ।

बालक को सस्कार-सम्पन्न बनाने का उत्तरदायित्व, जैसा कि पहले कहा गया है, शिक्षको पर तो है ही, मगर पिता और विशेषकर ही नहीं परन्तु अनिवार्य रूप से माता पर है । माता के सहयोग के बिना शिक्षक अपने प्रयत्न मे पूरी तरह सफल नही हो सकता ।

जो यह कहा गया है कि सन्तान तो पशु भी उत्पन्न करते हैं, ठीक ही है । इसमे मनुष्य की कोई विशेषता नही । मनुष्य की विशेषता सन्तान का समुचित रूप से पालन-पोषण करके सुसस्कारी बनाने मे है ।

शिक्षा के साथ बालक के माता-पिता का सहयोग नितात जरूरी है । मान लीजिये, शिक्षक पाठशाला मे बालक को सत्य बोलने की सीख देता है और स्वय भी सत्य बोलकर उसके सामने आदर्श

उपस्थित करता है, मगर बालक जब घर पर आता है और अपनी माता को एक पैसे के लिये झूठ बोलते देखता है तो पाठशाला का उपदेश समाप्त हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में वह किसका अनुकरण करे? शिक्षक का या माता का? शिक्षक ने ही तो बालक को माँ के प्रति भक्ति-भाव रखने का उपदेश दिया है। उस उपदेश के अनुसार भी वह माता के असत्य से घृणा नहीं कर सकता। बहुत सूक्ष्म विचार करने की उसमें बुद्धि ही कहाँ है? बालक के सामने जब इस प्रकार की गड़बड़ उपस्थित हो जाती है, इस प्रकार की विरोधी परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं तो वह अपने आप ही मार्ग निकाल लेता है। वह सोचता है—कहना तो यही चाहिये कि असत्य मत बोलो, सत्य भाषण ही करो, मगर काम पड़ने पर माँ की तरह असत्य का प्रयोग करना चाहिये। ऐसा ही कुछ निर्णय करके बालक या तो ढोंगी बन जाता है या असत्यवादी, किन्तु सत्य का उपदेशक बन जाता है। इस प्रकार का विरोधी वातावरण बालकों के सुधार में बहुत बाधक है।

अतएव आज घर में और पाठशाला में जो महान् अन्तर है उसे मिटाना पड़ेगा। प्रत्येक घर पाठशाला का पूरक हो और पाठशाला घर की पूर्ति करे, तभी दोनों मिलकर बालकों के सुधार का महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकेंगे।

माता-पिता सन्तान उत्पन्न करके छुटकारा नहीं पा सकते, किन्तु सन्तान उत्पन्न होने के साथ ही मानो उनका उत्तरदायित्व प्रारम्भ होता है। शिक्षक को सुपुर्द करने से उनका काम पूरा नहीं होता। उन्हें बालक के जीवन-निर्माण के लिये स्वयं अपने जीवन को आदर्शमय बनाना चाहिये, क्योंकि सन्तान-सुधार की प्रमुख बड़ी जिम्मेदारी उन्हीं पर है। बच्चे को सदाचारी बनाने के ही ना

का असली मातृत्व है ।

प्राचीनकाल के माता-पिता बीस-बीस वर्ष तक ब्रह्मचारी रहकर सन्तान उत्पन्न करते थे । इस प्रकार सयमपूर्वक रह कर उत्पन्न की हुई सन्तान ही महापुरुष बन सकती है । आजकल के लोग समझते हैं, हनुमान का नाम जप लेने से ही शारीरिक शक्ति बढ़ जाती है । उन्हे यह नही मालूम कि हनुमान के समान वीर-पुत्र किस प्रकार उत्पन्न हुआ था ? मनमुटाव हो जाने के कारण अजना और पवनकुमार दोनो बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करते रहे थे । तभी ऐसी वीर सन्तति उत्पन्न हुई थी । अच्छी और सदाचारी सन्तान उत्पन्न करने के लिये पहले माता-पिता को अच्छा और सदाचारी बनना चाहिये । बबूल के पेड़ मे आम नहीं लगता ।

माता अपने बालक को जैसा चाहे बना सकती है । माता चाहे तो अपने पुत्र को वीर भी बना सकती है और चाहे तो कायर भी बना सकती है । साधारणतया सिंह का बालक सिंह ही बन सकता है और सूअर का बालक सूअर ही बनता है । उनमे किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता परन्तु मनुष्य को इच्छानुसार वीर या कायर बनाया जा सकता है ।

एक बार एक क्षत्रिय ने दूसरे क्षत्रिय को जान से मार डाला । मृत क्षत्रिय की पत्नी उस समय गर्भवती थी । वह क्षत्रिय-पत्नी विचार करने लगी—मेरे पति मे थोडी-बहुत कायरता थी, तभी तो उनकी अकाल-मृत्यु हुई ! वे वीर होते तो अकाल मे मृत्यु न होती । क्षत्रिय-पत्नी की इस वीर भावना का उसके गर्भस्थ शिशु पर प्रभाव पडा और आगे जाकर वह पुत्र वीर क्षत्रिय बना ।

क्षत्रिय-पत्नी ने अपने बालक को वीरोचित शिक्षा देकर वीर

क्षत्रिय बनाया। क्षत्रिय-पुत्र वीर होने के कारण राजा का कृपा-पात्र बन गया।

एक दिन राजा ने क्षत्रिय-पुत्र की वीरता की परीक्षा लेने का विचार किया। राजा ने सोचा—शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिये क्षत्रिय-पुत्र को भेजने से एक पथ दो काज होंगे। एक तो शत्रु वश मे आ जायगा, दूसरे क्षत्रिय-पुत्र की परीक्षा भी हो जाएगी।

इस प्रकार विचार कर राजा ने क्षत्रिय-पुत्र को शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिये सेना के साथ भेज दिया। क्षत्रिय-पुत्र वीर था। वह तैयार होकर शत्रु को जीतने के लिये चल दिया। उसने शत्रु की सेना को अपनी वीरता का परिचय दिया, परास्त किया और शत्रु राजा को जीवित कैद करके राजा के सामने उपस्थित किया। राजा क्षत्रिय-पुत्र का पराक्रम देखकर बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने उचित पुरस्कार देकर उसका सत्कार किया। सारे गांव मे क्षत्रिय-पुत्र की वीरता की प्रशंसा होने लगी। जनता ने भी उसका सम्मान किया। क्षत्रिय-पुत्र प्रसन्न होता हुआ अपने घर जाने के लिये निकला। रास्ते मे वह विचार करने लगा—आज मेरी मां मेरी पराक्रम-गाथा सुनकर बहुत प्रसन्न होगी। घर पहुंच कर वह सीधा माता को प्रणाम करने व आशीर्वाद लेने गया। पर जब वह माता के पास पहुंचा तो उसने देखा—माता रुष्ट है और पीठ देकर बैठी है। माता को रुष्ट व क्रुद्ध देखकर वह विचार करने लगा—मुझसे ऐसा कौनसा अपराध बन गया है कि माता क्रुद्ध और रुष्ट हुई है।

आजकल का पुत्र होता तो मनचाही सुना देता, परन्तु इस क्षत्रिय-पुत्र को तो पहले से ही वीरोचित शिक्षा दी गई थी —

**मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव।**

अर्थात्—माता देव तुल्य है, पिता देव तुल्य है और आचार्य देव तुल्य है। अतएव माता-पिता और आचार्य की आज्ञा की अवज्ञा नही करनी चाहिये।

यह सुशिक्षा मिलने के कारण क्षत्रिय-पुत्र ने नम्रतापूर्वक माता से कहा—मा, मुझसे ऐसा क्या अपराध बन गया है कि आप मुझ पर इतनी क्रुद्ध हैं? मेरा अपराध मुझे बताइये, जिससे मैं उसके लिये क्षमायाचना कर सकू?

माता बोली—जिसका पितृहन्ता मौजूद है, उसने दूसरे शत्रु को जीता भी तो क्या?

क्षत्रिय-पुत्र ने चकित होकर कहा—क्या मेरे पिता का घात करने वाला मौजूद है?

माता—हा, वह अभी जीवित है।

क्षत्रिय-पुत्र—ऐसा है तो अभी तक मुझे बताया क्यो नही, मा?

माता—मैं तेरे पराक्रम की जाच कर रही थी। अब मुझे विश्वास हो गया कि तू वीर-पुत्र है। जब तू दूसरे शत्रु को परास्त कर चुका है तो अब अपने पिता का घात करने वाले शत्रु को भी अवश्य पराजित कर सकेगा। तेरा सामर्थ्य देखे बिना शत्रु के साथ भिड जाने को कैसे कहती?

क्षत्रिय-पुत्र माता का कथन सुनकर उत्तेजित होकर कहने लगा—मैं अभी शत्रु को पराजित करने जाता हू। अपने पिता के

वैर का बदला लिये विना हर्गिज नहीं लौटूंगा । इतना कहकर वह उसी समय चल दिया ।

दूसरी ओर क्षत्रिय-पुत्र के पिता की हत्या करने वाले क्षत्रिय ने सुना कि जिसे मैंने मार डाला, उसका पुत्र क्रुद्ध होकर अपने पिता का वैर भजाने के लिये मेरे साथ लडाई करने आ रहा है तो यह सुनकर उस क्षत्रिय ने विचार किया—वह बडा वीर है और उसकी शरण मे जाना ही हितकर है । इसी मे मेरा कल्याण है । इस तरह विचार करके वह स्वय जाकर क्षत्रिय-पुत्र के अधीन हो गया । क्षत्रिय-पुत्र उस पितृघातक शत्रु को लेकर माता के पास आया । उसने माता से कहा—इसी क्षत्रिय ने मेरे पिता की हत्या की है । इसे पकड कर तुम्हारे पास ले आया हू । अब तुम जो कहो, वही दण्ड इसे दिया जाय ।

माता ने अपने पुत्र से कहा—इसी से पूछ देख कि इसके अपराध का इसे क्या दण्ड मिलना चाहिये ?

पुत्र ने शत्रु से पूछा—बोलो, अपने पिता का बदला तुमसे किस प्रकार लू ?

शत्रु ने उत्तर दिया—तुम अपने पिता के वैर का बदला उसी प्रकार लो, जिस प्रकार शरण में आए हुए मनुष्य से लिया जाता है ।

क्षत्रिय पुत्र की माता सच्ची मा और क्षत्रियाणी थी । उसका हृदय क्षुद्र नही, विशाल था । माता ने पुत्र से कहा - बेटा! अब इसे शत्रु नहीं, भाई समझ । जब यह शरण मे आ गया है तो शरणागत से बदला लेना सर्वथा अनुचित है । शत्रु ने कहा

हुआ कितना ही बड़ा अपराधी क्यों न हो, फिर भी भाई के समान है। अतएव यह तेरा शत्रु नहीं, भाई है। मैं अभी भोजन बनाती हूं। तुम दोनों साथ-साथ बैठकर आनन्द से जीमो और प्रेमपूर्वक रहो। मैं यही देखना चाहती हूं।

माता का कथन सुन कर पुत्र ने कहा—माताजी ! तुम पितृघातक शत्रु को भी भाई बनाने को कहती हो, पर मेरे हृदय में जो क्रोधाग्नि जल रही है, उसे किस प्रकार शांत करूं ?

माता ने कहा—पुत्र, किसी मनुष्य पर क्रोध उतार कर क्रोध शांत करना कोई वीरता नहीं है। क्रोध पर ही क्रोध उतार कर शांत करना अथवा क्रोध पर विजय प्राप्त करना ही सच्ची वीरता है।

माता का आदेश पाकर पुत्र ने प्रसन्नतापूर्वक अपने पितृहन्ता शत्रु को गले लगाया। दोनों ने सगे भाइयों की तरह साथ-साथ भोजन किया।

इसे कहते हैं, चतुर माता की सच्ची सीख ! पुत्र को सन्मार्ग पर चलाना ही तो सच्चा मातृत्व है।

आजकल पुत्र को जन्म देने की लालसा का तो पार ही नहीं है, पर उसमें उत्तम संस्कार डालने की ओर शायद ही किसी का ध्यान जाता है। माताएं पुत्र को पाकर ही अपने को धन्य मान बैठती हैं। पर पुत्र को जन्म देते ही कितना महत्त्वपूर्ण उत्तर-दायित्व सिर पर आ जाता है, यह कल्पना बहुत माताओं को नहीं है। पुत्र को जन्म देकर उसे सुसंस्कृत न बनाना घोर नैतिक अप-राध है। अगर कोई मां-बाप अपने बालक की आंखों पर पट्टी बांध दें तो आप उन्हें क्या कहेंगे ?

निर्दयी !

बालक मे देखने की जो शक्ति है, उसे रोक देना माता-पिता का धर्म नहीं है। इसके विपरीत उसके नेत्र मे अगर कोई रोग है, विकार है, तो उसे दूर करना उनका कर्त्तव्य है।

यह बाह्य चर्म-चक्षु की बात है, चर्म-चक्षु तो बालक के उत्पन्न होने के पश्चात् कुछ समय मे अपने आप ही खुल जाते हैं, पर हृदय के चक्षु इस तरह नहीं खुलते। हृदय के चक्षु खोलने के लिये सत्संस्कारों की आवश्यकता पड़ती है। बालकों को अच्छी शिक्षा देने से उनके जीवन का निर्माण होता है।

७

# सन्तति-नियमन

इस जमाने मे जननेन्द्रिय की लोलुपता ने प्रचण्ड रूप धारण किया है और इसके फलस्वरूप सन्तानोत्पत्ति मे वृद्धि हो रही है। सन्तानो की इस बढती को देखकर कई लोग यह सोचने लगे हैं कि गरीब भारतवर्ष के लिए सन्तान-वृद्धि एक असह्य भार है। इस भार से भारत को बचाने के लिए उपाय ईजाद किया गया है कि सन्तान की उत्पत्ति के स्थान को ही नष्ट कर दिया जाय! न रहेगा बास, न बजेगी बासुरी।

यह उपाय सन्तति-नियमन या सन्तति-निरोध कहलाता है और इसी विषय पर मुझे अपने विचार प्रकट करने हैं। इस विषय का न तो मेरा अधिक अभ्यास है और न अध्ययन ही। पर समाचारपत्रो और कुछ पुस्तको को पढ कर मैं यह जान पाया हू कि कुछ लोग बडे जोरशोर से कहते हैं कि—"बढती जाती हुई सन्तान को अटकाने के लिए शस्त्र या औषध द्वारा स्त्रियो की जनन-शक्ति का नाश कर दिया जाय, उनके गर्भाशय का आपरेशन कर डाला जाय, या फिर उनके गर्भाशय को इतना निबल बना दिया

जाय कि सन्तान की पैदाइश हो ही न सके ।" इस उपाय द्वारा सन्तति-निरोध करने की आवश्यकता बतलाते हुए वे लोग कहते हैं—

समार आज बेकारी के बोझ मे दबा जा रहा है। भारत-वर्ष तो विशेष रूप से बेकारी की बीमारी का मारा कराह रहा है। ऐसी दुर्दशा मे खर्च मे वृद्धि करना उचित कैसे कहा जा सकता है? इधर सन्तान की वृद्धि के साथ अनिवार्य रूप से व्यय मे वृद्धि होती है। सन्तान जब उत्पन्न होती है, तब भी खच होता है, उसके पालन-पोषण मे खर्च होता है, उसकी शिक्षा-दीक्षा में भी खर्च उठाना पड़ता है। उस दशा मे जबकि अपना और अपनी पत्नी का पेट पालना भी दूभर हो पड़ा है, सन्तान उत्पन्न करके खर्च मे वृद्धि करना आर्थिक सकट को अपने हाथो आमन्त्रण देना है। आर्थिक सकट के साथ अन्य अनेक कष्ट बढ़ जाते हैं। अतएव स्त्रियो की जनन-शक्ति नष्ट करके यदि सन्तानोत्पत्ति से छुटकारा पा लिया जाय तो बहुत से कष्टो से बचा जा सकता है।

स्वातन्त्र्य का युग है। सबको अपने-अपने विचार प्रकट करने का अधिकार है। यदि यह सच है तो मुझे भी अपने विचार प्रकट करने का अधिकार है। अतएव इस सम्बन्ध मे जो बात मेरे मन मे आई है, वह प्रकट कर देना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हू।

कल्पना करो कि एक अत्यन्त सुन्दर बगीचा है। इस बगीचे मे भांति-भाति के वृक्ष हैं। इन वृक्षो मे एक बहुत ही सुन्दर वृक्ष है। भारतीयता की दृष्टि से इस सुन्दर वृक्ष को आम का पेड समझा जा सकता है क्योंकि आम भारतवर्ष का ही वृक्ष है, ऐसा सुना जाता है।

आम के वृक्ष मे यद्यपि फल बहुत लगते हैं किन्तु समय के परिवतन के कारण अथवा जमीन नीरस हो जाने के कारण जो फल पहले सुन्दर, स्वादिष्ट और लाभकारक होते थे, उनके बदले अब उसमे नीरस और हानिकारक फल आने लगे हैं। अब कुछ लोग, जो जन-समाज के हितैषी होने का दावा करते हैं, आपस मे मिल कर यह विचार करने लगे कि आम के फलों से जनता मे फैलने वाली बीमारी का निवारण किस प्रकार किया जाय ?

उनमें से एक ने कहा—इसमे आम के पेड का तो कोई अपराध नही है। पेड बेचारा क्या कर सकता है ? उसके फलो से जनता को हानि पहुच रही है और जनता को उस हानि से बचाने का भार बुद्धिमानो पर है, अतएव बुद्धिमानो को ऐसा कोई उपाय खोजना चाहिए, जिससे यह सुन्दर वृक्ष भी नष्ट न हो और उसके फलो से जनता को हानि भी न पहुचे।

दूसरे ने कहा—मैं ऐसी एक रासायनिक औषधि जानता हूं, जिसे इस वृक्ष की जड़ मे डाल देने से वृक्ष फल देना ही बन्द कर

देगा। ऐसा करने से सारा झंझट मिट जायगा। उस औषधि के प्रयोग से न तो वृक्ष मे फल लगेंगे, न लोग उसके फल खा-पाएगे। तब फलों द्वारा होने वाली हानि आप ही बन्द हो जायगी।

तीसरे ने कहा—वृक्ष मे फल ही न लगने देना उसकी स्वाभाविकता का विनाश करने के समान है। ऐसा किया जायगा तो आम वृक्ष का नाम-निशान तक शेष न बचेगा। इसलिए यह उपाय उचित नही प्रतीत होता।

चौथे ने कहा—मैं एक ऐसा उपाय बता सकता हू, जिससे वृक्ष मे अधिक फल नही आने पाएगे। जितने फलों की आवश्यकता होगी, उतने ही फल आएगे और शेष सारे नष्ट हो जाएगे।

पांचवां बोला—इससे लाभ ही क्या हुआ ? जितने भी फल नष्ट होने से बच रहेंगे, वे हानिकारक तो होगे ही, वे नीरस, निःसत्व और खराब भी होगे। तो फिर इस उपाय से दुनिया को क्या लाभ होगा ? मैं एक ऐसा उपाय जानता हू, जिससे वह वृक्ष भी सुन्दर और सुदृढ बनेगा और इसके फल भी स्वादिष्ट और स्वास्थ्यकारी होगे। साथ ही जितने फलो की आवश्यकता होगी, उतने ही फल उसमे लगेंगे, अधिक नही लगेगे। वे फल इतने मधुर और लाभप्रद होंगे कि उनसे किसी को हानि पहुंचने की सम्भावना तक न होगी, वरन् लाभ ही लाभ होगा।

चौथे सज्जन ने कहा—यह एकदम अनहोनी बात है। ऐसा कोई भी उपाय सफल नही हो सकता। इस उपाय से वृक्ष भी नही सुन्दर बनता और आवश्यकता के अनुसार परिमित फल भी नही आ सकते।

पांचवें ने उत्तर दिया—भाई, तुम्हारा उपाय कारगर हो

सकता है और मेरा उपाय नही, यह क्यो ? मेरी बात का समर्थन करने वाले अनेक प्रमाण मौजूद हैं। प्राचीनकालीन शास्त्र से भी मेरी बात पुष्ट होती है और वर्तमानकालीन व्यवहार से भी सिद्ध हो सकती है। ऐसी दशा मे प्रत्यक्ष-सिद्ध वस्तु को भी स्वीकार न करना और असम्भव कहकर टाल देना, कहा तक उचित है ?

इस पाचवें सज्जन ने अपने कथन के समर्थन मे ऐसे प्रमाण उपस्थित किये जिनसे प्रभावित होकर सबने एक स्वर से उसका कथन स्वीकार कर लिया और उसके द्वारा बताया हुआ उपाय सबने पसन्द किया

यह एक दृष्टात है और सन्तति-नियमन के सम्बन्ध मे इसे इस प्रकार घटित किया जा सकता है :-

यह ससार एक बगीचे के समान है। ससारी जीव इसी बगीचे के वृक्ष हैं। जीव-रूपी इन वृक्षो मे मानव वृक्ष सबसे श्रेष्ठ है। इस मानव-रूपी वृक्ष मे किसी कारण से अति सन्तान-रूप फल बहुत लगते हैं और ये फल नि सत्व और हानिकारक होने से भार-रूप प्रतीत होते हैं। अति-सतति की बदौलत मनुष्य के बल-वीर्य का ह्रास हो रहा है, खर्च का भार बढ़ गया है, बेकारी बढ गई है अतएव सन्तान भी दुखी हो रही है।

आज के सुधारक—जो अपने को ससार के और विशेषतः मानव-समाज के हितैषी मानते हैं—इस दुरावस्था को समझे और उसे दूर करने के लिए उपायो पर विचार करने लगे।

इन सुधारको में से एक कहता है—विज्ञान की बदौलत मैंने एक उपाय ऐसा खोज निकाला है, जिससे मनुष्य रूपी वृक्ष

कायम रहेगा, उसके सुख-सौंदर्य को किसी प्रकार की क्षति न पहुँचेगी और साथ ही उस पर अति संतति-रूप भार भी न पड़ेगा। और वह उपाय यह है कि शस्त्र या औषध के प्रयोग से गर्भाशय का सफाया कर दिया जाय।

इस प्रकार संतति-नियमन के लिये एक व्यक्ति गर्भाशय का नाश करने की सम्मति देता है। दूसरा कहता है कि ऐसा करने से तो मनुष्य-समाज ही समूल नष्ट हो जायगा, अतएव यह उपाय प्रयोजनीय नहीं है।

आजकल के सुधारक बढ़ती हुई संतति का निरोध करने के लिये इसी को अन्तिम उपाय मानते हैं। बहुत से लोगों को यह उपाय पसन्द भी आ गया है और वे इसका प्रचार भी करते हैं। सुना तो यहाँ तक जाता है कि इस उपाय का प्रचार करने के लिए सरकार भी सहायता दे रही है।

को विषय-भोग मे बाधक माना जा रहा है। इस विघ्न-बाधा को हटाकर, अपनी काम-लिप्सा को निरकुश और निर्विघ्न बनाने के जघन्य उद्देश्य से प्रेरित होकर ही लोग उपर्युक्त उपाय काम मे लाना पसन्द करते हैं। जहा विषय-भोग की वासना मे वृद्धि होती है, वहां इस प्रकार की कुत्सित मनोवृत्ति होना स्वाभाविक है। गीता मे कहा है—

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते,
संगात्सञ्जायते काम कामात् क्रोधोऽभिजायते।
क्रोधाद् भवति सम्मोह सम्मोहात्स्मृतिविभ्रम,
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो, बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥

इन्द्रिय-लोलुपता किस प्रकार विनाश को जन्म देती है, इसका स्वाभाविक क्रम गीता मे इस प्रकार बताया गया है.—

विषयो का विचार करने से संग-उत्पन्न होता है, संग से काम की उत्पत्ति होती है। काम से क्रोध, कोध से सम्मोह अर्थात् अज्ञान का जन्म होता है, अज्ञान से स्मृति का नाश होता है, स्मृति के नाश के बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और बुद्धि-भ्रष्ट हो जाने के फल-स्वरूप सर्वनाश हो जाता है।

आज सतति-नियमन के लिए जिस दृष्टि को सम्मुख रखकर उपायो की आयोजना की जा रही है और जिन उपायों को कल्याणकारी समझा जा रहा है, उनका भावी परिणाम देखते हुए यही कहा जा सकता है कि यह सब विनाश का पथ है।

जन-साधारण के विचार के अनुसार विषय-भोगों का त्याग

नहीं किया जा सकता । इसी भ्रांत विचार के कारण विषय लालसा जागृत होकर विषय-भोग का सेवन किया जाता है । अधिक से अधिक स्त्री-संग करके विषयों का सेवन किया जाय, ऐसी इच्छा की जाती है । इस इच्छा की पूर्ति के लिए कामोत्तेजक गोलियां, माजूनी गोलियां आदि जीवन को बर्बाद करने वाली चीजों का उपयोग किया जाता है । आजकल विषय-भोग की लालसा इस सीमा तक बढ़ गई है कि जीवन को मटियामेट करने वाली, कामवर्धक चीजों के विज्ञापनों को रोकने की ओर तो तनिक भी ध्यान नहीं दिया जाता, उलटे संतति रोकने के लिए कृत्रिम उपायों का आश्रय लिया जा रहा है ।

प्रकार वृद्धों के प्रति भी निर्दयतापूर्ण व्यवहार करने की भावना उत्पन्न होगी। फिर स्त्रियां भी यह सोचने लगेंगी कि मेरा पति अब अशक्त और अयोग्य हो गया है, यह मेरे लिये अब भार-स्वरूप है और मेरी स्वतन्त्रता में बाधक है। ऐसी दशा में क्यों न उसका विनाश कर डाला जाय? पुरुष भी इसी प्रकार स्त्रियों को अयोग्य एवं असमर्थ समझ कर उनके विनाश का विचार करेंगे। इस प्रकार शस्त्र या औषध का जो कृत्रिम उपाय, गर्भ से बचने और संतति-नियमन के काम में लाया जाता है, वही उपाय स्त्री और पुरुष के प्राणों का संहार करने के काम में लाया जाने लगेगा। परिणाम यह होगा कि मानवीय सद्गुणों का नाश हो जायगा, समाज की शृंखला भग्न हो जायगी, हिंसा-राक्षसी की चंडाल-चौकड़ी मच जायगी और जो भयंकर काल अभी दूर है, वह एकदम नजदीक आ जायगा।

सन्तति-नियमन के भयंकर और प्रलयंकर उपाय से और भी अनेक अनर्थ उत्पन्न हो सकते हैं। इस उपाय के विषय में स्त्रियां यह सोच सकती हैं कि सन्तान की बदौलत ही मेरे गर्भाशय का आपरेशन किया जाता है, अतएव आपरेशन की झंझट से बचने के लिए सन्तान उत्पन्न होते ही क्यों न उसका गला घोट दूं?

शस्त्र-प्रयोग से जब सन्तति की उत्पत्ति रोकी जा सकती है और इस प्रकार संतति के प्रति अन्तःकरण में बसने वाली स्वाभाविक ममता और दया को तिलांजलि दी जा सकती है, तो यह क्या असम्भव है कि एक दिन ऐसा आ जाय जब लोग अपनी लूली-लंगडी या अविनीत संतान का भी वध करने पर उतारू हो जाए?

इस प्रकार संतति-नियमन के लिए किये जाने वाले कृत्रिम

उपायो के कारण घोर अनर्थ फैल जाएगे और मानवीय अन्तःकरण मे विद्यमान नैसर्गिक दया आदि सद्भावनाए समूल नष्ट हो जायेंगी ।

यहां एक आशंका की जा सकती है । वह यह कि जो सन्तान उत्पन्न हो चुकी हो, उसे नष्ट करना तो पाप है, मगर सतान को उत्पन्न होने देने के लिए गर्भाशय का आपरेशन कराना पाप कैसे कहा जा सकता है ?

इस आशंका का समाधान यह है । मान लीजिये एक मनुष्य किसी नौका मे छेद कर रहा है और उस पर बहुत से मनुष्य सवार है । वह मनुष्य नौका पर सवार मनुष्यो को तो मार नही रहा है, सिर्फ नौका मे छेद कर रहा है । तो क्या यह कहा जा सकता है कि वह सचमुच उन आदमियो के प्राण नहीं ले रहा है? यदि यह नही कहा जा सकता तो यह कैसे कहा जा सकता है कि उत्पत्तिस्थान को नष्ट करके अपने विषय-भोग चालू रखने के लिए हिंसा नही की जा रही है ? इसके अतिरिक्त जब मनुष्य की परोक्ष हिंसा से घृणा नही होगी, वरन् जान बूझकर परोक्ष हिंसा की जायगी, तो प्रत्यक्ष हिंसा करने मे घृणा उठ जायगी ।

का पालन यदि पूर्ण रूप से किया जाय तो सतति-नियमन की आव-श्यकता ही प्रतीत नही होगी।

इस प्रकार ब्रह्मचर्य का आश्रय लेने से सतति-नियमन की समस्या सहज ही सुलझ जाती है। फिर उसके लिए हानिकारक उपायो का अवलम्बन करने की आवश्यकता नही रह जाती। सतति-नियमन के लिये ब्रह्मचर्य अमोघ उपाय है पर विलासी लोग उसका उपयोग न करते हुए चाहते है कि न तो विषय-भोग का परित्याग करना पडे और न सतान ही उत्पन्न होने पावे और इस दुरभिसन्धि की पूर्ति के लिए शस्त्र-प्रयोग आदि उपायो से जन-शक्ति का ही नाश करने की तरकीबें खोजते हैं पर स्मरण रखना, यदि ब्रह्मचर्य का पालन न करके कृत्रिम उपायो द्वारा सन्तति नियमन किया जायगा तो इससे भविष्य मे अपार और असीम हानिया होगी। ब्रह्मचर्य का पालन न करते हुए सतान को कृत्रिम साधनो द्वारा रोका जायगा और पानी की भाति वीर्य का दुरुपयोग किया जायगा तो निर्बलता मानव समाज को ग्रस लेगी और तब सन्तान की अपेक्षा मनुष्य स्वय अपने लिए भार-रूप बन जायगा, ऐसा भार जिसे सम्भालना कठिन हो जायगा।

सन्तति-नियमन के लिए ब्रह्मचर्य हो अमोघ उपाय है—यही प्रशस्त साधन है। इस अमोघ उपाय की उपेक्षा करके—इसका तिरस्कार करके कृत्रिम साधनो से सतति-नियमन करना और विषय-भोग का व्यापार चालू रखना निसर्ग के नियमो का अति-क्रमण करना है और नैसर्गिक नियमो का अतिक्रमण करके कोई भी व्यक्ति और कोई भी समाज सुखी नही हो सकता। यदि सतति-नियमन का उद्देश्य विषय भोग का सेवन नही है, किन्तु आर्थिक और शारीरिक निर्बलता के कारण ही सन्तति-नियमन की

आवश्यकता का प्रतिपादन किया जाता है,तो भी ब्रह्मचर्य ही एक-मात्र अमोघ उपाय है ।

कोई यह कह सकता है कि सन्तति नियमन के लिए ब्रह्मचर्य उत्तम उपाय तो है, पर विषय-भोग की इच्छा को रोक सकना संभव नहीं है । ऐसी लाचारी की हालत में ब्रह्मचर्य का उपाय किस प्रकार काम में लाया जाय ?

किसी उपवास चिकित्सक के पास कोई रोगी जाय और चिकित्सक से कहे कि अपने रोग का निवारण करना चाहता हूं और उपवास-चिकित्सा-पद्धति को अच्छा भी मानता हूं, पर उपवास करने में असमर्थ हूं। तो चिकित्सक उस रोगी को क्या उत्तर देगा ? निस्सदेह वह यही कह सकता है कि अगर उपवास नहीं कर सकते तो आपके रोग की औषधि इस चिकित्सालय में नहीं है। इसी प्रकार जब तुम विषय-भोग की इच्छा को जीत नहीं सकते, तो ब्रह्मचर्य के सिवाय और क्या इलाज है ? तुम ब्रह्मचर्य पालन नहीं करना चाहते और विषय भोग की प्रवृत्ति चालू रखकर सन्तति का नियमन करना चाहते हो तो इसका अर्थ यही है कि तुम सन्तति-नियमन के सच्चे उपाय को काम में नहीं लाना चाहते, बल्कि विषय-इच्छा की पूर्ति में तुम्हें सन्तान बाधक जान पड़ती है, इसलिए उसका निरोध करना चाहते हो ।

कामना पर विजय प्राप्त करना तनिक भी कठिन न होगा ।

मर्यादित ब्रह्मचर्य का पालन करके उत्पन्न की हुई सन्तान कितनी बलिष्ठ होती है, इस बात को समझने के लिए हनुमान की कथा पर विचार करो। हनुमान हमे बल देंगे इस भावना से लोग उसकी पूजा करते हैं, पर हनुमान की मूर्ति पर तेल या सिंदूर पोत देने से ही क्या बल की प्राप्ति हो सकती है ? हनुमान को जिस बल की प्राप्ति हुई थी, वह ब्रह्मचर्य के प्रताप से हुई थी। वे शील के ही पुत्र थे। पवन, महासुन्दरी अन्जना का पाणिग्रहण करके उन्हें अपने घर लाये । फिर अन्जना के प्रति उनके हृदय मे किंचित् सन्देह उत्पन्न हो गया और इस कारण उन्होंने अजना का परित्याग कर दिया । उन्होने इस अवस्था मे अपने पर पूर्ण नियन्त्रण रखा । अंजना ने यह समझ लिया था कि पतिदेव को मेरे विषय मे शका उत्पन्न हो गई है और इसी कारण वे अपने ऊपर पूर्ण अकुश रखते हुए मुझसे अलग-अलग रहते हैं। यह समझ कर अजना ने भी अपने मन को वशीभूत करने का निश्चय कर लिया ।

अंजना की दासी ने एक बार अंजना से कहा—पवन जी तुम्हारे लिए पति नही, प्रत्युत पापी हैं । वह जो पति होते तो क्या इस तरह अपनी पत्नी का परित्याग कर देते ?

अंजना ने उत्तर दिया—दासी ! जीभ सम्भाल कर बोल। मेरे पति की निन्दा मत कर । वे सच्चे धर्मात्मा हैं । वे राजपुत्र हैं—चाहे तो अनेक कन्याओं का पाणिग्रहण कर सकते हैं। पर नहीं, मेरी खातिर वे अपने मन पर सयम रख रहे हैं । मेरे किसी पूर्व-कृत पाप के कारण उन्हें मेरे विषय मे सन्देह उत्पन्न हो गया है । जब मेरा पाप दूर हो जायगा तो मेरे पति का सन्देह दूर हो जायगा और तब वे फिर मुझे पहले की तरह चाहने लगेंगे ।

एक दिन वह था जब स्त्रियाँ अपने पति का प्रेम सम्पादन करने के लिए आत्म-समर्पण करती थीं और आज यह दिन है कि पुनर्विवाह करने के लिए स्त्रियों को भरसक उत्तेजित किया जाता है। उनके हृदय में काम-वासना की आग भडकाई जाती है। पुरुष स्वयं काम-वासना के गुलाम बन रहे हैं और इसी कारण आज विधवा-विवाह या पुनर्विवाह का प्रश्न खडा हो गया है। अगर विधवाओं की भांति पुरुष भी पत्नी की मृत्यु के पश्चात् ब्रह्मचर्य का पालन करें और त्यागमय जीवन व्यतीत करें तो सहज ही यह प्रश्न हल हो सकता है। किन्तु स्त्री की मृत्यु के बाद पुरुष ऊपर से शोक का ढोंग भले ही करते हों पर नई स्त्री के आने के विचार से हृदय में प्रसन्न होते हैं।

जैसे स्त्रियों के लिए अंजना का आदर्श है, इसी प्रकार पुरुषों के लिए पवनकुमार का आदर्श है। पवनकुमार और अंजना—दोनों ने बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन किया था। जैसे अंजना बारह वर्ष तक ब्रह्मचारिणी रही, उसी प्रकार पवनकुमार बारह वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचारी रहे। वह राजकुमार थे। चाहते तो एक छोड़ दस विवाह कर लेते अथवा आजकल की तरह दुर्व्यवहार भी कर सकते थे, पर उन्होंने यह नहीं किया। उन्होंने सोचा, जब मैं अपनी पत्नी को पतिव्रता देखना चाहता हूँ तो मैं स्वयं दुराचार करके पथभ्रष्ट होऊँ—मैं भी क्यों न पत्नीव्रती बनूँ? मैं यह पाप कैसे कर सकता हूँ?

अतएव मैं यह कहता हूं कि स्त्री और पुरुष दोनो को ही शील का पालन करना चाहिए। शास्त्र मे पुरुष के लिए स्वदार-सतोष और स्त्री के लिए स्वपति-सतोप का विधान है। पुरुष यदि स्वदार-सतोप व्रत का पालन करें तो स्त्रियां स्वपति-सतोष व्रत का पालन क्यो न करेंगी ? पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन न हो सके तो भी यदि इस आंशिक व्रत का पालन किया जाय और स्त्री-पुरुष सन्तोपपूर्वक मर्यादित जीवन व्यतीत करें तो सन्तति- नियमन का प्रश्न सहज ही हल हो सकता है।

बारह वर्ष बाद युद्ध मे जाते हुए पवनकुमार ने जगल मे पडाव डाला। वही पास मे किसी पेड के नीचे एक चकवी रो रही थी। पवनकुमार ने अपने मित्र प्रहस्त से उस चकवी के रोने का कारण पूछा। प्रहस्त ने कहा—रात मे चकवा-चकवी का वियोग हो जाता है और इसी वियोग की वेदना से व्याकुल होकर यह चकवी रो रही है।

पवनकुमार ने प्रहस्त से कहा—जब यह चकवी केवल एक रात के वियोग से कल्पांत मचा रही है, तो मेरी पत्नी के दुख का क्या ठिकाना होगा जिसे मैंने बारह वर्ष से त्याग रखा है। मुझे उसके विषय मे सन्देह उत्पन्न हो गया था और इसी कारण मैंने उसका त्याग कर दिया है।

प्रहस्त ने पवन से पूछा—अपनी पत्नी के प्रति आपको क्या सन्देह हो गया था ? इस विषय मे आपने आज तक मुझसे कुछ भी जिक्र नही किया। जिक्र किया होता तो मैं आपके सन्देह का निवारण कर देता।

पवनकुमार ने अपना सन्देह प्रहस्त को बता दिया। प्रहस्त ने कहा—वह सती है। उस पर आपका यह सन्देह अनुचित है।

आपका सन्देह सच्चा होता तो वह इतने दिनों तक घर में न बैठी रहती, वह कभी की मायके चली गई होती। आपने जिसे दूषण समझा और जिसके कारण आपको सन्देह हो गया है, वह दूषण नहीं, भूषण है—गुण है।

पवनकुमार सारी बात समझ गये। उनका सन्देह काफूर हो गया। उन्होंने प्रहस्त से कहा—मैंने एक सती-साध्वी स्त्री को बहुत कष्ट पहुंचाया है। इस समय मैं समरांगण में जा रहा हूँ और कदाचित् मैं युद्ध में मारा गया तो यह दुःख कांटे की तरह मुझे सदा ही सताता रहेगा। क्या ऐसा कोई उपाय नहीं है कि मैं रात भर उसके पास रहकर वापिस लौट सकूं? प्रहस्त ने कहा—है क्यों नहीं, मैं ऐसी विद्या जानता हूं।

दासी—जिसने तुम्हारा घोर अपमान किया है, उसी की तुम विजय चाहती हो ! कैसी भोली हो मालकिन !

अंजना—मेरे पति के हृदय मे मेरे विषय मे सन्देह उत्पन्न हुआ है । वे मुझे दुराचारिणी समझते हैं और इसी कारण युद्ध के लिए जाते समय उन्होने मेरा शकुन नही लिया है । मेरे पति महा-पुरुष और वीर है । उन्होने अपने पिताजी को युद्ध मे नही जाने दिया और आप स्वय युद्ध मे सम्मिलित होने गये है । वे ऐसे शूर-वीर हैं और बारह वर्ष से ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे हैं । ऐसे सच्चरित्र और वीर-पुरुष की जीत नही होगी, तो किसकी होगी ?

इस प्रकार अंजना और उसकी दासी मे चल रही बातचीत पवनकुमार ने शात चित्त से सुनी । पवनकुमार अंजना की अपने प्रति अगाध निष्ठा देख कर गद्‌गद् हो गये । प्रहस्त से उन्होने कहा—मित्र ! मैंने इस सती के प्रति अक्षम्य अपराध किया है । अब किस प्रकार इसे अपना मुह दिखाऊ ?

प्रहस्त ने कहा—थोडी देर और धैर्य धारण कीजिए । इतना कहकर प्रहस्त ने अंजना के मकान की खिडकी खडखडाई । खिडकी की खडखडाहट सुनकर अंजना गरज उठी—कौन दुष्ट है, जो कुमार को बाहर गया देखकर इस समय आया है ? जो भी कोई हो, फौरन यहा से भाग जाय, अन्यथा उसे प्राणो से हाथ धोना पडेगा ।

प्रहस्त ने उत्तर दिया—और कोई नही है । दूसरे किसकी हिम्मत है, जो यहा आने का विचार भी कर सके । यह पवनकुमार जी हैं और इनके साथ मैं इनका मित्र प्रहस्त हू । ये शब्द सुनते ही अंजना के अंग-अंग मे मानो बिजली दौड गई । उसकी प्रसन्नता का पारावार न रहा । पर जब तक उसे खातिरी न हो गई, उसने

खान-पान और भोग-विलास मे ही अपने जीवन की इतिश्री समझते हैं, वे धर्म के पति-पत्नी नही, वरन् पाप के पति-पत्नी हैं ।

विवाह होने पर पति-पत्नी प्रेम-बन्धन में जुड जाते हैं । मगर उनके प्रेम मे भी भिन्नता देखी जाती है । किसी-किसी मे विवाह करने पर भी स्वार्थपूर्ण प्रेम होता है और किसी-किसी में निःस्वार्थ प्रेम भी रहता है । जिस दम्पती मे स्वार्थपूर्ण प्रेम होगा उसकी दृष्टि एक-दूसरे की सुन्दरता पर रहेगी और किसी कारण सुन्दरता मे कमी होने पर वह प्रेम दूर हो जायगा । परन्तु जिनमे निःस्वार्थ प्रेम है, उनमे अगर पति रोगी या कुरूप अथवा कोढ़ी होगा तो भी पत्नी का प्रेम कम नही होगा । श्रीपाल को कोढ हो गया था । फिर भी उसकी पत्नी ने पति-प्रेम मे किसी प्रकार की कमी नहीं की । तात्पर्य यह है कि जिस प्रेम मे किसी भी कारण से न्यूनता आ जाय, वह निःस्वार्थ प्रेम नही है, वह स्वार्थपूर्ण और दिखावटी प्रेम है ।

साथ ही ससार के सुखों के साधनों को जुटाना है, एकत्र रहकर ही सृष्टि करनी है, विकास करना है । दोनो के हृदयों मे अधिकार की हाय-हाय की अपेक्षा एक-दूसरे के प्रति आत्मसमर्पण की भावना हो । परस्पर प्रेम, सहानुभूति और कर्त्तव्य का भाव प्रधान हो । विश्व मे मानव की सृष्टि ही तो इसी आधार पर हुई है। इसमे बाधाए उपस्थित करने से हरेक घर मे अशाति पैदा हो जाती है । इसी प्रकार स्त्री का जीवन तभी सुखी और सन्तोषमय रह सकता है, जब कि वह आत्मसमर्पण मे ही जीवन के सुख को खोजे, उसी से पूर्ण आनन्द का अनुभव करे । पुरुष के लिए भी यही बात है। नारी का तो सारा जीवन ही त्यागमय है । समर्पण करने मे ही उसे सुख है। इसी मे तो उसके मातृत्व का, पुरुष की जननी होने का अधिकार, गौरव है। यहीं तो उसकी उन्नति की परम सीमा है। इसी जगह तो नारी वह है कि जिसकी बराबरी पुरुष भी नही कर सका और न कर सकेगा ।

इसीलिये आजकल जो प्रतिद्वन्द्विता एव मुकाबिले का भाव समाज मे स्त्री-पुरुषो के बीच चल रहा है, वह समाज को भारी हानि पहुचा रहा है और वह भी विशेषकर स्त्रियों को । वह यह कि कोई भी काम, चाहे वह अच्छा हो या बुरा, परन्तु पुरुष करता है तो स्त्रिया भी क्यो न करें ? नारियो के मन मे आजकल कुछ ऐसी भावना घर कर गई है कि पुरुष जाति स्वार्थमय हो गई है, हमारे साथ बेवफाई कर रही है । और हमने तो सदा त्याग किया है, ममतावश होकर सदा पुरुष की हम गुलामी करती रही हैं पर उसका पुरस्कार आज यह है कि हम दुतकारी जा रही हैं । अतः अब क्यो इनकी परवाह करें ? कब तक सेवा करती रहें ? और फिर किस लिए ? उस त्याग को छोडकर क्यो न उनकी ही कोटि मे आ जायें? उसी भावना का फल है कि आजकल की अधिकारप्रिय-स्त्रिया

अपने उस प्राचीन गौरव को आख उठाकर देखना भी पसन्द नही करती ।

आज उनकी आखें पूर्ण रूप से पुरुप जाति की ओर लगी हुई हैं कि वह कौनसा काम कब कर रही है कि हम भी वही करने लग जायें ! पुरुष की पूरी नकल करने मे ही वे अपने जीवन की सार्थकता समझने लगी हैं ।

उन्हें ऐसा विश्वास हो गया है कि उन्हे पति के प्रति प्रेम नही और इसलिये उनका मन असन्तुष्ट व अतृप्त है। फलस्वरूप ईर्ष्यावश वह पति की प्रत्येक गतिविधि पर दृष्टि रखने मे ही सारा समय वर्वाद करने लगी हैं। पुरुप ने उसका ध्यान पूरी तरह से अपनी ओर खीच लिया है। अत वह अपने व्यक्तित्व की ओर लक्ष्य नही रखती। निरन्तर पुरुप की प्रत्येक हलचल से उपेक्षा टपकती हुई-सी समझकर कुढती रहती है। सोचती रहती है कि वे तो आराम से निर्द्वन्द्व होकर भ्रमण करते रहते हैं, फिर भी मैं दासी वनी कव तक उनकी गुलामी किया करू ?

इसके विपरीत जो उच्च विचारो की स्त्रिया हैं, वे पति की अकर्मण्यता और पति के पतन से मार्गच्युत न होकर अपने कर्त्तव्य का ध्यान रखती हैं। वे अपने मन मे यह भावना वनाए रखने का प्रयत्न करती हैं कि हमारा धर्म तो सिर्फ अपनी पवित्रता को कायम रखने मे है और हमारा कार्य पति के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करना है। इससे नारी की आत्मा का विकास होता है और वह अपने जीवन को सुखी करने की चेष्टा मे सफल होती है। और वे इस त्याग, सेवा और कर्तव्य-पालन के द्वारा पतन की ओर अग्रसर होते हुए पति को भी कभी पश्चात्ताप करने को बाध्य कर देती हैं।

इस प्रकार अपनी वफादारी और कर्त्तव्यशीलता के द्वारा आनन्द-रहित गृह को भी आनन्द और उल्लास की तरगो मे प्रवाहित कर देती है। वे पति को और उसके साथ-साथ अपने को भी ऊंचा उठाती हैं। वे गृह-जीवन मे सुख व शाति बढ़ाती हुई पति-पत्नी के टूटते हुए सम्बन्ध को जोड लेती हैं।

दूसरी ओर समाज मे बढती हुई खीचातानी का शिकार होकर स्त्रिया अत्यन्त दुःखी और अतृप्त रहती हैं। उनका हृदय दुःख से भरा रहता है और आत्मा तडपती रहती है, क्योंकि आजकल स्त्रियो की माग एव उनके अधिकारो के नाम पर समाज मे जो जहर फैलाया जा रहा है, उसने पुरुष एव स्त्री के सम्बन्ध को मधुर एव दृढ बनाने की अपेक्षा और भी स्नेह-हीन, नीरस, और निकम्मा बना दिया है। एक-दूसरे के मतभेद को मिटाने की जगह आपस के मनोमालिन्य की खाई को और भी गहरा कर दिया है। नारियो की उठती हुई आत्मा को गिरा दिया है। उनका विकास रोक दिया है।

आजकल की सभ्यता हमे अधिकार प्राप्त करने का पाठ तो पढाती रहती हैं पर उस अधिकार के साथ जो महान् जिम्मेदारियो का बोझा बन्धा हुआ है, उसे सहन करने का सबक नही सिखाती। और जिस प्रकार आग और पानी का मेल नही हो सकता, उसी तरह स्त्रियो के अधिकार और शक्ति चाहने पर यह नहीं हो सकता कि उसके लिये होने वाली कठिनाइया न सहे और त्याग करने को तैयार न रहे। प्राचीन भारतीय नारियो को गृह मे जो अखण्ड अधिकार मिला था, वह कष्टसहन एव कठिनाइयो और बाधाओं के बीच मे भी सुख और शाति का अनुभव करते हुए पूर्ण सन्तुष्ट रहने पर ही मिला था।

# १–नारी का कार्य क्षेत्र

नारी का कार्यक्षेत्र गृह मे ही है। उनके गृह-जीवन मे ही ससार के महापुरुषो का जीवन छिपा हुआ है। गृहो मे प्राप्त होने वाली शिक्षा एव सस्कार ही महान् पुरुषो का जीवन निर्माण करते हैं, पर आज की इस घरेलू चख-चख ने गृह-जीवन की नीव को ही कमजोर बना दिया है। अतएव उसमे से जीवन प्राप्त करने वाला नवयुवक कमजोर, रूखे स्वभाववाला और कठिनाइयो मे शीघ्र ही निराश हो जाने वाला हो गया है। वह बातें अधिक करता है पर कार्य कम करता है। हर एक से लेने की इच्छा अधिक करता है पर देना किसी को भी नहीं चाहता। पर यह उसका दोष नही है। उसका दुर्भाग्य है कि जिस माता-पिता का दूध पीकर वह शक्ति प्राप्त करता था, जिस माता-पिता के आदर्श चरित्र का अवलोकन कर वह एक महापुरुष बनता था, आज उस माता का उस पर से हाथ हटता जा रहा है। वह उसी मा का ओज था। बल्कि आज भी भारतीय गृहो मे जो थोडा बहुत सौन्दर्य या सुघडता है वह उन बहनो-बेटियो व माताओ का प्रताप है कि जिनका चरित्र, जिनका सेवाभाव, सभाओ-सोसाइटियो मे नही जाहिर होता बल्कि सतति का जीवन बनकर सामने आता है।

नारियो का सच्चा स्थान गृह ही है। उन्हीं के प्रयत्न से टूटते हुए गृह व दाम्पत्य-जीवन का उद्धार सम्भव है। समाज के निर्माण मे उत्तम गृहो का होना मुख्य है।

# २–आदर्श–दम्पती

उच्च दाम्पत्य जीवन का बहुत श्रेष्ठ आदर्श प्राचीनकाल मे

राम और सीता ने उपस्थित किया था जो हिन्दू समाज के लिये सदैव अनुकरणीय रहा और है ।

सच्चा पति वही है, जो पत्नी को पवित्र बनाता है और सच्ची पत्नी वही है, जो पति को पवित्र बनाती है । सक्षेप मे जो अपने दाम्पत्य जीवन को पवित्र बनाते हैं, वही सच्चे पति–पत्नी हैं ।

जो पुरुष पर-धन और पर-स्त्री से सदैव बचता रहता है उसका कोई कुछ नहीं बिगाड सकता । स्त्रियो के लिये पति–व्रत धर्म है तो पुरुषो के लिये पत्नीव्रत धर्म है ।

जो पुरुष पत्नी को गुलाम बनाता है वह स्वय गुलाम बन जाता है और जो पुरुष पत्नी को देवी बनाता है, वह स्वय देव बन जाता है ।

पुरुष चाहते हैं कि स्त्रिया पतिव्रत धर्म का पालन करें परन्तु उन्हें क्या पत्नीव्रत धर्म का पालन नही करना चाहिए ? पतिव्रत पत्नी के लिये और पत्नीव्रत पति के लिये कल्याणकारी है । पतिव्रत का माहात्म्य कितना और कैसा है, यह बतलाने के लिये अनेक उदाहरण मौजूद हैं । पतिव्रत के प्रभाव से सीता के लिये अग्नि भी ठण्डी हो गई थी । सीता ने पतिव्रत धर्म का पालन करने के लिये कितने अधिक कष्ट सहन किये थे ? वह चाहती तो राम और कौशल्या का आग्रह मानकर घर मे आराम से बैठी रह सकती थी और कष्टो से बच सकती थी मगर पतिव्रत धर्म का पालन करने के लिये उसने कष्ट सहना ही स्वीकार किया ।

सीता के चरित्र को किस प्रकार देखना चाहिए, यह बात कवि ने बतलाई है । वह कहता है—'पति ही व्रत–नियम है' ऐसा

व्रत वही स्त्री लेती है, जिसके अन्तःकरण मे पति के प्रति पूर्ण प्रेम होता है । कोई भी काम तभी होता है जब उसके प्रति प्रेम हो। धर्म का आचरण भी प्रेम से किया जाता है । आपका प्रेम कच्चा है या सच्चा, यह परीक्षा करती हो तो पतिव्रता के प्रेम के साथ अपने प्रेम की तुलना करके देखो। भक्ति के विषय में पतिव्रता का उदाहरण भी दिया जाता है । पतिव्रताओ मे भी सीता सरीखी पतिव्रता दूसरी शायद ही हुई हो। सीता ने उच्च आचरण करके सतीशिरोमणि की पदवी पाई है । सीता सरीखी दो चार सतियां अगर ससार मे हो तो ससार का उद्धार हो जाय । कहावत है— 'एक सती और नगर सारा'। सुभद्रा अकेली थी पर उसने क्या कर दिखाया था ? उसने सारे नगर का दुःख दूर कर दिया था।

सब स्त्रियां सीता नही बन सकतीं । इससे कोई यह नतीजा न निकाले कि जब सीता सरीखी बनना कठिन है तो फिर उस ओर प्रयत्न ही क्यो किया जाय ? जहा पहुच ही नहीं सकते, वहां पहुचने का प्रयत्न क्यो किया जाय ? जहां पहुच ही नही सकते वहा पहुचने के लिए दो-चार कदम बढ़ाने की भी क्या आवश्यकता है ? ऐसा विचार करने से लाभ के बदले हानि ही होगी । आप खाते हैं, पीते हैं, पहनते हैं, ओढ़ते हैं । मगर आप से अच्छा खाने-पीने पहनने-ओढने वाले भी हैं या नही ? फिर आप क्या यह सब करना छोड देते हैं ? अक्षर मोती जैसे लिखने चाहिए, मगर वैसा न लिख सकने वाला क्या अक्षर लिखना छोड देता है ? इसी तरह सीता-सी सती बनना अगर कठिन है तो क्या सतीत्व ही छोड देना उचित है ? सीता की समता न करने पर भी सती बनने का उद्योग छोडना नहीं चाहिये । निरन्तर अभ्यास करने व सीता का आदर्श सामने रखने से कभी सीता के समान हो जाना सम्भव है ।

सती, तो स्त्रियों मे ऊंची होती ही है, लेकिन नीच स्त्री कैसी

होती है, यह भी कवि ने बताया है। कवि कहता है— खाने-पीने और पहनने-ओढने के समय 'प्राणनाथ' 'प्राणनाथ' करने वाली और समय पडने पर विपरीत आचरण करने वाली स्त्री नीच कहलाती है। ऊपर से पतिव्रता का दिखावा करना और भीतर कुछ और रखना नीचता है। इस प्रकार की नीचता का कभी न कभी भण्डाफोड हो ही जाता है। कदाचित् न भी हो तो उसे उसके कर्म अपना फल देने से कभी नही चूकते। नीच स्त्रिया भीतर-बाहर कितनी भिन्नता रखती हैं, यह बात एक कहानी द्वारा समझाई जाती है—

## ३—मायाविनी पत्नी

एक ठाकुर था। वह अपनी स्त्री की अपने मित्रो के सामने बहुत प्रशसा किया करता था। वह कहा करता था—ससार मे सती स्त्रिया तो और भी मिल सकती हैं पर मेरी स्त्री जैसी सती स्त्री दूसरी नही है? कभी-कभी वह सीता, अजना आदि से अपनी स्त्री की तुलना किया करता और उसे उनसे भी श्रेष्ठ बतलाता। उसके मित्रो मे कोई सच्चे समालोचक भी थे।

एक बार एक समालोचक ने कहा—ठाकुर साहब! आप भोले हैं और स्त्री के चरित्र को जानते नहीं हैं। इसी से ऐसा कहते हैं। त्रिया-चरित्र का समझ लेना साधारण बात नही है।

ठाकुर ने अपना भोलापन नहीं समझा। वह अपनी पत्नी का बखान करता ही रहा। तब उस समालोचक ने कहा—कभी आपने परीक्षा की है या नहीं?

ठाकुर-परीक्षा करने की आवश्यकता ही नहीं है। मेरी स्त्री

मुझसे इतना प्रेम करती है, जितना मछली पानी से प्रेम करती है। जैसे मछली पानी के बिना जीवित नही रह सकती, उसी प्रकार मेरी स्त्री मेरे बिना जीवित नही रह सकती।

समालोचक—आपकी बातो से जाहिर होता है कि आप बहुत भोले हैं। आप जब परीक्षा करके देखेंगे, तब सच्चाई मालूम होगी।

ठाकुर—अच्छी बात है, कहो किस तरह परीक्षा की जाय?

समालोचक—आप अपनी स्त्री से कहिये कि मुझे पाच-सात दिन के लिये राजकीय काम से बाहर जाना है। यह कह कर आप बाहर चले जाना और फिर छिप कर घर में बैठे रहना। उस समय मालूम होगा कि आपकी स्त्री का आप पर कैसा प्रेम है? आप अपने पीछे ही अपनी स्त्री की परीक्षा कर सकते हैं, मौजूदगी मे नही।

ठाकुर ने अपने मित्र की बात मान ली। वह अपनी स्त्री के पास गया। स्त्री से उसने कहा—तुम्हें छोडने को जी नही चाहता मगर लाचारी है। कुछ दिनो के लिए तुम्हें छोडकर बाहर जाना पडेगा। राजा का हुक्म माने बिना छुटकारा नही।

ठकुरानी ने बहुत चिन्ता और आश्चर्यपूर्वक कहा—क्या हुक्म हुआ है? कौनसा हुक्म मानना पडेगा?

ठाकुर—मुझे ५-७ दिनो के लिए बाहर जाना पडेगा?

ठकुरानी—पाच-सात दिन, बाप रे! इतने दिन तुम्हारे बिना कैसे निकलेंगे। मुझे तो भोजन भी नही रुचेगा।

ठाकुर—कुछ भी हो, जाना तो पड़ेगा ही।

ठकुरानी—इतने दिनो मे तो मैं छटपटा कर मर ही जाऊगी। आप राजा से कहकर किसी दूसरे को अपने बदले नहीं भेज सकते ?

ठाकुर—लेकिन ऐसा करना ठीक नही होगा। लोग कहेगे, स्त्री के कहने मे लगा है। मैं यह कहूगा कि मुझसे स्त्री का प्रेम नहीं छूटता ? ऐसा कहना तो बहुत बुरा होगा।

ठकुरानी—हां, ऐसा कहना तो ठीक नहीं होगा। खैर, जो कुछ होगा देखा जायगा।

इतना कहकर ठकुरानी आंसू बहाने लगी। उसने अपनी दासी से कहा—दासी जा। कुछ खाने-पीने को बनादे, जो साथ मे ले जाया जा सके।

ठकुरानी की मोह पैदा करने वाली बातें सुनकर ठाकुर सोचने लगा—मेरे ऊपर इसका कितना प्रेम है।

ठाकुर घोडी पर सवार होकर कोस दो कोस गया। घोडी ठिकाने बाधकर वह लौट आया और छिपकर घर मे बैठ गया।

दिन व्यतीत हो गया। रात हो गई। ठकुरानी ने दासी से कहा—ठाकुर तो गांव चला गया, अब मेरे को धान नही भाता है। अत तू जा पास के अपने खेत से दस-पाच साठे ले आ, जिससे रात व्यतीत हो। दासी ने सोचा ठीक है, मुझे भी हिस्सा मिलेगा। वह गई और गन्ने तोड लाई। ठकुरानी गन्ने चूसने लगी।

ठाकुर छिपा-छिपा देख रहा था। उसने सोचा—मेरे वियोग

के कारण इसे अन्न नहीं भाता । मुझ पर इसका कितना गाढ़ा प्रेम है ।

ठकुरानी पहर रात तक गन्ना चूसती रही । गन्ना समाप्त हो जाने पर वह दासी से बोली—अभी रात बहुत है । गन्ना चूसने से भूख लग आई है । थोड़े नरम-नरम बाफले तो बना डाल, देख जरा घी अच्छा लगाना हो ।

दासी ने सोचा—चलो ठीक है, मुझे भी मिलेंगे । दासी ने बाफले बनाए और खूब घी मिलाया ।

ठकुरानी ने खूब मजे से बाफले खाए । खाने के थोडी देर बाद वह कहने लगी—दासी, तूने बाफले बनाए तो ठीक, पर मुझे कुछ अच्छे नहीं लगे । यह खाना कुछ भारी भी है । थोडी नरम-नरम खिचडी बना डाल ।

दासी ने वही किया । खिचडी खाकर ठकुरानी बोली—तीन पहर रात तो बीत गई, अब एक पहर बाकी है । थोडी लाई ( धानी ) सेक ला । उसे चबाते-चबाते रात बिताए । दासी लाई भी सेक लाई । ठकुरानी खाने लगी ।

ठाकुर बैठा-बैठा सब देख सुन रहा था । वह सोचने लगा-पहली रात मे यह हाल है तो आगे क्या-क्या नहीं होगा । अब इससे आगे परीक्षा न करना ही अच्छा है । यह सोचकर वह घोड़े के पास लौट आया । घोडे पर सवार होकर वह घर जा पहुचा ।

दासी ने ठकुरानी को समाचार दिया—ठाकुर साहब आ गए हैं । ठकुरानी ने कहा—ठाकुर आ गए, अच्छा हुआ ।

वह ठाकुर से बोली—अच्छा हुआ, आप पधार गए। मेरी तकदीर अच्छी है। आखिर सच्चा प्रेम अपना प्रभाव दिखलाता ही है।

ठाकुर—तुम्हारी तकदीर अच्छी थी, इसी से मैं आज बच गया। बडे सकट मे पड गया था।

ठकुरानी—ऐ, क्या सकट आ पडा था ?

ठाकुर—घोडे के सामने एक भयङ्कर साप आ गया था। मैं आगे बढता तो साप मुझे काट खाता। मैं पीछे की ओर भाग गया। इसी से बच गया।

ठकुरानी—आह ! साप कितना बडा था ?

ठाकुर—अपने पास के खेत के गन्ने जितना बडा था और भयानक था।

ठकुरानी—वह फन तो नही फैलाता था ?

ठाकुर—फन का क्या पूछना है ! उसका फन तो बाफले जितना बडा था।

ठकुरानी—वह दौडता भी था ?

ठाकुर—हा, वह दौडता क्यों नही था, वह तो ऐसा दौडता था, जैसे खिचडी मे घी।

ठकुरानी—वह फुकार भी मारता होगा ?

ठाकुर—हा, ऐसे जोर से फुकार मारता था, जैसे कडेले मे पड़ी हुई पानी सेकने के समय फूटती है !

ठाकुर की वातें सुनकर ठकुरानी सोचने लगी-ये तो सारी वातें मुझ पर ही घटित होती है । फिर भी उसने कहा-चलो, मेरे भाग्य अच्छे थे, जो आप उस नाग से बचकर आगए ।

ठाकुर—ठकुरानी ! समझो । मैं उस नाग से बच निकला पर तुम सरीखी नागिन से बच निकलना बहुत कठिन है ।

ठकुरानी—क्या मैं नागिन हू ? अरे वाप रे ! मैं नागिन हो गई ? भगवान् जानता है । सब देव जानते हैं । मैंने क्या किया जो मुझे नागिन बनाते हैं ।

ठाकुर—मैं नही बनाता, तुम स्वय बन रही हो ! मैं अपने मित्रो के सामने तुम्हारी तारीफ वघारता था,लेकिन सब व्यर्थ हुआ।

ठकुरानी—तो बताते क्यो नही, मैंने ऐसा क्या किया है ? मैं आपके विना जी नही सकती और आप मुझे लाछन लगा रहे हैं।

ठाकुर—बस रहने दो। मैं अब वह नही, जो तुम्हारी मीठी-मीठी बातो मे आ जाऊ । तुम मुझ मे कहा करती थी–तुम्हारे वियोग मे मुझे खाना नही भाता और रात भर खाने का कचूमर निकाल दिया !

ठकुरानी की पोल खुल गई । साराश यह कि ससार में इस ठकुरानी के समान पति से कपट करने वाली स्त्रिया भी हैं और पतिव्रताए भी हैं । पति के प्रति निष्कपट भाव से अनन्य प्रेम रखने वाली स्त्रिया भी मिल सकती हैं और मायाविनी भी मिल सकती हैं। ससार मे अच्छाई भी है और बुराई भी है। प्रश्न यह है कि स्त्री को क्या ग्रहण करना चाहिये ? किसको अपनाने से नारी-जीवन उन्नत और पवित्र बन सकता है ?

आज अगर कोई स्त्री सीता नही बन सकती तो भी लक्ष्य तो वही रखना चाहिये। अगर कोई अच्छे अक्षर नही लिख सकता तो साधारण ही लिखे मगर लिखना छोडने से तो काम नही चल सकता। यही बात पुरुषो के लिये भी है। पुरुषो के सामने महान्-आत्मा राम का आदर्श है। उन्हे राम के समान उदार, गम्भीर, मातृ-पितृ सेवक, बन्धु-प्रेमी और धार्मिक बनना चाहिये।

सीता मे कैसा पति-प्रेम था वह बात इसी से प्रकट हो जाती है कि क्या जैन और क्या अजैन, सभी ने अपनी शक्ति भर सीता की गुण-गाथा गाई है। मेहदी का रग चमडी पर चढ जाता है और कुछ दिनो तक चमडी पर से उतारे नही उतरता। मगर सीता का पति-प्रेम इससे भी गहरा था। सीता का प्रेम इतना अन्तरंग था कि वह चमडी उतारने पर भी नही उतर सकता था। वह आजीवन के लिये था, थोडे दिनो के लिये नही।

कवियो ने कहा है कि सीता, राम के रग मे रग गई थी। पर राम मे वन जाते समय कौनसा नवीन रग आया था कि जिसमे सीता रगी ?

जिस समय सीता के स्वयवर-मडप मे सब राजाओ का पराक्रम हार गया था, सब राजा निस्तेज हो गए थे और जब राम ने सब राजाओ के सामने अपना पराक्रम दिखाया था, उस समय राम के रस मे सीता का रचना ठीक था। पर उस समय के रंग मे स्वार्थ था। इसलिये उस समय के लिये कवि ने यह नही कहा कि सीता राम के रग मे रग गई। मगर जब कि राम ने सब वस्त्र उतार दिये हैं, वल्कल वस्त्र धारण किये हैं, फिर सीता राम के रग मे क्यो रगी ? अपने पति के असाधारण त्याग को देख

कर और संसार के कल्याण के लिये उन्हें वनवास करने को उद्यत देखकर सीता के प्रेम मे वृद्धि ही हुई । वह राम के लोकोत्तर गुणो पर मुग्ध हो गई । इसो से कवि ने कहा है कि सीता राम के रग मे रग गई ।

उस समय सीता की एकमात्र चिन्ता यही थी कि जैसे प्राणनाथ को वन जाने की अनुमति मिल गई है, वैसे मुझे मिल सकेगी या नहीं ?

वास्तव मे वही स्त्री पति-प्रेम मे अनुरक्त कहलाती है, जो पति के धर्म—कार्य आदि सभी मे सहायक होती है । गहने-कपडे पाने के लिये तो सभी स्त्रिया प्रीति प्रदर्शित करती हैं, मगर सकट के समय, पति के कन्धे से कन्धा भिडा कर चलने वाली स्त्रिया सरा-हनीय हैं। गिरते हुए पति को उठाने वाली और उठे हुए पति को आगे बढाने वाली स्त्री ही पतिपरायण कहलाती है ।

रामचन्द्र जी माता कौशल्या से वन जाने के लिये अनुमति मांगने गए तो कौशल्या अधीर हो उठी । उन्होने पहले वन के भयानक स्वरूप का स्मरण किया । फिर राम की सुकुमारता का विचार किया । राम की उम्र उस समय सत्ताईस वर्ष की थी । कौशल्या ने सोचा—क्या यह उम्र वन जाने योग्य है ? राजमहल मे सुमन-सेज पर सोने वाला सुकुमार राम वन की ककरीली, पथ-रीली और कटकमयी भूमि पर कैसे सोएगा ? कहा यहा के षट्रस भोजन और कहा वन के फूल ! वन मे इसका निर्वाह कैसे होगा ? किस प्रकार सर्दी, गर्मी, और वर्षा का कष्ट सहा जायगा ?

राम ने बडी सरलता और मिठास से माता को समझाया—

माता ! जो पुत्र माता—पिता की आज्ञा का पालन नहीं करता, वह पुत्र नहीं है। और फिर मैं कैकेयी माता को एक बार महाराज के युद्ध मे प्राण बचाने के महान् कार्य का पुरस्कार देने जा रहा हू। अतएव आप अपनी आखो के आसू पोछ डालो और मुझे विदा दो। हर्ष के समय विषाद मत करो। ससार का ऐसा ही स्वरूप है। सयोग वियोग के अवसर आते ही रहते हैं। इन प्रसगो के आने पर हर्ष–विषाद न करने मे ही भलाई है।

राम के ये वचन कौशल्या के मोह को बाण की तरह लगे। उन्होने सोचा—राम ठीक तो कहता है। जब पुत्र पिता की आज्ञा और धर्म का पालन करने के लिए उद्यत हो रहा हो, तब माता के शोक का क्या कारण है ? ऐसा करना माता के लिए दूषण है। स्त्री–धर्म के अनुसार पति ने जो वचन दिया है, वह पत्नी ने भी दिया है। फिर मुझे शोक क्यो करना चाहिए ?

इस प्रकार विचार कर कौशल्या ने कहा—वत्स ! मैं तुम्हारा कहना समझ गई। मैं आज्ञा देती हू। वन तुम्हारे लिए मगल–मय हो। तुम्हारा मनोरथ पूरा हो।

पुत्र ! अभी तू नाम से राम है। अब सच्चा राम बन। अब तेरा नाम सार्थक होगा। तू जगत् के कल्याण मे अपना कल्याण और जगत् की उन्नति मे अपनी उन्नति मानना। तेरा पक्ष सिद्ध हो। तू विघ्न आने पर भी धैर्य से विचलित न होना। प्रसन्न होकर तू वन जा। मेरा आशीर्वाद तेरे साथ है। इस विशाल विश्व का प्रत्येक प्राणी तेरा हो, तू सबको अपना आत्मीय समझे, तभी तू मेरा होगा। लेकिन आजकल क्या होता है.—

मात कहे मेरा पूत सपूता, बहिन कहे मेरा भैया ।
घर की पत्नी यो कहे, सब से वडा रुपैया ।।

वेटा चाहे अनीति करे, अधर्म करे, झूठ-कपट का सेवन करे, अगर वह रुपये ले आता है तो अच्छा है, नही तो नहीं । ऐसा मानने वाले लोग वास्तव मे मा-वाप नही किन्तु अपनी सतान के शत्रु हैं । ससार मे जहा पुत्र को पाप करते देखकर प्रसन्न होने वाले मा-वाप मौजूद हैं, वहा ऐसे मा-बाप भी मिल सकते है, जो पुत्र की धार्मिकता की बात सुनकर प्रसन्न होते हैं । पुत्र जब कहता है-आज मेरे ऊपर ऐसा सकट आ गया था । मैं अपने शत्रु से इस प्रकार बदला ले सकता था पर मैंने फिर भी धर्म नही छोडा । मैंने अपने शत्रु की इस प्रकार की सहायता की । ऐसी वातें सुनकर प्रसन्न होने वाली कितनी माताए है ?

राम और कौशल्या की वात सीता भी सुन रही थी । वह नीची दृष्टि किये सलज्ज भाव से वही खडी थी । माता और पुत्र का वार्तालाप सुनकर उसके हृदय मे न जाने कैसा तूफान आया होगा ! सीता की सास उसके पति को वन जाने के लिये आशीर्वाद दे रही है, यह देखकर सीता को प्रसन्न होना चाहिये या दु खी ? अगर आज ऐसी वात हो तो वह कहेगी—यह कैसी अभागिनी सास है, जो अपने वेटे को ही वन मे भेजने को तैयार हो गई है ! मैं यह समझती थी कि यह वन जाने से रोकेगी पर यह तो उल्टा आशीर्वाद दे रही है । मगर सीता ने ऐसा नही सोचा । सीता मे कुछ विशेषताए थीं और उन्ही विशेषताओ के कारण राम से भी पहले उसका नाम लिया जाता है । पर आज सीता के आदर्श को हृदय में उतारने वाली स्त्रिया मिलेंगी ? फिर भी भारतवर्ष का सौभाग्य है कि यहा के लोग सीता के चरित्र को बुरा नही समझते । बुरे से

बुरा आचरण करने वाली नारी भी सीता के चरित्र को अच्छा समझती है।

सीता मन ही मन कहती है—आज प्राणनाथ वन को जा रहे हैं। क्या मेरा भी इतना पुण्य है कि मैं भी उनके चरणो मे आश्रय पा सकू ?

पति को प्राणनाथ कहने वाली स्त्रिया तो बहुत मिल सकती हैं मगर इसका मर्म सीता जैसी विरली ही जानती है। पति का वन जाना सीता के लिये सुख की बात थी या दु ख की ? यों तो पत्नी को छोडकर पति का जाना पत्नी के लिये दु.ख की बात ही है, पर सीता को दु ख का अनुभव नही हो रहा है। उसकी एक मात्र चिन्ता यह है कि क्या मेरा इतना पुण्य है कि मैं भी पतिदेव की सेवा मे रह सकू ? सीता के पास विचार की ऐसी सुन्दर सम्पत्ति थी। यह सम्पत्ति सभी को सुलभ है। जो चाहे, उसे अपना सकता है। जो ऐसा करेगा वही सुकृतशाली होगा।

सीता सोचती है—मेरे पतिदेव तो राज्य त्याग कर वन जा रहे हैं। वे अपनी माता की इच्छा और पिता की प्रतिज्ञा पूरी करने वन जाते हैं, लेकिन हे सीता ! तेरा भी कुछ सुकृत है या नही ? क्या तेरा इतना सुकृत है कि तेरा और प्राणनाथ का साथ हो सके ? तूने प्राणनाथ के गले मे वरमाला डाली है, पति के साथ विवाह किया है, उनके चरणो मे अपने को अर्पित कर दिया है, इतने दिन उनके साथ ससार का सुख भोगा है तो क्या तेरा ऐसा भाग्य नही कि वन मे जाकर तू उनका साथ दे सके ?

सीता सोचती है—मैं राम के साथ भोग-विलास करने के लिये नही ब्याही गई हूं। मेरा विवाह राम के धर्म के साथ हुआ

है । ऐसी दशा मे क्या राम अकेले ही वन जाकर धर्म करेंगे ? क्या मैं उस धर्म का सहयोग देने से वचित रहूगी ? अगर मैं शरीर सहित प्राणनाथ के साथ न रह सकी तो मेरे प्राण अवश्य ही उनके साथ रहेंगे। मुझमे इतना साहस है कि अपने प्राणो को शरीर से अलग कर सकती हू । अगर राजमहल के कारागार मे मुझे कैद किया गया तो निश्चित रूप से मेरा निर्जीव शरीर ही कैद रहेगा। प्राण तो प्राणनाथ के पास उडकर पहुचे विना नही रहेंगे ।

प्राणनाथ को वन जाने की अनुमति मिल गई है और मुझे अभी प्राप्त करनी होगी। सासजी की अनुमति लिये बिना मेरा जाना उचित नही है । सासजी से अनुमति लू गी। जब उन्होने पुत्र को आज्ञा दी है तो पुत्रवधू को भी देंगी ही ।

सीता सोचती है—प्राणनाथ का वन जाना मेरे लिये गौरव की बात है। उनके विचार इतने ऊचे और उनकी भावना इतनी पवित्र है, इससे प्रगट है कि उनमे परमात्मिक गुण प्रगट हो रहे हैं। मैंने विवाह के समय इन्हें दूसरे रूप में देखा था। आज दूसरे ही रूप में देख रही हू ।

रामचन्द्र जी ने कौशल्या को प्रणाम किया और विदा लेने लगे । तब पास ही मे खडी सीता भी कौशल्या के पैरो पर गिर पडी । सीता को पैरो के पास गिरी देखकर कौशल्या समझ गई कि सीता भी इस पिजरे से बाहर जाना चाहती है, जिसे राम ने तोडा है ।

फिर कौशल्या ने सीता से कहा—बहू तुम चचल क्यो हो ?

सीता—माता ! ऐसे समय चचल होना स्वाभाविक ही है। आपके चरणो की सेवा करने की मेरी बड़ी साध थी। वह मन

की मन मे ही रह गई। कौन जाने अब कब आपके दर्शन होंगे ?

कौशल्या—क्या तुम भी वन जाने का मनोरथ कर रही हो?

सीता—हा मा! यही निश्चय है। 'जिसके पीछे यहा आई हू, जब वही वन जा रहे हैं तो मैं किस प्रकार यहा रहूगी ? जब पति वन मे हो तो पत्नी राजमहल मे रहकर अर्धाङ्गिनी कैसे कहला सकती है ?

सीता की बात से कौशल्या की आखें भर आई। राम तो ठीक, पर यह राजकुमारी सीता वन मे कैसे रहेगी ? फिर सीता सरीखी गुणवती वधू के वियोग से सास को शोक होना स्वाभाविक ही था। कौशल्या ने सीता का हाथ पकडकर अपनी ओर खीच कर उसे बालक की तरह अपनी गोद मे ले लिया। अपनी आखो से वह सीता पर इस तरह अश्रुपात करने लगी, जैसे उसका अभिषेक कर रही हो। थोडी देर बाद कौशल्या ने कहा—पुत्री, क्या तू भी मुझे छोड जायगी ? तू भी मुझे अपना वियोग देगी ? राम को तो अपना धर्म पालन करना है, उन्हे अपने पिता के वचन की रक्षा करनी है, इसलिए वन को जाते हैं पर तुम क्यो जाती हो ? तुम पर क्या ऋण है ?

सीता इस प्रश्न का क्या उत्तर देती ? वह यही उत्तर दे सकती थी कि मैं राम के रग मे रगी हू। पति जिस ऋण को चुकाने के लिए वन जाते हैं, क्या वह अकेले उन्ही पर है ? नही, वह मुझ पर भी है। जब मैं उनकी अर्धाङ्गिनी हू तो पति पर चढा ऋण पत्नी पर भी है। पर सीता ने कोई उत्तर नही दिया। वह मौन रही।

कौशल्या समझा-बुझाकर सीता का राम-रग उतारना चाहती

है पर वह सीता जो ठहरी । रग उतर जाता तो सीता ही नही रहती। दूसरी कोई स्त्री होती तो इस अवसर से लाभ उठाती । वह कहती-मैं क्या करू ? मैं तो जाने को तैयार थी मगर सासजी नही जाने देती। सास की बात मानना भी तो बहू का धर्म है । पर सीता ऐसी स्त्रियो मे नहीं थी ।

कौशल्या ने सीता से कहा—वहू, विदेश प्रिय नही है। प्रवास अत्यन्त कष्टकर होता है । फिर वन का प्रवास तो और भी कष्ट-कर है । तू किसी दिन पैदल नही चली । अब काटो से परिपूर्ण पथ पर तू कैसे चल सकेगी ? तेरे सुकुमार पैर ककरो और काटो का आघात कैसे सह सकेंगे ?

आप सीता को कोई गुडिया न समझें, जो चार-कदम भी पैदल नहीं चल सकती । उसके चरित्र पर विचार करने से स्पष्ट मालूम हो जाता है कि वह सुख के समय पति से पीछे और दुख मे पति से आगे रही थी। अतएव उसे कायर नही समझना चाहिये।

सब ही बाजे लश्करी
सब ही लश्कर जाय ।
सेल धमाका जो सहै,
सो जागीरी खाय ।।
गलियारा फिरता फिरे,
वांध ढाल तलवार
शूरा तब ही जानिये ।
रण बाजे झकार ।।

स्त्रिया कहती हैं—हमें कायर तभी समझना जब हम दुख-

सुख मे आगे न रहे। पति के आगे रहने वाली स्त्रिया भारत मे कम नही हुई हैं। सलूम्बर की रानी ने तो पति से पहिले ही अपना सिर दे दिया था। उसने कहा था—आपको मेरे शरीर पर मोह है तो पहले मेरा ही सिर ले लो। जो वीरागना हसती-हसती पति के लिये अपना सिर दे सकती है उसे कौन कायर कह सकता है ? वीरागना कहती है—हम सुख के समय ही कायर और सुकुमार हैं। सुख के समय ही हम सवारी पर बैठकर चलती हैं। लेकिन दुःख के समय हम पति से आगे रहती हैं। पति जो कष्ट उठाता है, उससे अधिक कष्ट उठाने के लिये तैयार रहती हैं।

कौशल्या सीता को कोमलागी समझकर वन जाने से रोकना चाहती हैं। वह कहती हैं—हे राम, मैं तुमसे और सीता से कहती हू कि सीता वन जाने योग्य नहीं है। मैंने सीता को अमृत की जडी की तरह पाला है। वह वन रूपी विषकटक मे जाने योग्य नहीं है। यह राजा जनक के घर पलकर मेरे घर मे आई है। जिसने जमीन पर पैर तक नही रखा, वह वन मे पैदल कैसे चलेगी ? यह किरात-किशोरी अर्थात्-भील की लडकी नही है और न तापस-नारी है, जो वन मे रह सके। दाख का कीडा पत्थर मे नहीं रह सकता। यह मेरी नयन-पुतली है, जो तनिक भी आघात नही सह सकती।

कौशल्या का कथन चाहे ममता के स्रोत से निकला हो मगर सीता के लिए वह परीक्षा है। अब सीता के राम-रस की परीक्षा हो रही है।

कौशल्या कहती हैं—जगल बडा दुर्गम प्रदेश है। यहा थोडी दूर जाने पर भी जल की झारी वाली दासी साथ रहती है पर

वहां दासी कहां ? वहां तो प्यास लगने पर पानी भी मिलना कठिन है। जब गरम हवा चलेगी तब मुह सूख जायगा। ऊपर से धूप भी तेज लगेगी, उस समय पानी कहा सुलभ होगा ? जगल मे पड़ाव नहीं है कि पानी मिल सके। इस प्रकार तू प्यास के मारे मरेगी और राम की परेशानी बढ जाएगी। यहा तुझे मेवा मिष्ठाम मिलता है, वहा कडुवे-खट्टे फल भी सुलभ नही होगे। सीता, तू भूख-प्यास आदि का यह भयकर कष्ट सहन कर सकेगी ?

वहा न महल है, न गरम कपडे हैं और न सिगडी का ताप है। चलते-चलते जहा रात हो गई वही बसेरा करना पड़ता है। यही नही, जगल मे बाघ, चीता, रीछ, सिह आदि हिंसक जानवर भी होते हैं। तू उनके भयकर शब्दो को कैसे सुन सकेगी ? तूने कभी कठोर शब्द तो सुना ही नहीं है।

सीता सास की बातें सुनकर तनिक भी विचलित नहीं हुई। उसने सोचा—यह तो मेरे राम-रस की परीक्षा हो रही है। अगर इसमे मैं उत्तीर्ण हो गई तो मेरा मनोरथ पूरा हो जायगा।

सीता के शरीर पर हाथ फेरते हुए कौशल्या कहने लगी—देखती नही, तेरा शरीर कितना कोमल है। तू बचपन से कोमल शय्या पर सोई है। लेकिन वन मे शय्या कहा ? धरती पर सोने मे तुझे कितना कष्ट होगा ? उस समय राम के लिए तू भार हो जाएगी। प्रदेश मे स्त्रिया पुरुष के लिए भार रूप हो जाती हैं। फिर यह तो वन का प्रवास है। स्त्रिया घर मे ही शोभा देती हैं। जगल मे भटकना उनके बूते का नही है।

माता कौशल्या की बात का राम ने भी समर्थन किया। वह सुनकर मुस्कराते हुए बोले—माता, आप ठीक कहती हैं। वास्तव

मे जानकी वन जाने योग्य नहीं है ।

माता के सामने जानकी के विषय मे कुछ कहते हुए राम लज्जित तो हुए लेकिन आपत्तिकाल मे सर्वथा चुप भी नहीं रह सकते थे । माता-पिता की मर्यादा की रक्षा करना पुत्र का धर्म है । किन्तु विकट प्रसग पर उस मर्यादा को कुछ सकीर्ण भी करना पड़ता है ।

राम सीता से कहने लगे—सुकुमारी ! वैसे मैं तुम्हें विलग नही करना चाहता पर मैं मातृभक्त हू । अतएव मैं कहता हू कि तुम्हें घर पर रह कर ही माता की सेवा करनी चाहिए । मैंने तुम्हे जितना समझ पाया है, उसके आधार पर कह सकता हूं कि तुम शक्ति और सरस्वती हो । मैं तुम्हारी शक्ति को जानता हू । इसलिये तुम घर पर रहो । मेरे वियोग के कारण जब माता दु.खी हो तब तुम उन्हे सान्त्वना देना । मुझ पर पिता का ऋण है इस-लिये मेरा वन जाना आवश्यक है । तुम्हारे ऊपर कोई ऋण नहीं अतएव तुम्हारा जाना आवश्यक नही । इसके अतिरिक्त मेरी इच्छा भी यही है कि तुम घर पर रहोगी तो स्वय सुखी रहोगी और माता भी सुखी रह सकेंगी । अगर तुम मेरी सेवा के लिये वन जाना चाहती हो तो माता की सेवा होने पर मैं अपनी सेवा मान लूंगा । इतने पर भी हठ करोगी तो कष्ट उठाना पडेगा । हठ करने वाले को सदा कष्ट ही भोगना पडता है । इसलिये तुम मेरी और माता की वात मान जाओ । वनवास कोई साधारण वात नही है । वन मे वडे-वडे कष्ट हैं । हमारा शरीर तो वज्र के समान है । वैरियो के सामने युद्ध करके हम मजवूत हो गए हैं । लेकिन तुमने घर के वाहर कभी पैर भी रखा है ? अगर नही तो मेरी समता मत करो । वन मे भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी आदि के दुःख अभी माता वतला

चुकी हैं। मैं अपने साथ एक पैसा भी नही ले जा रहा हू कि उससे कोई प्रबन्ध कर सकूंगा। राजा का कोई काम न करना फिर भी राज्य सम्पत्ति का उपयोग करना मैं उचित नही समझता। इस स्थिति मे तुम्हारा चलना सुविधाजनक न होगा।

मैंने वल्कल-वस्त्र पहने हैं। वन जाकर मैं अपने जीवन की रक्षा के लिए सात्विक साधन ही काम मे लूगा। मैं वन-फल खाकर भूमि पर सोऊगा। वृक्ष की छाया ही मेरा घर होगी या कोई पर्णकुटी बनाकर कही रहूगा। तुम यह सब कष्ट सहन नही कर सकोगी।

राम बडी दुविधा मे पडे हैं। एक ओर सीता के प्रति ममता के कारण उसके कष्टो की कल्पना करके और माता को अकेली न छोड जाने के उद्देश्य से वह सीता को साथ नहीं ले जाना चाहते, दूसरी ओर सीता की पति-परायणता देख, वियोग उसके लिए असह्य होगा, यह सोचकर वह उसे छोड जाना भी नहीं चाहते। फिर भी वह यह चाहते हैं कि सीता वन के कष्टो के विषय मे धोखे मे न रहे। इसीलिए सारे कष्टों को उन्होने सीता के सामने रख दिये।

राम और कौशल्या ने सीता को घर रहने के लिए समझाया। उनकी बातें सुनकर सीता सोचने लगी—यह एक विकट प्रसग है। अगर मैं इस समय लज्जा से चुप रह जाऊगी और घर मे ही बैठी रहूगी तो यह मेरे लिये स्त्री-धर्म का नाश करना होगा। इस प्रकार विचार कर और जी कडा करके सीता ने राम से कहा—प्रभो! आपने और माता जी ने वन के कष्टो के विषय में जो कुछ कहा है, सब ठीक है। आपने वन के कष्ट बतला दिये सो भी अच्छा

किया। लेकिन मैं हठ के कारण वन नही जा रही हू। आप विश्वास कीजिये कि मैं वन के कष्टो से भयभीत नही होती। बल्कि यह सुनकर तो वन के प्रति मेरी उत्सुकता और बढती जा रही है। मुझे अपने साहस और धैर्य की परीक्षा देनी है और मैं उस परीक्षा मे अवश्य सफल होऊ गी।

मैं सुख मे तो आपके साथ रही हूं तो क्या दुख के समय किनारा काट जाऊं ? सुख के साथी को दुख मे भी साथी होना चाहिये। जो ऐसा नही करता वह सच्चा साथी नहीं, स्वार्थी है। पत्नी पति के सुख-दुःख की सगिनी है। आप मुझे वन के कष्ट बताकर वन जाने से रोक रहे हैं, मगर क्या मैं आपके सुख की ही साथिन हू ? क्या मुझे स्वार्थपरायण बनना चाहिये ? नही, मैं दुख मे आपसे आगे रहने वाली हू।

राम का ऐसा पक्का रग सीता पर चढा था कि स्वय राम के छुटाए भी न छूटा। राम सीता को वन जाने से रोकना चाहते थे, पर सीता नही रुकी। वास्तव मे राम-रग वह है, जो राम के धोने से भी नही धुलता।

सीता कहती हैं—प्राणनाथ ! जान पडता है, आज आप मेरी ममता मे पड गए हैं। मेरे मोह मे पडकर आपने जो कहा है उसका मतलब यह है कि मैं अपने धर्म का और अपनी विशेषता का परित्याग कर दू। यद्यपि आपके वचन शीतल और मधुर हैं लेकिन चकोरी के लिये चन्द्रमा की किरणें भी दाह उत्पन्न करती हैं। वह तो जल से ही प्रसन्न रहती है। स्त्री का सर्वस्व पति है। पति ही स्त्री की गति है। सुख-दुख मे समान भाव से पति का अनुसरण करना ही पतिव्रता का कर्त्तव्य है। मैं इसी कर्त्तव्य का

पालन करना चाहती हू । अगर मैं अपने कर्त्तव्य से च्युत हो गई तो घृणा के साथ लोग मुझे स्मरण करेंगे । इसमे मेरा गौरव नष्ट हो जायेगा । इसके अतिरिक्त आप जिस गौरव-पूर्ण काम को लेकर और जिस महान् उद्देश्य की सिद्धि के लिये वन-गमन कर रहे है क्या उसमे मुझे शरीक नही करेंगे ? आप अकेले ही रहेंगे । ऐसा मत कीजिये । मुझे भी उसका थोडा-सा भाग दीजिये । अगर मुझे शामिल नही करते तो मुझे अर्धाङ्गिनी कहने का क्या अर्थ है ? हा, अगर वन जाना अपमान की बात हो तो भले ही मुझे मत ले चलिए । अगर गौरव की बात है तो मुझे घर ही मे रहने की सलाह क्यो देते हैं ? आपका आधा अग घर मे ही रह जायगा तो आप विजय कैसे पा सकेंगे ? आधे अग से किसी को विजय नही मिलती ।

आप वन मे मुझे भय हो भय बतलाते हैं मगर आपके साथ तो मुझे वन मे जय ही जय दिखलाई देती है । कदाचित् भय भी वहा होगा मगर भय पर विजय प्राप्त कर लेना कोई कठिन बात नही और ऐसी विजय मे ही सुख का वास है ।

कदाचित् आप सोचते होगे कि सीता मे आत्मबल नही है, इस कारण वन उसके लिये कष्टकर होगा । कदाचित् भय वहा होगा मगर अवसर मिलने पर मैं अपना बल दिखलाऊ गी । स्त्री के लिये जितने भी व्रत-नियम हैं और धर्म हैं उनमे से किसी मे भी चूक जाऊ तो मैं जनक की पुत्री नही । अधिक क्या कहू, बस इतना ही निवेदन करना चाहती हू कि मैं आपकी अर्धाङ्गिनी हू, सुख-दुख की साथिन हू । मुझे अलग मत कीजिये । वन के जो कष्ट आप सहेंगे, मैं भी सह लू गी । कोमलता कठोरता के सहारे और कठोरता कोमलता के सहारे रहती है । डाली के बिना पत्ती और पत्ती के बिना डाली नही रह सकती । दोनों का अस्तित्व सापेक्ष है । मैं

माता जी से भी यही प्रार्थना करती हूं कि वे मुझे निस्संकोच आज्ञा दें। स्त्री के हृदय को स्त्री जल्दी और खूब समझ सकती है। इससे ज्यादा निवेदन करने की आवश्यकता ही नही है।

सीता सोचती है—जहा पति हैं, वहा सभी सुख हैं। जहा पति नही; वहा दुःख ही दुःख है। पति स्वयं सुखमय है। उनके वियोग मे सुख कहा ?

सीता फिर बोली—आप वन मे सताप कहते हैं पर वहा पाप तो नही है ? जहा पाप न हो, वह सताप-सताप ही नही है, वह तो आत्मशुद्धि करने वाला तप है। आप भूख-प्यास का कष्ट बतलाते हैं लेकिन स्त्रिया इन कष्टो को कष्ट नही गिनती। अगर हम भूख-प्यास से डरती तो पुरुषो से अधिक उपवास न करती। भूख सहने मे स्त्रिया पक्की होती हैं।

सीता की बातें सुनकर कौशल्या सोचने लगी—सीता साधारण स्त्री नही है। इसका तेज निराला है। यह साक्षात् शक्ति है। राम और सीता मिलकर जगत् का कल्याण करेंगे। जगत् मे नया आदर्श रखने के लिए इनका जन्म हुआ है। अतएव सीता को राम के साथ जाने की अनुमति देना ही ठीक है।

सीता की बातो से प्रभावित होकर कौशल्या ने सीता को आशीर्वाद दिया—बेटी, जब तक गगा और यमुना की धारा बहती है तब तक तेरा सौभाग्य अखण्ड रहे। मैंने समझ लिया कि तू मेरी ही नही पर सारे ससार की है। तेरा चरित्र देखकर ससार की स्त्रिया सती बनेंगी और इस प्रकार तेरा सौभाग्य अखण्ड रहेगा। सीते ! तेरे लिये राजभवन और गहन वन समान हो। तू वन मे भी मगल से पूरित हो।

सीता सास का आशीर्वाद पाकर कितनी प्रसन्न हुई, यह कहना कठिन है। आशीर्वाद देते समय कौशल्या के मन की क्या अवस्था हुई होगी, यह तो कौशल्या ही जानती है या सर्वज्ञ भगवान् जानते हैं। राम और सीता कौशल्या के पैरो पर गिरे। कौशल्या ने अपने हृदय के अनमोल मोती उन पर बिखेर दिये और विदा दी।

सीता की भावना कितनी पवित्र और उच्च श्रेणी की थी! सीता सच्ची पतिव्रता थी। वह पति की प्रतिज्ञा को अपनी ही प्रतिज्ञा समझती थी। उसने अपने व्यक्तित्व को राम के साथ मिला दिया। सीता का गुण थोडे अशो मे भी जो स्त्री ग्रहण करेगी उसे किसी चीज के न मिलने का या मिली हुई चीज के चले जाने का कभी भी दुःख नहीं होगा।

स्त्रियों को अगर सीता का चरित्र प्रिय लगेगा तो वे पहिले पतिप्रेम के जल में स्नान करेंगी। पतिप्रेम के जल मे किस प्रकार स्नान किया जाता है, यह बात सीता के चरित्र से समझ मे आ सकती है। राम से पहिले सीता का नाम लिया जाता है। सीता ने यदि पतिप्रेम-जल मे स्नान न किया होता और राजभवन मे रह जाती तो उसका नाम आदर से कौन लेता?

सीता ने अपने असाधारण त्यागमय चरित्र के द्वारा स्त्री-समाज के सामने ऐसा उज्ज्वलता का आदर्श उपस्थित कर दिया, जो युग-युग मे नारी का पथ प्रदर्शन करेगा। पथ-भ्रष्ट स्त्रियो के लिये यह महान् उत्सर्ग बडे काम का सिद्ध होगा।

एक आजकल की स्त्रिया हैं कि जिन्हे वन का नाम लेते ही बुखार चढ आता है। सीता ने वन जाकर स्त्रियो को अबला कहने वाले पुरुषो को एक प्रकार से चुनौती दी थी। उसने सिद्ध किया

है कि स्त्रियां शक्ति हैं। सीता के द्वारा प्रदर्शित पथ पर स्त्रियों को चलना चाहिये।

सीता का पथ कौन-सा है? कैसा है? इसका उत्तर देना कठिन है। पूरी तरह उस पथ का वर्णन नहीं किया जा सकता। एक कवि ने कहा है—

बेना आपणो बनाव,
घणा मोल को करां।
पैली आपणी सत्यां रा,
पग लागणो करां॥ बेना०॥
पति-प्रेम रा पवित्र,
नीर मांय सांपड्यां,
पीर-सासरा रा बखाण रा
सुवेष पैरलां।
मेंहदी राचणी विचार
घरे काम आदरां॥ बेना०॥

सीता के रोम-रोम में पुनीत पतिभक्ति भरी हुई थी। पतिव्रता स्त्री के नेत्रों में वह शक्ति होती है कि अगर वह किसी को पुत्र की तरह प्रेम की दृष्टि से देख ले तो उसका शरीर वज्रमय हो जाय और यदि क्रोध की दृष्टि से देख ले तो वह भस्म हो जाय।

जो स्त्री अपने सतीत्व को हीरे से बढ़कर समझती है, उसकी आंखों में तेज का ऐसा प्रकृष्ट पुञ्ज विद्यमान रहता है कि उसका सामना होते ही पापी की निर्बल आत्मा कांपने लगती है।

पति–पत्नी का मन अगर निष्कपट हो तो एक को दूसरे के मन की बात जान लेना भी कठिन नहीं है ।

सीता की भाति क्या आज की बहिनें सम्पूर्ण विश्व को अपना समझती हैं ? राज्य तो बडी चीज है पर आजकल तो क्या तुच्छ से तुच्छ वस्तुओं को लेकर ही देवरानी जेठानी मे महाभारत नहीं मच जाता ? भाई–भाई के बीच कलह की वेल नही बो देती ? क्या जमाना था वह कि जब सीता इस देश मे उत्पन्न हुई थी। सीता जैसी विचारशील सती के प्रताप से यह देश धन्य हो गया ।

कुलीन स्त्रियां, जहा तक सम्भव होता है, भाई–भाई मे विरोध उत्पन्न नहीं होने देती । यही नही वरन् किसी अन्य कारण से उत्पन्न हुए विरोध को भी शात करने का प्रयत्न करती हैं। पतिव्रता नारी अपने पति को शरीर से भी अधिक मानती है । पति के प्रेम से प्रेरित होकर तो वह अपने शरीर की हड्डी—चमडी भी खो देती है लेकिन पति का प्रेम नही खाती ।

कोई महिला कुचाल चलते हुए भी पतिव्रता बनने का ढोग कर सकती है और अपने पति की आखो मे धूल झोक सकती है पर यह चालाकी ईश्वर के सामने नही चल सकती। पति हृदय की बात नही जानता मगर ईश्वर मनुष्य के हृदय को भी जानता है । वह सर्वज्ञ है, सर्वदर्शी है । जो उसको धोखा देने की कोशिश करेगी वह स्वय धोखे की शिकार होगी ।

परम पिता के पास अच्छी या बुरी नारियो का इतिहास जैसा का तैसा पहुच जाता है । सती स्त्रियो के हृदयोद्गार कितनी शीघ्रता से ईश्वर के पास पहुचे हैं, इसके उदाहरण भी कम नहीं ।

सीताहरण से रावण के वश का नाश हो गया। चित्तौड

की राजपूत-सतियो की हृदयाग्नि ने मुगल वंश का इस तरह नाश किया कि आज उनके नाम पर रोने वाला भी नही है।

द्रौपदी चीर-हरण के कारण ही कौरव वश का नाश हुआ। द्रौपदी का चरित्र जिसे विस्तार से देखना हो, उसे महाभारत मे देखना चाहिए। सीता का पतिव्रत कुछ कम नही। उसका सतीत्व बडा ही जाज्वल्यमान है, पर द्रौपदी भी कुछ कम नही थी। वह एक प्रखर नारी थी। सीता सौम्यमूर्ति थी। द्रौपदी शाति का अवतार थी पर भीष्म पितामह आदि महापुरुषो के सामने भी भाषण देने वाली थी। वह वीरागना का काम पडने पर युद्ध-शिक्षा देने से भी नही चूकती थी।

चदनबाला को ही देखिये। राजकुमारी होकर बिक जाना, अपने ऊपर आरोप लगने देना, सिर मुडवाना, प्रहार सहन करना, क्या साधारण बात है? तिस पर उसे हथकडी-बेडी डाली गई और वह भौंरये मे बन्द कर दी गई। फिर भी धन्य है चन्दनबाला महासती को, जो मुस्कराती ही रही और अपना मन मैला न होने दिया।

सचमुच स्त्रिया वह देवी हैं, जिनके सामने सब लोग सिर नमाते हैं और आज ऐसी ही देवियो, वीर माताओं, वीर पत्नियों और वीर बहिनो की आवश्यकता है। लेकिन यह भी दृढ सत्य है कि स्त्रियो का निरादर करके ऐसी माताएं और बहिनें नही बना सकते बल्कि उनका आदर करके ही बना सकते हैं।

पति और पत्नी का दर्जा बराबर है। तथापि दोनो मे जो अधिक बुद्धिमान् हो, उसकी आज्ञा कम बुद्धिमान् को माननी चाहिये। [illegible] करने से ही गृहस्थी मे सुख-शाति रह सकती है क्योकि

पति अगर स्वामी है तो स्त्री क्या स्वामिनी नहीं ? पति अगर मालिक कहलाता है तो पत्नी क्या मालकिन नही कहलाती ?

इसी तरह स्त्रियो के लिये अगर पतिव्रत धर्म है तो पुरुषो के लिये पत्नीव्रत धर्म क्यो नही ? धनवान् लोग अपने जीवन का उद्देश्य भोगविलास करना समझते हैं। स्त्री मर जाए तो भले मर जाए, पैसे के बल पर वे दूसरी शादी कर लेंगे। इस प्रकार एक पत्नीव्रत की भावना न होने से अनेक स्त्रिया पुरुषों की लोलुपता की शिकार होती हैं।

आज के पति धर्म-पत्नी को भूल रहे हैं। इसी कारण ससार मे दाम्पत्य जीवन दु खपूर्ण दिखाई देता है। आज साधारण तौर पर यह रिवाज चल पडा है कि पति एक पत्नी के मर जाने पर दूसरी और दूसरी के मर जाने पर तीसरी ब्याह लाता है। मगर यह अन्याय है। पुरुष अपनी स्त्री को तो पतिव्रता देखना चाहते हैं पर स्वय पत्नीव्रतधारी नहीं बनना चाहते। पुरुषो ने अपनी सुख-सुविधा के अनुकूल नियम घड लिये हैं। परन्तु शास्त्रकार स्त्री और पुरुष के बीच किसी प्रकार का अनुचित भेद न करते हुए, समान रूप से पुरुष को पत्नीव्रत और स्त्री का पतिव्रत पालने का आदेश देते हैं। शास्त्रकार उत्सर्ग मार्ग के रूप में ब्रह्मचर्य पालने का आदेश देते हैं। अगर पूर्ण ब्रह्मचर्य पालने की शक्ति न हो तो पुरुष को पत्नीव्रत और पत्नी को पतिव्रत पालने को कहते हैं। लेकिन पुरुष अपने आपको स्वपत्नी सन्तोषव्रत से मुक्त समझते हैं और सिर्फ पत्नी से स्वपति-सतोषव्रत का पालन कराना चाहते हैं। वे यह नही सोचते कि जब हम अपने व्रत का पालन नही करते तो स्त्री से यह आशा कैसे रख सकते हैं कि वह अपने व्रत का पालन करे ही ! अतएव पुरुषो और स्त्रियो के लिये उचित मार्ग यही है कि दोनो

अपने-अपने व्रत का पालन करें। जो व्रत का भली-भांति पालन करता है, उसका कल्याण अवश्य होता है।

वे मनुष्य वास्तव मे धन्य हैं, जो सौन्दर्यमूर्ति, नवयौवना स्त्री को देखकर भी विचलित नही होते किन्तु अपने निज स्वरूप मे स्थिर रहते हैं। उनको कवि ने तो भगवान् की उपमा दे दी ही है किन्तु विचार करते हुए यह उपमा अतिशयोक्ति नही है। क्योंकि इन्द्र, चन्द्र, नागेन्द्र और नरेन्द्र भी जिसकी आख के इशारे पर नाचते रहते हैं, उस मनोहरा स्त्री को देखकर जो क्षुब्ध नही होते, वे मनुष्य तो क्या देवों के भी पूज्य हैं और ससार मे ऐसे महापुरुष तो बहुत ही कम हैं। जघन्य पुरुष पत्नी होते हुए भी किसी रूपवती को देखकर और उसे अधीन करने के लिए आकाश-पाताल एक कर डालते हैं और उचित अनुचित सभी उपाय काम मे लेते हैं। न बोलने जैसे वचन बोलते हैं और स्त्री के दास होकर रहना भी स्वीकार करते हुए नही सकुचाते। कामान्ध मनुष्य यह नही सोचता कि मैं कौन हूं ? किस कुल मे उत्पन्न हुआ हूं ? मेरी व मेरे खानदान की प्रतिष्ठा कैसी है ? और मैं यह क्या कर रहा हूं ? मैंने जब विवाह किया था, तब अपनी पत्नी को मैंने क्या-क्या अधिकार दिये थे ? उसे क्या-क्या विश्वास दिया था और अब उसका हक, उसका अधिकार दूसरी को देने का मुझे क्या हक है ?

वह उचित और अनुचित रीति से उसे लालच और विश्वास देकर अपनी तरफ करने की चेष्टा करता है। हर तरह लाचारी-आजीजी भी करता है परन्तु जो चतुर स्त्री होती है, वह उसके दम्भ मे नही आती और अपने शील-धर्म एव प्रतिव्रत धर्म को ही आदर्श मानकर उस [illegible] रत्नों को भी ठुकरा देती है। किन्तु जो [illegible] स्त्रियां होती हैं, वे [illegible] में आकर भ्रष्ट हो जाती हैं। वे न

घर की रहती हैं, न घाट की ।

## ४–पतिव्रता का आदर्श

गुर्जर सम्राट् महाराजा सिद्धराज ने भी एक मजदूरनी के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर क्या-क्या चेष्टाए कीं, सो तो 'सती जसमा' पढ़ने से ही मालूम होगा । उसके चरित्र की कथाए आज भी गाने बन-बन कर गुजरात भर मे घर-घर गाई जा रही हैं ।

गुजरात के पाटन नगर के महाराज सिद्धराज सोलंकी ने एक तालाव खुदवाना आरम्भ किया था । उसकी खुदाई के लिये जो मजदूर आए थे, वे जाति के 'ओड' थे । उन्ही मे एक मजदूर टीकम नाम का था, जिसकी पत्नी जसमा थी ।

जसमा युवती थी और साथ-साथ अत्यन्त सौन्दर्यमयी भी थी । तालाव के बाध पर बार-बार मिट्टी ले जाकर डालती हुई जसमा पर एक दिन महाराज सिद्धराज की नजर पड गई और उसे देखते ही प्राणपण से चेष्टा करके वे उसे अपनाने की कोशिश करने लगे ।

तालाव का काम चालू हुए करीब पन्द्रह दिन हो चुके थे । महाराज को जब भी जसमा याद आती, वे तालाव पर पहुच जाते । इन पन्द्रह दिनो मे एक दिन भी ऐसा नहीं गया कि जिस दिन महाराज तालाब पर न पहुचे हो ।

एक दिन महाराज कुछ और जल्दी आ गए । यद्यपि मध्याह्न बीत चुका था परन्तु समय बहुत था । धूप भी कडाके की पड रही थी । ओड लोग खुदाई कर रहे थे और उनकी स्त्रिया टोकरियो

मे मिट्टी भरकर फैंक रही थी । महाराज को ऐसी धूप मे आया देख सभी को आश्चर्य हुआ । कुछ देर तक महाराज इधर-उधर घूमते रहे । आग बरस ही रही थी । महाराज ने मौका पाकर जसमा से पानी मागा ।

जसमा महाराज को इन्कार तो कैसे कर सकती थी ? वह शरमाती हुई पानी का प्याला महाराज के पास लाई ।

महाराज ने पानी पीते-पीते ही कहा—तुम्हारा ही नाम जसमा है ? अचानक महाराज के मुह से अपना नाम सुनकर जसमा शरमा गई । लज्जा की रेखा उसके मुह पर आई और आते ही उसका सौन्दर्य और अधिक खिल उठा । जसमा ने महाराज को तीन-चार बार इस झाड के नीचे देखा था । उसने सक्षेप मे ही उत्तर दिया—'जी' । राजा पानी पी गया और फिर दूसरी बार पानी मागा और साथ ही दूसरा प्रश्न भी किया ।

महाराज— जसमा ! तू ऐसी कडी धूप कैसे सहती होगी ?

जसमा—क्या करें महाराज ! हम क्या राजा हैं ? मजदूरी करते हैं और गुजारा चलाते हैं । जसमा ने पानी का पात्र दूसरी बार देते हुए नजर दूसरी तरफ रखकर जवाब दिया ।

महाराज—परन्तु ऐसी धूप मे ?

जसमा—नही तो पूरा कैसे पडे ? बोलते-बोलते अधिक देरी हो जाने के डर से जसमा ने खुदती हुई जमीन पर दृष्टि डाली और अपने पति को काम करता हुआ देखकर झोली मे सोते हुए बालक को झूला देती हुई चली गई । महाराज देखते रह गए । पर महाराज की इच्छा उसे प्राप्त करने के लिए बलवती हो उठी ।

जिस मनुष्य के हृदय मे किसी को देखकर विकार उत्पन्न हो जाता है, उसे वही धुन लग जाती है कि इसे मैं कैसे प्राप्त करू और अपनी प्रेयसी बनाऊ ? उस लालसा के वेग मे वह अपना आपा भी भूल जाता है। अपनी एव पूर्वजो की इज्जत का जरा भी ख्याल नही रखता हुआ ऐसे प्रपच रचता है, जिन्हे समझना बडी ही कठिन बात है। इस फदे मे फसा हुआ मनुष्य सभी कुकृत्य कर अपना इहलोक और परलोक दोनो ही बिगाड़ लेता है।

जिस दिन महाराज ने जसमा के हाथ से पानी पीया था उस दिन के बाद से तो बराबर तालाब पर जाना और प्रसग पाकर उससे बातचीत कर उसे अपनाना महाराज का ध्येय बन चुका था। एक दिन इसी प्रकार वे पेड के नीचे खडे थे। जसमा ने आकर बच्चे को झुलाया और चलने लगी कि पीछे से धीमी आवाज आई— जसमा !' जसमा ने पीछे फिर कर देखा तो महाराज थे। वह चुपचाप खडी रह गई।

महाराज—जसमा ! ऐसी मेहनत करने के लिये तू बनी है, यह मैं नहीं मानता। फिर क्यो इस तरह तू जीवन बरबाद कर रही है ?

जसमा—क्या करें महाराज ! हमारा धन्धा ही ऐसा है, जसमा सकुचाते हुए बोली।

महाराज—मैं तुम्हारे लिए यह सुविधा किये देता हू कि तुम आज से तालाब के किनारे पर बैठी हुई अपने बच्चे का पालन किया करो। मिट्टी मत उठाया करो। मिट्टी उठाने वाली तो बहुत हैं।

जसमा—आप मालिक हैं, इसलिये ऐसी कृपा दिखाते हैं

परन्तु मैं विना मेहनत किये हराम का खाना नही चाहती। मेहनत करना मैं अच्छा समझती हू।

महाराज—जसमा! तेरा शरीर अत्यन्त सुकुमार है, मिट्टी ढोने लायक नही। इसकी कदर तो कद्रदान ही कर सकता है। तू मिट्टी ढोकर इसका सत्यानाश मत कर।

जसमा—महाराज! विना मेहनत किये बैठे-बैठे खाने से कई प्रकार के रोग हो जाते हैं। मुझे भी कोई रोग हो जाए और वैद्य लोग फीस मागे तो हम मजदूर कहां से लाए? हम मज-दूरो के पास धन कहा है?

हिस्टीरिया का रोग, जिसे सयानी औरतें भेडा-चेडा कहती हैं और जिसके हो जाने पर अक्सर देवी-देवताओ और पीरो के स्थान पर ले जाना पडता है, वह प्राय परिश्रम न करते हुए बैठे-बैठे खाने से ही होता है। यह रोग जितना गरीब स्त्रियो को नही होता उतना धनवान् स्त्रियो को होता है। जहा परिश्रम नही किया जाता वहा यह रोग जल्दी लागू होता है। फिर वैद्यो की हाजरी और देवी-देवताओ की मिन्नतें करनी पडती है। महाराज, मैं ऐसा नहीं करना चाहती। मेरा काम अच्छी तरह चल रहा है। परिश्रम करने से मेरा शरीर स्वस्थ रहता है। आप फिक्र न करें।

महाराज—जसमा! मैं फिर कहता हू कि तू जगल मे बसने योग्य नही है। देख तो, यह तेरा कोमल शरीर क्या जगल मे भटकने योग्य है? तू मेरे शहर मे चल! 'पाटन' इस समय स्वर्ग बन रहा है और मैं तुझे रहने के लिए अत्यन्त सुन्दर जगह दिलाऊगा।

जसमा समझ गई कि राजा ने पहला दाव न चलने से

दूसरा पासा फेंका है और मुझे लोभ दिया जा रहा है।

जसमा— महाराज, कहा तो यह आनन्ददायक जंगल और कहां गन्दा नगर ? जिस प्रकार गर्मी के मारे कीडे-मकोडे भूमि मे से निकल कर रेंगते हैं, उसी प्रकार शहरो के तग मार्ग मे मनुष्य फिरते हैं। वहा अच्छी तरह चलने के लिए मार्ग भी तो पूरा नहीं मिलता। जगल मे तो सदा ही मगल है। ऐसी शुद्ध और स्वच्छ वायु और विस्तृत स्थान शहरो मे कहां है ?

महाराज – जसमा ! तेरी बुद्धि बिगडी हुई है। गवारो को गवारपना ही अच्छा लगता है। इसी से तू ऐसी बातें कर रही है। जगल की रहने वाली तू शहर का मजा क्या समझे ! चल, मैं तुझे बडे आराम से महल मे रखूगा। महाराज ने डाट-डपट कर फिर लालच दिखाया।

जसमा—चाहे आप मेरी ढिठाई समझें या गवारपन, सच्ची बात तो यह है कि जैसा आपको नगर प्रिय है, वैसा ही मुझे जगल प्रिय है। शहर के आदमी जैसे मन के मैले होते हैं वैसे जगल के नही। बडे-बडे शहर आज पाप के किले बने हैं। चोर जुआरी, व्यभिचारी, नशेबाज आदि-आदि सभी तरह के मनुष्य शहरों मे होते हैं। देहातो मे ये बातें अधिकाश नही होती हैं। यहां किसी का सोने-चांदी का जेवर भी पडा रह जाय तो देहाती लोग उसके मालिक को ढूढकर उसे पहुचाने की चेष्टा करेंगे। यह बात शहरो मे नही है। शहरो के लोग तो छोटी से छोटी वस्तु के लिये भी परस्पर हत्या करने से नहीं चूकते हैं।

महाराज—तेरा पति कहा है, जिस पर तू इतना गर्व कर रही है ? जरा मैं भी तो देखू, वह कैसा है ?

जसमा—वह जो कमर कस कर काम कर रहा है और जिसके सिर पर फूल का गुच्छा है ।

महाराज—क्या तालाब मे ही है ?

'हा' कहकर जसमा झूले की तरफ गई और बच्चे को झूला देकर अपने काम मे लगने के लिए चली । मगर पीछे से महाराज ने आचल पकड रखा था, जिसे देखकर जसमा बोली—महाराज, यह क्या ?

महाराज—क्या वही तेरा पति है ? कहा तू और कहा वह ? कौए के गले मे रत्नो की माला ?' उस मिट्टी खोदने वाले के पीछे तू इतनी इतरा रही है और मेरा निरादर कर रही है। हसनी कौए के पास नही सोती । इसलिये हसनी को कौए के पास छोडना ठीक नही । तू महल मे चल । महल मे ही तू शोभा देगी । देख ! तेरे पति को तेरे ऊपर विश्वास नही है । वह तेरी तरफ टेढा-टेढ़ा देख रहा है । उसका देखने का ढग ही बतला रहा है कि तुझ पर न तो उसका विश्वास ही है और न प्रेम ही । ऐसा आदमी तेरी कदर क्या जाने ? ऐसे अविश्वासी पति के पास रहना क्या तुझे उचित है ?

जसमा—महाराज ! सच्चे को ससार मे जरा भी भय नही है । मेरे पति का मेरे प्रति पूर्ण विश्वास है । मैं अपने पति के सिवाय अन्यान्य पुरुषो को भाई मानती हू । यह अविश्वास तो आप लोगो मे होता है । मेरे मन मे यदि पति के प्रति अविश्वास हो तो पति को मेरे प्रति अविश्वास हो । मेरा पति मुझे नही देख रहा है पर आपकी बिगडी हुई दृष्टि को देख रहा है । महाराज, हम तो मजदूर हैं । मिट्टी उठाये बिना काम कैसे चलेगा ? पर

आपके महल में रानियो की क्या कमी है ?

महाराज—पर जसमा ! एक वार तू महल देख तो आ।

जसमा—महाराज, पाटन के महल मे रहने की अपेक्षा मैं अपने झोपडे को किसी तरह कम नहीं समझती। राजा की रानी होने की अपेक्षा मैं एक श्रोड की स्त्री कहलाना अधिक पसन्द करती हू। आप सरीखे का क्या भरोसा ? आज आपने मेरे साथ ऐसी बात की। कल आपकी नजर दूसरी तरफ झुकेगी। यही गति रही तो पाटन के नरेश पर कौन विश्वास करेगा ? इसलिये आप यहां से पधारिये और महलो मे रहकर अपनी रानियो को ही अपने महल के सुख और वैभव दीजिये। गुजरात के अन्दर ऐसे भी राजा होते हैं, यह आज मालूम हुआ। और जसमा तेजी से चल दी।

महाराज क्रोधोन्मत्त हो उठे। इसके बाद की कथा तो बहुत लम्बी है। राजा ने श्रोड लोगों पर अनेकों अत्याचार किये। जसमा को कैद किया। फिर अनेको कष्ट सहन करने के वाद एक दिन मौका-पाकर श्रोड लोगों का सरदार और उसकी पत्नी जसमा कुछ लोगो को साथ लेकर भाग निकले। भागने की रातो-रात कोशिश की मगर अनिष्ट तो सिर पर मडरा ही रहा था। अत विपत्ति ने पीछा नही छोडा। राजा को पता लग गया और वह कुछ सशस्त्र सैनिको को साथ लेकर इन लोगो के पीछे भागा। कुछ ही दूर जाने पर ये लोग पकड लिये गए।

वीर श्रोडो ने व्यूह रच लिया। बीच मे जसमा थी। राजा के सैनिक शस्त्रों से सुसज्जित थे। श्रोडो के पास भी शस्त्र थे पर नाम मात्र के। एक आर्य महिला की प्रतिष्ठा के खातिर उन्होने अपने मरने का भय और जीवन की आशा छोड़ दी थी।

महाराज सिद्धराज ने नजदीक जाकर कहा—तुम लोग मरने को तैयार तो हुए हो पर जीना चाहते हो तो जसमा को मुझे सौंप दो और सब चले जाओ। किसी का बाल भी बाका नहीं होगा। पर सब ओडो ने महाराज का तिरस्कार किया।

सिद्धराज आग-बबूला हो गए और आक्रमण करने का हुक्म दिया। टपाटप नि.शस्त्र ओड लोग धरती चाटने लगे। कितने ही मरे और कुछ भाग निकले और अन्त मे ओडों का नायक टीकम, जसमा का प्रिय पति भी मारा गया। जीवित रही केवल जसमा।

सिद्धराज ने हुक्म दिया और सैनिको ने शस्त्र गिरा दिये। रक्त-रजित भूमि पर जसमा निर्भीक खडी थी। महाराज घोडे से उतर कर जसमा के पास पहुच गए और बोले—जसमा!

जसमा—महाराज, यह आशा छोड़ ही दीजिये। आपकी इच्छा पूरी होने वाली नही है।

राजा—जसमा, तू देख तो सही, मेरा दरबार कितना भव्य है! ये महल कैसे बने हुए हैं! कितने अच्छे बाग-बगीचे हैं! तू इन सब की स्वामिनी होगी। महाराज ने लालच दिखाया।

जसमा—महाराज, जगल के प्राकृतिक दृश्य के सामने आपके ये बाग-बगीचे सब धूल हैं। जिस तरह सूर्य के सामने तारे काति-हीन हो जाते हैं, उसी तरह प्राकृतिक जगल के सामने आपके बगीचे कुछ नही। जो जगल मे नही रह सकता, वह भले ही बाग मे रहे। मुझे तो इन बागो और महलो की जरूरत नही है।

महाराज—जसमा! तुझ मे सोचने, विचारने व अपना लाभालाभ देखने की शक्ति नही है। इन महलो मे तुझे मृदग के

मीठे सुरीले स्वर और गायन की मधुर तान सुनने को मिलेगी।

जसमा—महाराज! आपके गायन और बाजो में विष भरा है। मुझे ऐसा स्वर अच्छा नहीं लगता। मेरा मन तो जगल मे रहने वाले मोर, पपीहे और कोयल की आवाजो से ही प्रसन्न रहता है। मेरे कान तो इन्हीं की टेर सुनने को व्याकुल रहते हैं।

महाराज—जसमा, यहा तू रूखी-सूखी रोटी खाकर शरीर का सत्यानाश करती रही है। मेरे महलो मे चलकर देख, वहां तेरे लिये अनेक तरह के मेवा-मिष्टान्न तैयार हैं, जिनसे तेरा शरीर चमक उठेगा।

जसमा—महाराज! आपके महल का आराम तो आपकी रानियों को ही मुबारिक हो। मैंने तो घाट खा रखी है। मेरे पेट मे तो पकवान पच नहीं सकते। मेरे लिये तो राब व दलिया ही अच्छे हैं। महाराज! आप तो पिता तुल्य हैं, प्रजा के रक्षक हैं। गुर्जर सम्राट् को ऐसा करना शोभा देता है?

महाराज—जसमा, यह सुनने का मुझे अवकाश नही। यह तो मैंने बहुत सुन रखा है। यदि तू हा कहती है तो मैं आनन्द से तुझे महल मे रखने को तैयार हू, और अगर इन्कार करेगी तो मैं वापिस लौटने वाला नही हू, तुझे जबर्दस्ती चलना पडेगा।

जसमा—अपना बल आजमा लीजिये। मैं भी देखती हू कि आप किस तरह जबर्दस्ती ले चलते हैं। जसमा जोशपूर्वक बोली—महाराज! कही जाकर पाटन की पटरानी तो दूसरी ढूंढ़ो।

महाराज—जसमा, तुझे खबर है कि तू नि शस्त्र है।

जसमा—कोई परवाह नही।

सिद्धराज चिढ गए और सैनिको की तरफ मुंह कर बोले-तुम लोग दूर चले जाओ। सैनिको ने आज्ञा का पालन किया। सिद्धराज बिलकुल जसमा के पास आए और बोले, क्यो अभी और चमत्कार देखना है ?

जसमा—महाराज, दूर रहना।

महाराज—क्यो ?

जसमा—मैं पाटन चलने को तैयार हू। जसमा ने युक्ति का प्रयोग किया।

सिद्धराज आश्चर्य-मुग्ध हो गया और कहने लगा—पहले क्यो नहीं समझी ?

जसमा अनसुनी करती हुई बोली—परन्तु मुझे पाटन मे ले जाकर करोगे क्या ?

सिद्धराज - गुर्जर देश की महारानी बनाऊ गा।

जसमा—महारानी ? महारानी तो बनाना अपनी रानी को, मैं महारानी बनकर क्या करूगी ? जसमा ने अपनी आखो को स्थिर करते हुए कहा और साथ ही महाराज को असावधान देखकर छलाग मार कर महाराजा के हाथ से कटार छुडाने के लिये हाथ मारा। महाराज जसमा का हाथ अलग करते हैं तब तक तो कटार जसमा के हाथ मे पहुच चुकी थी। वह गरजकर बोली—महाराज ! चौंकना मत, मैं अभी तुम्हारे सैनिको के देखते-देखते तुम्हारा खून पी सकती हू और तुम्हारे किये का बदला ले सकती हू परन्तु मैं ऐसा करना नही चाहती। मैं भले ही विधवा हुई पर गुर्जरभूमि को विधवा नही बनाना चाहती। यह कहने के साथ

ही जसमा कटार उठाती हुई बोली—लो ! जिस रूप के कारण तुमने मेरा परिवार नष्ट किया है, उसका खोखा सम्हालो और जसमा ने कटार हृदय में भोक ली।

वीरागना सती जसमा ने और कोई उपाय न देखकर वीरता का परिचय देते हुए अपना बलिदान देकर ससार के सामने स्त्रीधम का उच्च आदर्श स्थापित किया है।

जसमा का जीवन तो पवित्र था ही परन्तु उसमे इन्द्रिय-सयम और मनोवल भी उच्च कोटि का था। महाराज ने उसे लुभाने के लिए अनेको प्रयत्न किये। खान-पान, वस्त्राभूषण गान-तान, महलादि के अनेको प्रलोभन दिये परन्तु पतिव्रता इन सब चीजो को अपने जीवन को पवित्र बनाए रखने में विघ्न-स्वरूप समझती है, यह जसमा ने अच्छी तरह बता दिया।

इसके विपरीत आज की अनेक नारिया उत्तम-उत्तम भोजन, उत्तम वस्त्राभूषण, उत्तम रहन-सहन के पीछे बावली होकर मौज-शौक, ऐश-आराम को ही सब कुछ समझकर अपने धर्म-कर्म को भूल जाती हैं और अपनी जाति, समाज व देश को कलकित करने की कोशिश करती हैं। उनके लिए जसमा का चरित्र एक पाठ है, एक उज्ज्वल उदाहरण है। जसमा ने बता दिया है कि छोटी से छोटी जाति मे भी नारी सती, पतिव्रता और वीरागना हो सकती है और जब कि छोटी-छोटी जाति मे भी ऐसे नारीरत्न होते हैं तो बड़े-बडे घराने अत्यन्त ऊचे कहलाने वाले कुल—खानदान हैं, उनमे प्रत्येक नारी को कैसा होना चाहिए, यह स्पष्ट है।

परन्तु पहले के समय की अपेक्षा भी हमारा आज का जीवन अत्यन्त दूषित हो गया है। उस पर भी शहरो का वातावरण तो

गन्दा है ही पर गाओ मे भी इसका असर होना शुरु हो गया है। पहले जहा किसी गाव के एक घर की लडकी को समस्त गाव वाले अपनी बेटी मानते थे और बहू को अपनी बहू, वहा आज एक ही घर मे भी एक-दूसरे के सम्बन्ध को पवित्र बनाए रखना कठिन हो गया है। फिर भी आज भी सीता, अजना, सावित्री-सरीखी नारिया मिल सकती हैं पर राम, पवन व सत्यवान् जैसो का तो कही दर्शन भी नही हो सकता।

पुरुष जाति मे स्वार्थ की भावना पूर्ण रूप से घर कर गई है। आज का प्रत्येक पुरुष तो अपनी पत्नी को पूर्ण पतिव्रता देखना चाहता है पर अपने लिए पत्नीव्रत का नाम आते ही नाक भौं चढ़ाता है। पत्नी को श्मशान मे फूक कर आ भी नही पाते और दूसरी शादी करने के लिए उतावले हो उठते हैं। यह स्वार्थ-वृत्ति नही तो और क्या है? प्राचीन समय मे रामचन्द्र जी ने सीता के अभाव मे किसी तरह भी दूसरी पत्नी न लाकर अश्वमेघ यज्ञ मे सीता की स्वर्णमूर्ति बनवा कर ही सीता की पूर्ति की थी, क्योकि रामचन्द्रजी एक पत्नीव्रत के व्रती थे। उसी प्रकार यदि आज भी पतिव्रत की ही तरह पत्नीव्रत को भी उच्च स्थान नही दिया जाता तो स्त्री-पुरुषो का जीवन बहुत आदर्शमय नही हो सकता।

आजकल तो स्त्रियो की समस्या को लेकर भारी आदोलन खडा हो रहा है। स्त्री-सुधार के लिये गर्मागर्म व्याख्यान दिये जा रहे हैं। बडे-बडे अखबारो और पुस्तको मे बहस छिड रही है। स्त्रियो को बराबरी के अधिकार दिलाने को उतावले हो रहे हैं। पर पुरुष यह नही देखते कि हम भावनाओ के वेग मे बहकर गलत रास्ते पर जा रहे हैं। स्त्रिया अपने उद्धार-आदोलन से फायदा उठाकर पुरुषो के जुल्मो और अत्याचारो को गिन-गिन कर नारी

और पुरुष के बीच के अन्तर को और बढ़ाए चली जा रही हैं।

यह अनुचित है। स्त्रियो को गलत-मार्ग पर चलाने की अपेक्षा उचित यही है कि पुरुष अपने सच्चे कर्त्तव्य और आदर्श को ख्याल मे रखकर राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर आदि को अपने जीवन मे पथप्रदर्शक समझें और स्त्रिया सीता, सावित्री, अ जना, दम-यन्ती, मीरा आदि को आदर्श बनावें तथा दोनों एक-दूसरे के प्रति मधुरता, सरलता, सहानुभूति भरा व्यवहार रखकर एक-दूसरे के जीवन को ऊ चा उठाए तथा एक-दूसरे के दोषो को निकाल कर गिनाने की अपेक्षा एक-दूसरे की कठिनाइयों, व एक-दूसरे के सुख-दु ख को समझने की चेष्टा करें।

आजकल का समय कुछ विचित्र-सा ही है। अपने कौटुम्बिक जीवन को मधुर बनाने की तरफ तो किसी का ध्यान नहीं है पर जाति, समाज और देश के उत्थान के लिये सभी प्रयत्न कर रहे हैं। यह तो वही हुआ, जैसे जड को न सीचकर पत्तियो में पानी देना। इसका नाम उन्नति नही है। समाज का उत्थान इस प्रकार नही हो सकता। कारण कि जिस नीव पर हम समाजोद्धार के भव्य महल का सुनहरा स्वप्न देख रहे हैं, वह नीव खराब है। समाज की नीव कुटुम्ब है। अनेको समाज-सेवको, नेताओ के घरेलू जीवन अत्यन्त दु ख-पूर्ण होते हैं। पति-पत्नी मे जैसा परस्पर सम्बन्ध होना चाहिए वैसा कभी नही रहता और यही वजह है कि स्त्री का सहधर्मिणी नाम बिलकुल उलटा बनता जा रहा है। पुरुष जमाने भर के कामो मे इस प्रकार डूबे रहते हैं कि जरा भी वे घर का ख्याल नही रखते और स्त्रिया पति का प्रेम न पाकर, बल्कि समानता का खिताब पाकर, पुरुषो के विरुद्ध शिकायतें दर्ज किया करती हैं।

समाज की उन्नति की जड सुखमय, शान्त और सतोपयुक्त गृह ही है और यह तभी हो सकता है जब कि पति-पत्नी एक-दूसरे के अन्दर खो जाने की कोशिश करें। और एक ही नही हर घर में इसी प्रकार सुखमय दाम्पत्य जीवन विताने की कोशिश की जाय। एक के ही किये यह नही हो सकता। कहते हैं—

एक वार अकबर ने बावडी खुदवाई। पानी उसमे बिलकुल नहीं था। बीरबल ने उसे सलाह दी कि शहर भर से कह दिया जाय कि प्रत्येक व्यक्ति रात को इस बावड़ी मे एक-एक घडा दूध डाल जाय। ऐसा ही किया गया। शहर भर मे मुनादी करवा दी गई कि रात को हर एक को इसमे एक घडा दूध छोड़ देना पड़ेगा। रात होने पर प्रत्येक ने सोचा कि सब तो दूध डालेंगे ही, यदि मैं चुपके से एक घडा पानी डाल आऊ तो उतने सारे दूध मे क्या मालूम पडेगा ? सब ने इसी प्रकार किया। सुबह देखा गया तो बावडी पानी से भरी थी। दूध का तो नाम भी नही था।

इसी प्रकार पति और पत्नी दोनो के सहयोग से घर का सुधार और सभी घरो से समाज का और समाज से देश का सुधार होना निश्चित है। पर समाज के सुधार से यह तात्पर्य हरगिज नहीं है कि स्त्रिया पढ़ लिखकर एकदम ही आप-टूडेट हो जावें, पुरुषो की गलतिया ढूढ-ढूढ कर अपनी गलतियो को सुधारने की अपेक्षा बदला लेने की भावना लिये हुए बराबरी का दावा करती जाए। नारी घर की देवी है। पुराणादि मे पति को देवता बताया गया है, पर इसका यह मतलब नही कि पत्नी देवी नहीं है। हमारे गृहो मे तो हर बात मे पत्नी का महत्त्व और जिम्मेवारी पति से भी अधिक है क्योंकि स्त्री ने ही पुरुष को जन्म दिया है। अत. यह विचार करना कि पुरुष जैसा करते हैं, हम भी वहीं क्यो न

करें, अनुचित है। यह कोई वजह नहीं कि पुरुष गिर गए हैं तो नारियो को भी गिरते ही जाना चाहिये। नही, बल्कि यह सोचना चाहिए कि स्त्री ही समाज का निर्माण करने वाली है क्योकि वह पुरुष का निर्माण करती है। अत एक पुरुष के ऊचे उठने अथवा गिरने से समाज मे जितनी खराबी नहीं आती, उतनी एक स्त्री के गिरने पर आती है। इसलिए आज, जबकि पुरुषों ने अपना पुरातन तेज, गौरव खो दिया है, तब तो नारी का अनिवार्य फर्ज है कि वह अपने जीवन को पवित्र रखते हुए अपने त्याग, सेवा कष्टसहिष्णुता आदि से सच्चे नारीत्व का, सच्चे दाम्पत्य का आदर्श उपस्थित कर अपना, अपने पति का, व आगे चलकर अपनी सन्तान का जीवन उज्ज्वल बनाए।

हिन्दू नारी का सारा जीवन ही कष्टसहिष्णुता से भरा हुआ, त्यागमय और सेवामय होता है। दाम्पत्य जीवन से सेवा बडी ऊची और कल्याणकारी वस्तु है। इससे चाहे दूसरो को पूर्ण खुशी न भी हो पर अपना मन स्वय ही बडा पवित्र और निर्मल हो जाता है। दाम्पत्य जीवन को मधुर और सुखी बनाने के लिये अथक परिश्रम और सेवा की जरूरत पडती है। उसके बिना नारी का काम नही चल सकता। और वह भी सिर्फ पति की ही नहीं अपितु अपने कुटुम्ब की सेवा का भी जबर्दस्त बोझ अकेली नारी के कन्धो पर रहता है। पति के सारे कुटुम्ब से कटी-कटी रहने वाली पत्नी भले वही पति की प्रसन्नता के लिए प्रयत्न करती रहे लेकिन उसका वह परिश्रम पति के आनन्द को बढा नही सकता। धीरे-धीरे वह पत्नी के प्रति उदासीन होता जायगा और सुखमय दाम्पत्य मे भी कलह का अकुर अपनी जड जमाने मे समर्थ हो जायगा।

अनेको स्त्रिया आजकल इतनी ईर्ष्यालु होती हैं कि अगर घर मे उनका पति कमाऊ होता है तो सास-ससुर देवर-जेठ आदि सभी को दिन-रात व्यग-बाणों से छेदा करती हैं, जिसका फल कभी-कभी तो अत्यन्त ही दु खदायी हो जाता है और दाम्पत्य सुख को एकदम नष्ट कर देता है । इसलिये जरूरी है कि हर पत्नी को सदा यह ध्यान मे रखना चाहिये कि सास ने मेरे पति के लिये अनेको कष्ट सहे हैं, उसे जन्म दिया है । अत. पति जैसा भी है, जो कुछ भी कमाता है, उसमे सास का सर्व-प्रथम और बडा भारी हिस्सा है । क्योकि पति को अच्छा या बुरा बनाने का श्रेय भी तो सास को ही है, इसलिये प्रत्येक पत्नी को पति के साथ ही सास ससुर एव समस्त कुटुम्बी-जनो को सुख पहुचाने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये, भले ही इसमे स्वयं को कुछ कष्ट हो पर उसे अपने कष्ट की परवाह न करके भी और सबको ज्यादा से ज्यादा सुख मिले, मन मे यही भावना हमेशा रखना व इसके लिये प्रयत्न करना चाहिये। दाम्पत्य सुख की यह सबसे बडी और मजबूत कु जी है ।

दाम्पत्य सुख मे सबसे मुख्य बात यही है कि पति का पत्नी मे गहरा स्नेह व पत्नी की पति मे अत्यन्त गहरी श्रद्धा हो । ऐसा अगर नही होगा तो दम्पती को गृहस्थी मे कभी पूर्ण सुख का अनुभव नही हो सकता क्योकि स्त्री के मन के भाव ही उसे सुखमय या दु खमय बना सकते हैं । नारी जाति अत्यन्त कोमल और भोली होती है । पति का थोडा-सा प्रेम पाने पर ही बहुत अधिक सुख का अनुभव करती है एवं थोडा-सा रूखापन पाने पर बहुत अधिक दु ख का । हालाकि वह यह कहती किसी से नही, मूक रहकर ही सब कुछ सहन करती है, पर फिर भी मन पर तो सब भावनाओ का असर होता है । इसलिये यह जरूरी है कि प्रत्येक बहिन को इस बात का ख्याल रखना चाहिये कि मन के बाधे हुए हवाई

किले सभी नहीं बने रहते । अत मन में कल्पना किये हुए पति, घरद्वार सभी कुछ वैसे ही न मिलने पर भी कभी उद्विग्न और निराश न हो ।

दु ख को बहुत कुछ घटाना-बढाना तो मनोभाव पर भी निर्भर है । अत जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, मनोनुकूल वातावरण न मिलने पर भी जो कुछ मिले, उसी के सहारे जीवन निर्माण करने की कोशिश करनी चाहिये । सुख की सबसे बडी कु जी सतोष है । सतोष का फल सदा मीठा होता है यह सत्य है कि अधिक सुख प्राप्त करने का यत्न सभी स्त्रिया करती हैं पर अधिक सुख न मिलने पर भी जो कुछ मिला है, उस पर सतोष करने वाली स्त्री ही सुखी हो सकती है । किसी भी हालत मे हो पर पति के सुख मे सुख मानने वाली व हर अवस्था मे पति का कल्याण चाहने वाली स्त्री ही सच्चे दाम्पत्य सुख का अनुभव कर सकती है व करा सकती है ।

प्राचीन काल का दाम्पत्य सम्बन्ध कैसा आदर्श था । पत्नी अपने आपको पति मे विलीन कर देती थी और पति उसे अपनी अर्धांगना, अपनी शक्ति, अपनी सखी और अपनी हृदय-स्वामिनी समझता था । एक पति था, दूसरी पत्नी थी, पुरुष स्वामी और स्त्री स्वामिनी थी । एक का दूसरे के प्रति समर्पण का भाव था । वहा अधिकारो की माग नहीं थी, सिर्फ समर्पण था । जहा दो हृदय मिलकर एक हो जाते हैं, वहा एक को हक मागने का और दूसरे को हक देने का प्रश्न ही उपस्थित नही होता। ऐसा आदर्श दाम्पत्य सम्बन्ध किसी समय भारतवर्ष मे था । आज विदेशों के अनु-करण पर जहा दाम्पत्य सम्बन्ध नाम मात्र का है—भारत मे भी विकृति आ गई है । नतीजा यह हुआ कि पति-पत्नी का अद्वैत-

भाव नष्ट होता जा रहा है और राजकीय कानूनो के सहारे समानाधिकार की स्थापना की जा रही है। आज की पढ़ी-लिखी स्त्री कहती है—

मै अगरेजी पढ़ गई सैंया ।
रोटी नहीं पकाऊंगी ।।

शिक्षा का परिणाम यह निकला है। पहले की स्त्रियां प्राय सब काम अपने हाथो से करती थीं। आजकल सभी काम नोकरो द्वारा कराये जाते हैं। परिणाम यह हुआ कि डाक्टरो की बाढ आ गई और स्त्रियो को 'डाकिन-भूत लगने लगे। स्त्रियो के निकम्मे रहने के कारण हिस्टीरिया आदि रोग होते हैं और डाकिन भूत के नाम पर लोग ठगाई करते हैं। अगर स्त्री को सही मार्ग पर चलना है तो इन सब बुराइयो को छोडना पडेगा।

कई एक भोली बहिनें हाथ से पीसने मे पाप लगना समझती हैं और दूसरे से पिसवा लेने मे पाप से बच जाने की कल्पना करती हैं। पीसने मे आरम्भ तो होता ही है लेकिन अपने हाथ से यतना और विवेक से काम किया जाय तो बहुत से निरर्थक पापो से बचाव भी हो सकता है। शक्ति होते हुए दूसरे से काम कराना, एक प्रकार की कायरता है और कहना चाहिए कि अपनी शक्ति का विनाश करना है। इस प्रकार का परावलम्बी जीवन बिताना अपनी शक्ति की घोर अवहेलना करना है —

पग धरिता संतोष ने बरया ने कडा ।
हिया कंठ मे खरा हार नोसर्या धरा ।।
लोक बोई ने सुधार वारा चूड़ला करा ।

**मात राखणो बडां रो सिर बोर गूंथ ला ॥बेना०॥**

बुद्धिमती स्त्रियां कहती हैं—जिस प्रकार सीता ने पैर के आभूषण उतार दिये हैं, उसी प्रकार अगर हम भी दिखावे के लिये पैर के गहने उतार दें तो इससे कोई लाभ नही होगा। पैर के आभूषण पैर मे भले ही पडे रहे, मगर एक शिक्षा याद रखनी चाहिए। अगर सीता मे धैर्य और संतोष न होता तो वह वन मे जाने को तैयार न होती। सीता मे कितना धैर्य और कितना संतोष है कि वह वन की विपदाओं की अवगणना करके और राजकीय वैभव को ठुकरा करके पति के पीछे-पीछे चली जा रही है। हमे सीता के चरित्र से इस धैर्य और संतोष की शिक्षा लेनी है। ये गुण न हुए तो आभूषणों को धिक्कार है।

जहा ज्यादा गहने हैं, वहा धैर्य की और संतोष की उतनी ही कमी है। वन-वासिनी भीलनी पीतल के गहने पहनती है और रूखा-सूखा भोजन करती है, फिर भी उसके चेहरे पर जैसी प्रसन्नता और स्वस्थता दिखाई देगी, बडे घर की महिलाओ मे वह शायद ही कहीं दृष्टिगोचर हो। भीलनी जिस दिन बालक को जन्म देती है, उसी दिन उसे झोंपडी मे रखकर लकड़ी बेचने चल देती है। यह सब किसका प्रताप है? संतोष और धैर्य की जिन्दगी साक्षात् वरदान है। इसी से दाम्पत्य-सम्बन्ध मधुर बनता है।

❀ ❀ ❀

आपने पत्नी का पाणिग्रहण धर्मपालन के लिए किया है। इसी प्रकार स्त्री ने भी किया है। जो नर या नारी इसी उद्देश्य को भूलकर खान-पान और भोग विलास मे ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझते हैं, वे धर्म के पति-पत्नी नहीं वरन् पाप के पति-पत्नी हैं।

आज राग के वश होकर पति-पत्नी न जाने कैसी-कैसी अनीति का पोषण कर रहे हैं। पर प्राचीन साहित्य देखने से स्पष्ट विदित होता है कि उस समय पति-पत्नी अलग-अलग कमरो मे सोते थे—एक ही जगह नही सोते थे। पर आज की स्थिति कितनी दयनीय है! आज अलग-अलग कमरों में सोना तो दूर रहा अलग-अलग बिस्तर पर भी बहुत कम पति-पत्नी सोते हैं। इस कारण विषय-वासना को कितना वेग मिलता है, यह सक्षेप मे नहीं बताया जा सकता। अग्नि पर घी डालने से वह बिना पिघले नही रहता, एक ही शय्या पर शयन करने से अनेक प्रकार की बुराइया उत्पन्न होती हैं। वह बुराइयां इतनी घातक होती हैं कि उनसे न केवल धार्मिक जीवन बिगड़ता है वरन् व्यावहारिक जीवन भी निकम्मा बन जाता है।

※ ※

लग्न के समय वर-वधू अग्नि की प्रदक्षिणा करते हैं। पति के साथ अग्नि की प्रदक्षिणा करने के पश्चात् एक सच्ची आर्य महिला अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देती है परन्तु की हुई प्रतिज्ञा से विमुख नहीं होती।

पुरुष भी पत्नी के साथ अग्नि की प्रदक्षिणा करते हैं परन्तु जो कर्त्तव्य स्त्री का माना जाता है, वही क्या पुरुष का भी समझा जाता है?

जैसे सदाचारिणी स्त्री पर-पुरुष को पिता एव भाई के समान मानती है, उसी प्रकार सदाचारशील पुरुष वे ही हैं जो पर-स्त्री को माता-बहिन की दृष्टि से देखते हैं। 'पर-ती लखि जे धरती निरखें, धनि हैं धनि हैं धनि हैं नर ते।'

पति–पत्नी सम्बन्ध की विडम्बना देखकर किसका हृदय आहत नही होगा ? जिन्होने पति और पत्नी बनने का उत्तरदायित्व स्वेच्छा से अपने सिर लिया है, वह भी पति–पत्नी के कर्त्तव्य को न समझें, यह कितने खेद की बात है। पति का कर्त्तव्य पत्नी को स्वादिष्ट भोजन देना, रग–बिरगे कपडे देकर तितली के समान बना देना या मूल्यवान् आभूषणो से गुडिया के समान सजा देना नहीं है। इसी प्रकार पत्नी का कर्त्तव्य पति को सुस्वादु भोजन बनाकर परोस देने मे समाप्त नही होता। वासना की पूर्ति का साधन बनना भी स्त्री का कर्त्तव्य नही है। ऐसे कार्यो के लिए ही दाम्पत्य सम्बन्ध नहीं है। दम्पती का सम्बन्ध एक–दूसरे को सहायता देकर आत्म–कल्याण की साधना मे समर्थ बनने के लिए है। जहां इस उद्देश्य की पूर्ति होती है, वहीं सात्विक दाम्पत्य समझा जा सकता है।

था। इससे सिद्ध होता है कि अप्रत्यक्ष रूप से भी माता-पिता के मनोभावो से ही बच्चे के मनोभावो का निर्माण और विकास होता है।

हमारे इतिहास मे ऐसे सैकड़ो उदाहरण अंकित हैं, जिनमे यह बताया है कि अनेक महान् पुरुषो का जीवन-निर्माण उनकी माताओ के द्वारा ही किया गया है। रानी कौशल्या के हृदय की उदारता, वत्सलता, दयालुता रामचन्द्र जी के जीवन में भरी गई। जीजाबाई, जो हिन्दू जाति के गौरव व प्रतिष्ठा के लिये मर-मिटने को निरन्तर तत्पर रहती थीं, अपने बेटे शिवाजी के जीवननिर्माण मे साधन हुई। उन्होने बचपन से ही शिवाजी को रामायण महाभारत आदि की कथाए सुना-सुना कर उनके शिशु-हृदय मे ओज और वीरत्व का बिगुल फूकना शुरु कर दिया था तथा देश और जाति की रक्षा प्राण देकर भी करने की भावना कूट-कूट कर भर दी थी। उसी वीर मा की शिक्षा का फल था कि उसके वीर बेटे शिवा ने हिन्दू साम्राज्य की नीव रखकर हिन्दू जाति का उद्धार किया।

वीर और स्वाभिमानिनी शकुन्तला का पुत्र भरत अपनी मा के हाथो शिक्षा पाकर निशक शेर के मुंह के दात गिनने का शौक करने लगा।

इसी प्रकार महात्मा बुद्ध की भी कथा है। जब वे अपनी मा के गर्भ मे थे, उस समय उनकी मा को बहुत ही वैराग्य उत्पन्न हुआ। ससार के दुःख, दारिद्र्य, रोगादि को देखकर उनके मन में निरन्तर यह भावना रही कि मेरा पुत्र बडा होकर इस जगत् का दुःख अवश्य दूर करे। इन्हीं भावनाओ मे बुद्ध का जीवननिर्माण हुआ और वे लोक भर मे कल्याणकारी सिद्ध हुए।

इसी प्रकार हमारे देश मे ही नहीं, पाश्चात्य देशों में भी अनेक महापुरुषो ने माताम्रो से ही सबक सीखा है। ईसाई धर्म के प्रणेता ईसा को लीजिये। उनके पूज्य बनने का श्रेय उनकी माता मरियम को ही पूर्ण रूप से है। वह निरन्तर बालक ईसा को धार्मिक शिक्षा दिया करती थी और धार्मिक पुस्तकें पढ-पढ़ कर उनकी प्रतिभा का विकास किया करती थी। इन बातों से ही उनके चरित्र मे महानता आई और उनकी आत्मा का पौरुष सतत बढ़ता ही गया।

नैपोलियन बोनापार्ट ने भी अपनी माता के अत्यन्त कठोर शासन मे रहकर अपने जीवन का निर्माण किया। अपनी मां के लिये वे स्वय ही कह गए हैं कि —"मेरी मा एक साथ ही कोमल और कठोर थी। सभी सतानें उनके लिये समान थीं। कोई बुरा काम करके हम बाद मे कभी उनसे क्षमा नही पा सकते थे। हमारे ऊपर मा की तीक्ष्ण दृष्टि रहा करती थी। नीचता की वे अत्यन्त अवज्ञा करती थी। उनका मन उदार और चरित्र उन्नत था। मिथ्या से उन्हे आन्तरिक घृणा थी। औद्धत्य देखकर उनके नेत्र कठोर हो जाते थे। हमारा एक भी दोष उनकी दृष्टि से छिपना सम्भव नहीं था।" इस प्रकार उनकी मा ने अपने पुत्र का चरित्र निर्माण किया और सघर्षों मे कष्ट सहन करने की शक्ति दी।

जार्ज वाशिंगटन ने कहा है—'मेरी विद्या, बुद्धि, धन, वैभव, पद एवं सम्मान इन सब का मूल कारण मेरी आदरणीया जननी ही है।'

मुसोलिनी लिखते हैं:—सब सतानो मे माता का मुझ पर अधिक स्नेह था। वह जितनी शात थी, उतनी ही कोमल और तेजस्विनी थी। वह केवल मेरी मां ही न थी, अध्यापिका भी थी।

मुझे सदा भय रहा करता था कि मेरी मा मुझसे अप्रसन्न न हो। वे मुझसे बडी आशा रखती थी। वे कहा करती थी कि 'यह भविष्य में कोई महान् व्यक्ति होगा। उन्होने सदा इसका ध्यान रखा कि उनकी सतान निर्भीक, साहसी, दृढ, और निश्चयशील बने'। इसी से यह साबित हुआ है कि मुसोलिनी का अपरिमित तेजभरा पौरुष उनकी माता की ही देन थी।

## २—माता का दायित्व

आजकल की स्त्रियां इस बात को भूल चली हैं। अपने बच्चे के जीवन–निर्माण मे, चरित्र विकास मे, उनका हाथ कितना महत्त्वपूर्ण है, यह वे समझने की कोशिश नही करती हैं। जन्म से ही वे बच्चे को लाड–प्यार करके बिगाड देती हैं और इस प्रकार वे बच्चो के उज्ज्वल जीवन को अन्धकारमय पथ की ओर अग्रसर करने मे सहायक होती हैं। जिन गुणो को मा शुरु से बच्चे के जीवन मे उतारना चाहती है, मा स्वय उन सबका आचरण करे, क्योकि झूठ बोलकर मा बच्चे को सत्यवादिता का पाठ नही पढ़ा सकती। स्वय क्रोध करके बच्चे को शात रहने की सीख नही दी जा सकती। तात्पर्य यह है कि उज्ज्वल चरित्र वाली माता ही बच्चे को महापुरुष बनाने मे समर्थ हो सकती है।

बच्चो के बचपन मे ही सस्कार सुधारने चाहिये। बडे होने पर तो वे अपने आप सब बातें समझने लगेंगे, मगर उनका झुकाव और उनकी प्रवृत्ति बचपन मे पडे हुए सस्कारो के ही अनुसार होगी। बचपन मे जिन बच्चो के सस्कार माता–पिता, विशेष कर माता के द्वारा नही सुधरे, उनकी दशा यह है कि वे कोई भी अच्छी बात इस कान से सुनते और उस कान से निकाल देते हैं।

इसके विपरीत, सुसस्कारी पुरुष जो अच्छी और उपयोगी बात पाते हैं, उसे ग्रहण कर लेते हैं। यह बचपन की शिक्षा का महत्त्व है।

बाल-जीवन को शिक्षित और सुसस्कृत वनाने के लिये घर ही उपयुक्त शाला है। माता-पिता ही वच्चे के सच्चे शिक्षक हैं। परन्तु माता और पिता सुशिक्षित और सुसस्कृत हों, तभी उनकी प्रजा वैसी बन सकती है। अतएव माता या पिता का पद प्राप्त करने के लिये माता-पिता को शिक्षित और सस्कारी बनना आवश्यक है।

बालक का जीवन अनुकरण से प्रारम्भ होता है। वह बोलते-चालते, खाते-पीते और कोई भी काम करते घर का और विशेषतया माता का ही अनुकरण करता है। क्या बोल-चाल,क्या व्यवहार, क्या मनोवृत्तिया और क्या अन्य प्रवृत्तिया, सब मा की ही नकल होते हैं, जिसके प्रति उसके हृदय मे स्नेह का भाव सहज उपज आता है। अतएव प्रत्येक माता को सोचना चाहिये कि अगर हम बालको को सुसस्कृत, सदाचारी, विनीत और धार्मिक बनाना चाहती हैं तो हमारे घर का वातावरण किस प्रकार होना चाहिये ?

जहां माता क्षण-क्षण मे गालिया बड-बड़ाती हो, पिता माता पर चिढ़ता रहता हो और उद्धततापूर्ण व्यवहार करता हो, वहां बालक से क्या आशा की जा सकती है ? हजार यत्न करो, बालक को डराओ, धमकाओ, मारो-पीटो, फिर भी वह सुसस्कारी या विनयी नहीं बन सकता। 'मा सौ शिक्षकों का काम देती है' यह कथन जितना सत्य है उतना ही आदरणीय और आचरणीय है।

बालक को डरा धमका-कर या मार-पीटकर अथवा ऐसे

ही किसी हिंसात्मक उपाय का अवलम्बन लेकर नही सुधारा जा सकता ।

## ३–सन्तति-सुधार का उपाय

प्राय देखा जाता है कि जब बालक मचलता है या कहा नही मानता तो सर्वप्रथम मा को उसके प्रति आवेश आ जाता है और आवेश आते ही मुख से गालियो की वर्षा आरम्भ हो जाती है, लात-घूंसे आदि से उस अनजान बालक पर मा हमले किया करती है । कभी-कभी तो इसका परिणाम इतना भयकर होता है कि आजीवन माता-पिता को पछताना पडता है । वास्तव मे यह प्रणाली बच्चो के लिये लाभ के बदले हानि उत्पन्न करती है । इससे बालक गालिया देना सीखता है, और सदा के लिये ढीठ बन जाता है । इस ढिठाई मे से और भी अनेको दुर्गुण फूट पडते हैं । इस प्रकार बालक का सारा जीवन बर्बाद हो जाता है ।

विवेकशील माता भय को प्रणाली का उपयोग नही करती । वह आवेश पर अकुश रखती है । बालक की परिस्थिति को समझने का यत्न करती है तथा उसे सुधारने के लिये घर का वातावरण सुन्दर बनाने को कोशिश करती है । ऐसा करने से माता के जीवन का विकास होता है और बालक के जीवन का भी । वह यह भली-भांति जानती है कि बालक अगर रोता है तो उसका इलाज डराना नही है, रोने के कारण को खोजकर दूर करना है । इसी प्रकार अगर बालक मे कोई दुर्गुण उत्पन्न हो गया है तो उसे वह अपनी किसी कमजोरी का फल समझती है और समझना ही चाहिये कि माता की किसी दुर्बलता के बिना बालक मे कोई भी दुर्गुण क्यो पैदा हो ? इस अवस्था मे माता के लिए उसका वास्तविक कारण

खोज निकालना और दूर करना ही इलाज है। समझदार मा ऐसे अवसर पर धैर्य से काम लेती है।

भय, डराने वाले और डरने वाले के अन्तरंग या बहिरग पर अनेक प्रकार से आघात करता है। अत यह भय हिंसा का भी रूप है। आत्मा के गुणो का घात करने वाली प्रवृत्ति करना हिंसा है। जो ऐसी प्रवृत्ति करता है वह हिंसक है, यह जैनागम का विधान है।

आजकल हर माता को सद्धर्म की उन्नत भावना की तालीम लेने की आवश्यकता है क्योकि सामाजिक जीवन मे देखा जाता है कि आज के माता-पिताओ के मन काम-वासना से ग्रसित हैं। दोनों के मन क्लेश के रग मे रगे हुए हैं और बात-बात मे वे अश्लील वाक्प्रहार और समय मिले तो ताडन-प्रहार करते भी सकोच नहीं करते। जहा यह स्थिति है, वहा भला शिक्षा और सस्कृति का सरक्षण किस प्रकार हो सकता है ?

माता का जीवन जब तक शिक्षित, सस्कृत और आदर्श न बने, तब तक सतान मे सुसस्कारो का सिचन नहीं हो सकता। अतएव अपनी सतान की भलाई के लिये माता को अपना जीवन सस्कारमय अवश्य बनाना चाहिये। प्रत्येक मा को यह न भूल जाना चाहिये कि आज का मेरा पुत्र ही भविष्य का भाग्य-विधाता है।

माता, बच्चे या बच्ची का गुड्डे-गुडिया की तरह शृंगार कर और अच्छा भोजन देकर छुट्टी नहीं पा सकती। उसे यह अच्छी तरह समझना चाहिये कि मैने जिसे जीवन दिया है, उसके जीवन का निर्माण भी मुझे ही करना है। जीवन-निर्माण का अर्थ

है—सस्कार सम्पन्न बनाना और बालक की विविध शक्तियों का विकास करना । शक्तियो का विकास हो जाने पर वह सन्मार्ग मे लगे, सत्कार्य मे उसका प्रयोग हो, दुरुपयोग न हो, यह सावधानी रखना माता का पूर्ण कर्त्तव्य है ।

स्त्रिया जग–जननी की अवतार हैं । स्त्रियों की कूंख से ही महावीर बुद्ध, राम, कृष्ण आदि उत्पन्न हुए हैं । पुरुष समाज पर स्त्री–समाज का वडा भारी उपकार है । उस उपकार को भूल जाना और उसके प्रति अत्याचार करने मे लज्जित न होना घोर कृतघ्नता है । समाज का एक अ ग स्त्री और दूसरा अ ग पुरुष है । शरीर का एक हिस्सा भी खराव होने से शरीर दुर्लब हो जाता है, उसी प्रकार समाज भी किसी हिस्से के विकारयुक्त होने से दूषित होने लग जाता है । क्या यह सम्भव है कि किसी का आधा अ ग वलिष्ठ और अ धा निर्वल हो ? जिसका आधा अ ग निर्वल होगा, उसका पूरा अ ग निर्वल होगा ।

शरीर मे मस्तिष्क का जो स्थान है, समाज मे शिक्षक का भी वही स्थान है । पर इनमे सवसे ऊ चा स्थान वच्चे के जीवन–निर्माण मे माता का है । वच्चे के प्रति मां का जो आकर्षण ममत्व है, वही वच्चे को उचित रूप से जीवन–पथ में अग्रसर होने का प्रयत्न किया करता है ।

## ४–मातृ–स्नेह की महिमा

माता का हृदय बच्चे से कभी तृप्त नही होता । माता के हृदय मे वहने वाला वात्सल्य का अखण्ड झरना कभी सूख नही सकता । वह निरन्तर प्रवाहित होता रहता है । माता का प्रेम

सदैव अतृप्त रहने के लिये है और उसकी अतृप्ति मे ही शायद जगत् की स्थिति है। जिस दिन मातृ-हृदय सन्तान-प्रेम से तृप्त हो जायगा, उस दिन जगत् मे प्रलय हो जायगा।

बच्चे के प्रति मां के हृदय मे इतना उत्कट प्रेम होता है कि मनुष्य तो खैर समझदार होता ही है, पर पशु-पक्षी का भी अपने बच्चे के प्रति ममत्व देखकर दग रह जाना पड़ता है।

सुबुक्तगीन बादशाह का वृत्तान्त इतिहास मे आया है। वह अफगानिस्तान का बादशाह था। वह एक गुलाम खानदान मे पैदा हुआ था। एक बार वह ईरान से अफगानिस्तान की ओर घोडे पर सवार होकर आ रहा था। मार्ग की थकावट से या किसी अन्य कारण से उसका घोडा मर गया। जो सामान उससे उठ सका, वह तो उसने उठा लिया और बाकी का वहीं छोड दिया। मगर उसे भूख इतनी तेज लगी कि वह अत्यन्त व्याकुल हो गया। इसी समय एक तरफ से हरिनों का एक झुड आ निकला और उसने दौडकर उसमे से एक बच्चे की टांग पकड ली। झुड के और हरिन-हरिनिया तो भाग गए पर उस बच्चे की माता वही ठिठक गई और अपने बच्चे को दूसरे के हाथ मे पकडा देख-कर आसू बहाने लगी। अपने बालक के लिये उसका दिल कटने लगा।

बच्चे को लेकर सुबुक्तगीन एक पेड के नीचे पहुचा और उसे भून कर खाने का विचार करने लगा। उसने रूमाल से बच्चे की टांगें बाध दी ताकि वह भाग न जाए। उसके बाद वह कुछ दूर जाकर एक पत्थर से अपनी छुरी पैनी करने लगा। इतने मे मृगी बच्चे के पास जा पहुची और वात्सल्यवश बच्चे को चाटने लगी, रोने लगी और अपना स्तन बच्चे की ओर करने लगी। बच्चा

बेचारा बधा हुआ तड़फ रहा था । वह अपनी माता से मिलने और उसका दूध पीने के लिये कितना विकल था, यह कौन जान सकता है ? मगर वह विवश था । टांगें बधी होने के कारण वह खडा भी नही हो सकता था । अपने बच्चे की यह हालत देखकर मृगी की क्या हालत हुई होगी यह कल्पना करना भी कठिन है । माता का भावुक हृदय ही मृगी की अवस्था का अनुमान कर सकता है कि मगर वह लाचार थी । वह आंसू बहा रही थी और इधर-उधर देखती जाती थी कि कोई किसी ओर से आकर मेरे बच्चे को बचा ले ।

इतने मे ही छुरी पैनी करके सुबुक्तगीन लौट आया । बच्चे की मा हरिनी यहा भी इसके पास आ पहुची है । यह देखकर उसको आश्चर्य हुआ । उसने हरिनी के चेहरे पर गहरे विषाद की परछाई देखी और नेत्रों मे बहते हुए आसू देखे । यह देखकर उसका हृदय भी भर आया । वह व्याकुल होकर सोचने लगा कि मेरे लिए तो यह बच्चा दाल-रोटी के बराबर है, पर इस मा के हृदय मे इसके प्रति कितना गहरा प्रेम है ! इसका हृदय इस समय कितना तड़प रहा होगा ? अपना खाना-पीना छोडकर अपने प्राणो की भी परवाह न करके हरिणी यहा तक भाग आई है । धिक्कार है, मेरे ऐसे खाने को, जिससे दूसरे को घोर व्यथा पहुच रही है । अब मैं चाहे भूख का मारा मर ही जाऊ पर अपनी मा के इस दुलारे को हर्गिज नही खाऊगा ।

आखिर उसने बच्चे को छोड दिया । बच्चा अपनी मा से और माता अपने बच्चे से मिलकर उछलने लगे । यह स्वर्गीय दृश्य देखकर सुबुक्तगीन की प्रसन्नता का पार न रहा । इस प्रसन्नता में वह खाना-पीना भी भूल गया । आज उसकी समझ में आया और

से विश्वास हो गया कि मा के प्रेम से बढ़कर विश्व मे कोई दूसरी चीज नही।

मातृ-प्रेम के समान ससार मे और कोई प्रेम नही। मातृ-प्रेम ससार की सर्वोत्तम विभूति है, ससार का अमृत है, अतएव जब तक पुत्र गृहस्थ-जीवन से पृथक् होकर साधु नही बना है, माता तब तक उसके लिए देवता है।

मातृ-हृदय की दुनिया मे सभी ने प्रशंसा की है। आज के वैज्ञानिकों का भी यही कहना है कि माता मे हृदय का बल होता है। इसी बल के कारण वह सन्तान का पालन करती है और सन्तान के लिए कष्ट उठाती है। यदि माता मे हृदय-बल न होता तो वह स्वय कष्ट सह करके सन्तान का पालन क्यो करती ? कहा जा सकता है कि माता भविष्य सम्बन्धी आशाओ से प्रेरित होकर सन्तान का पालन करती है। इसके उत्तर मे यही कहा जायगा कि पशु-पक्षियो को अपनी सन्तान से क्या आशा रहती है ? पक्षी के बच्चे बडे होकर उड जाते हैं। वे न पिता को पहचानते हैं और न माता को ही। फिर पक्षी अपनी सन्तान का पालन क्यो करते हैं ? उन्हे किसी प्रकार की आशा नही रहती फिर भी वे अपनी सन्तान का उसी प्रेम के साथ पालन करते हैं। इसका एक मात्र कारण हृदयबल ही है। इस प्रकार मातृ-हृदय ससार की अनूठी सम्पदा है, अनमोल निधि है। यही कारण है, दुनिया मे मातृ-हृदय की सभी ने प्रशसा की है।

इस प्रकार माता अपने उत्कट हृदय-बल से सतान का पालन करती है, लेकिन आजकल के लोग उस हृदय-बल को भूल कर मस्तिष्क के विचारों से अधीन हो जाते हैं और पत्नी के गुलाम बन कर माता की उपेक्षा करते हैं। यह कृतघ्नता नही तो क्या है ?

ससार में प्रत्येक प्राणी को सोचना चाहिए कि मेरी माता ने मुझे हृदय-बल से ही पाला है। माता मे हृदय-बल न होता, करुणा न होती तो वह मेरा पालन क्यो करती ? हृदय-बल के प्रताप से ही वह मेरा रोना सुनकर पालने के पास दौडी आती थी और सब काम छोडकर पहले मेरी फरियाद सुनती थी।

माता अपने पुत्र को कभी थप्पड भी मार देती है पर उसका हृदय तो पुत्र के कल्याण की कामना से सदैव परिपूर्ण ही रहता है और इसी से फिर वह उसे पुचकार भी लेती है। माता को थप्पड भी मारनी पडती है और पुचकारना भी पडता है, लेकिन जो भी वह करती है हृदय की प्रेरणा से। उसके हृदय मे बालक की एकान्त कल्याण-कामना निरन्तर वतमान रहती है।

## ५—मातृ-भक्ति

हृदय-बल न होने अथवा हृदय-बल पर मस्तिष्क-बल की विजय होने पर ही माता का अपमान किया जाता है और पत्नी की अधीनता स्वीकार की जाती है। यद्यपि ससार मे ऐसे-ऐसे नर-वीर भी हुए हैं, जिन्होने माता के लिये सब कुछ, यहा तक कि पत्नी को भी त्याग दिया है। लेकिन ऐसे लोग भी कम नहीं हैं, जो स्त्री को प्रसन्न करने के लिये माता का अपमान करने में नहीं चूकते।

हृदय-बल के बिना जगत् का काम क्षण भर भी नहीं चलता। माता मे हृदय-बल न होता तो मस्तिष्क-बल वाले व्यक्ति का जन्म ही कैसे होता ? उसका पालन-पोषण कौन करता ? अतएव स्पष्ट है कि मस्तिष्क-बल की अपेक्षा हृदय-बल की ही अधि

वश्यकता है । और आवश्यकता ही नहीं, पर यह कहना भी
ुचित नहीं कि मस्तिष्क के बल को हृदय-बल के अधीन ही
ना चाहिये । जैसे माता अपने पुत्र को अपने अधीन रखकर
पकी उन्नति करती है, उसी प्रकार मस्तिष्क-बल को हृदय-बल के
धीन रखकर विकसित करना चाहिये । माता यह कदापि नहीं
ाहती कि मेरे पुत्र की उन्नति न हो । वह उन्नति चाहती है और
ीलिये शिक्षा दिलवाती है मगर रखना चाहती है अपनी अधीनता
। वह अपने बालक का निरकुश होना पसद नहीं करती । यह
त अलग है कि आज की शिक्षा का ढग बदला हुआ है और
ताएं भी इसी ढग से प्रभावित होकर ऐसी ही शिक्षा दिलवाती
। लेकिन जो कुछ भी वे करती हैं, पुत्र की हितकामना से
रित होकर ही ।

पर आज का ससार मस्तिष्क-बल से हृदय-बल को दबाता
ला जा रहा है । यह अनुचित है । जैसे अपनी माता को अपनी
त्नी के पैरो पर गिरने को बाध्य करना उचित नहीं है उसी
कार जिस हृदय-बल से आपका जन्म हुआ, उस हृदय-बल को
चलना नीचता है ।

अपनी माता को भूलकर पत्नी का गुलाम बन जाना, ज्ञान
ी निशानी नहीं है । जिस माता ने पुत्र का पालन-पोषण किया
उसी की उपेक्षा करना क्या पुत्र का उचित है ?

कल्पना करो कि एक आदमी किसी श्रीमत की लडकी को
ाह कर लाया, लडकी छबिली है, बनी-ठनी है और आजकल
फैशन के अनुसार रहती है । दूसरी ओर उस पुरुष की माता
जो पुराने विचारों की है । अब वह पुरुष किसके अधीन होकर
चाहेगा ? वास्तव मे उसे माता के अधीन रहना चाहिये ।

उचित तो यही है पर देखा जाता है कि इसके विपरीत पुरुष पत्नी के अधीन हो जाता है। वह यह नही सोचता कि ससुर ने मेरी श्रीमताई देखकर अपनी लडकी दी है पर माता ने क्या देखकर मेरा पालन-पोषण किया है ? माता ने केवल हृदय की प्रेरणा से ही तो मेरा पालन किया है ? उसने और कुछ नही देखा। हार्दिक विचारो से प्रेरित होकर ही माता ने मेरे लिये कष्ट उठाये हैं और उस हृदय को भूल जाना या उपेक्षा करना कृतघ्नता है। मगर ऐसा विचार कितनो का होता है ? ससार मे आज पत्नी के अधीन होकर माता की उपेक्षा करने वाले ही अधिक होगे।

माता का स्थान अनोखा होता है। माता पुत्र को जन्म देती है। माता से ही पुत्र को शरीर मिलता है। सतान पर माता का असीम ऋण है। उस ऋण को चुकाना अत्यन्त कठिन है। मगर क्या आजकल सतान यह समझती है ? आज तो कोई-कोई सपूत ऐसे होते हैं कि नीति की सीख देने के कारण भी अपनी माता का सिर फोडने को तैयार हो जाते हैं। औरतो की बातो मे आकर पत्नी का अपमान कर बैठते हैं। पर पुराना आदश क्या ऐसा था? राम का आदश भारत को क्या शिक्षा देता है ? राम सोचा करते थे कि मा अगर आशीर्वाद दे देगी कि जाओ, जगल मे रहो तो मैं जगल मे भी आनन्द से रहूगा। ऐसा अद्‌भुत और आदर्श चरित्र भारत को छोडकर कहा मिल सकता है ? नैपोलियन के लिये कहा जाता है कि वह माता का बडा भक्त था। वह कहा करता था— तराजू के एक पलडे मे सारे ससार का प्रेम रखू और दूसरे पलडे मे मातृ-प्रेम रखू तो मेरा मातृ-प्रेम ही भारी ठहरेगा।

मातृ-भक्ति का अनुपम उदाहरण मर्यादा पुरुपोत्तम श्री राम-चन्द्र ने उपस्थित किया था। कैकेयी ने राजा दशरथ से अपन दो

वरदानों से रामचन्द्र के लिए चौदह वर्ष का वनवास और अपने पुत्र भरत के लिये राज्य-सिंहासन की मांग की। यद्यपि राम को वनवास देना अनुचित एवं अन्यायपूर्ण था, फिर भी वनवास के कठोर दुःखो और यातनाओ की चिन्ता न करते हुए रामचन्द्र माता की आज्ञा शिरोधार्य कर वन जाने को उद्यत हो गए। उनकी माता कौशल्या के दुःख की सीमा न रही। उन्हे स्वप्न मे भी यह आशा न थी कि कैकेयी वरदान मे इस प्रकार की याचना कर बैठेगी। वे मातृ-स्नेहवश विकल हो उठी और मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। अत्यन्त स्नेह से इतने वर्षों तक पालन-पोषण करने वाली माता को यकायक इतना बड़ा वियोग बिलकुल असह्य-सा प्रतीत हुआ। वे अपने पुत्र को क्षण मात्र के लिए भी आंखो से ओझल नही देखना चाहती थी। वे सर्वदा उसे अपने नयनो मे रखकर अपने हृदय को शीतल एवं आह्लादमय बनाना चाहती थी। प्रतिक्षण उनके मन मे रामचन्द्र की सुन्दर व सजीव मूर्ति व्याप्त रहती थी। क्षण भर भी उन्हे देखकर वे स्वर्गीय सुख का अनुभव करती थी। पुत्र के बिना उनके लिए कुबेर की समस्त धन-सम्पत्ति भी तुच्छ थी। मातृत्व स्नेह को ऐश्वर्य के पलड़े मे तो किसी भी तरह नही तोला जा सकता।

कौशल्या यह सोच-सोच कर अत्यन्त विकल हो रही थी कि मैं इसका वियोग कैसे सह सकूंगी ? प्राण ( राम ) चले जाने पर यह निष्प्राण शरीर कैसे रहेगा ?

इस प्रकार के विचारो से व्यथित कौशल्या मूर्च्छित हो गई। राम आदि ने शीतोपचार करके उन्हे सचेष्ट किया। सचेष्ट होकर आंसू बहाती हुई कौशल्या फिर प्रलाप करने लगी—हाय, मैं जीवित क्यो रही ? पुत्र-वियोग का यह दारुण दुःख सहने की

अपेक्षा मर जाना ही मेरे लिए अच्छा था। मर जाती तो वियोग की ज्वालाओ से तिल-तिल करके जलने से तो बच जाती ! मेरा हृदय कैसा वज्र-कठोर है कि पुत्र वन को जा रहा है और मैं जी रही हू।

कौशल्या की मार्मिक व्यथा का प्रभाव राम पर पडे बिना न रहा। वे स्वय व्यथित हो उठे और सोचने लगे-अयोध्या की महारानी, प्रतापी दशरथ की पत्नी और राम की माता होकर भी इन्हें कितनी वेदना है ! मेरी माता इतनी शोकातुरा ! मगर इनमे इतना मोह क्यो है ? वे माता का मोह और सताप मिटाने के लिए वचन-रूपी शीतल जल छिडकने लगे। कहने लगे माता, अभी आप धर्म की बात कहती थीं और पिताजी के वरदान को उचित बतलाती थी और अभी-अभी आपकी यह दशा ! बुद्धिमती और ज्ञानशीला नारी की यह दशा नहीं होनी चाहिए। यह कायर स्त्रियो को शोभा देता है-राम की माता को नही। इतनी कायरता देखकर मेरा भी चित्त विह्वल हो रहा है। जिस माता से मेरा जन्म हुआ, उसे इस तरह की कायरता शोभा नही देती। आप मेरे लिये दुःख मना रही हैं और मैं स्वेच्छापूर्वक वन जा रहा हू ! आपको इतना शोक क्यो है ?

सिंहनी एक ही पुत्र जनती है मगर ऐसा जनती है कि उसे किसी भी समय उसके लिये चिन्ता नहीं करनी पडती। सिंहनी गुफा मे रहती है और उसका बच्चा जगल मे फिरता रहता है। क्या वह उसके लिये चिन्ता करती है ? वह जानती है कि उसका बच्चा अपनी रक्षा अपने आप कर लेगा। माता ! जब सिंहनी अपने बच्चे की चिन्ता नही करती तो आप मेरी चिन्ता क्यो करती हैं ? आपकी चिन्ता से तो यह आशय निकलता है कि राम कायर

है और आप कायर की जननी हैं। आप मेरे वन जाने से घबराती हैं पर वन मे जाने से ही मेरी महिमा बढ़ सकती है। फिर मैं सदा के लिये नही जा रहा हू, कभी न कभी लौट कर आपके दर्शन करूंगा ही। आप मुझे जगत् का कल्याणकारी समझती हैं, मगर आपकी कायरता से तो उलटी ही बात सिद्ध होती है। इस प्रकार अनेको तरह से मातृ-भक्त रामचन्द्र जी ने माता को समझाया कि कही दु,ख से अत्यधिक विकल होकर माता वचन–भग न करे और मैं माता की आज्ञा न मानने वाला कलंकी सिद्ध होऊं।

इसी प्रकार जब लक्ष्मण भी रामचन्द्र जी के साथ वन जाने को तैयार हो गए, तब उनकी माता सुमित्रा पुत्र-प्रेम के वशीभूत होकर अत्यन्त व्याकुल हो उठी। जैसे कुल्हाडी से काटने पर कल्प-लता गिर जाती है, उसी प्रकार वह भी मूर्छित होकर गिर पडी। लक्ष्मण यह देख बडी चिन्ता मे पड गए। वे सोचने लगे, कहीं स्नेह के वश होकर माता मुझे मनाई न करदे ! लेकिन होश मे आकर सुमित्रा सोचने लगी–हाय, मेरी बहिन कैकेयी ने भी यह कैसा वर मागा कि राम जैसे आदर्श पुत्र को वन जाना पड रहा है। उसने सब किये–कराए पर पानी फेर दिया। समस्त अवधवासियो की आशा मिट्टी मे मिल गई। हाय राम ! तुम क्यो सकट मे पड गए ! मगर नही, यह मेरी परीक्षा का अवसर है, पुत्र को कर्त्तव्यपथ से च्युत करने वाली मा कैसी ? मा का मातृत्व इसी मे है कि वह पुत्र को निरन्तर उचित मार्ग की ओर अग्रसर करे। स्नेह से विह्वल होकर उचित मार्ग पर जाते हुए पुत्र को लौटा कर कर्त्तव्य–भ्रष्ट करना मातृत्व को लज्जित करना है। मैं गौरवमयी मा हू। सारा विश्व मेरे पुत्र की जगह है। मैं जग–जननी हू।

मातृत्व के गौरव की आभा से दीप्त सुमित्रा ने अपना

कर्त्तव्य तत्काल निश्चित कर लिया। मीठी वाणी से उन्होने लक्ष्मण से कहा—वत्स, जिसमे राम को और तुम्हें सुख हो, वही करो। मैं तुम्हारे कर्त्तव्य-पालन मे तनिक भी बाधक होना नहीं चाहती। थोडे मे इतना ही कहती हू कि इतने दिनो तक मैं तुम्हारी माता और राजा दशरथ तुम्हारे पिता थे। मगर आज से राम तुम्हारे पिता और सीता तुम्हारी माता हुई। तुमने राम के साथ वन जाने का निश्चय किया है, यह तुम्हारा नया जन्म है। मैं तुम्हारी पुण्य सम्पत्ति का क्या बखान करू ? तू राम के रग मे गहरा रग गया है, यह कम सौभाग्य की बात नही है। पुत्र ! तू ने राजमहल त्याग कर राम की सेवा के लिये वन जाने का विचार करके मेरी कूंख को प्रशस्त बना दिया है। तेरी बुद्धि अच्छी है; पर फिर भी मैं तुझे कुछ सीख देती हू। वत्स ! अप्रमत्त भाव से राम की सेवा करना। उन्ही को अपना पिता और जानकी को अपनी माता समझना। मैं तुझे राम को सौंपती हू। राम को सौंपने के बाद तुझे कोई कष्ट नही हो सकता। पुत्र ! अयोध्या वही है, जहा राम हैं। जहा सूर्य है, वही दिन है। जब राम ही अयोध्या छोड रहे हैं तो तुम्हारा यहा क्या काम है ? इसलिये तुम आनन्द से जाओ। माता-पिता, गुरु, देव, बन्धु और सखा को प्राण के समान समझ कर उनकी सेवा करना नीति का विधान है। तुम राम को ही सब कुछ समझना और सर्वतोभाव से उन्ही की सेवा मे निरत रहना।

वत्स ! जननी के उदर से जन्म लेने की सार्थकता राम की सेवा करने मे ही है। यह तुम्हे अपने जीवन का बहुमूल्य लाभ मिला है। पुत्र ! तू आज बडभागी हुआ और तेरे पीछे मैं भी भाग्यशालिनी हुई। सब प्रकार के छल कपट को छोडकर तेरा सम्पूर्ण मन राम मे ही लगा है, इससे मैं तुझ पर बार-बार बलि

जाती हू । मैं उसी स्त्री को पुत्रवती समझती हू, जिसका पुत्र सेवा-भावी, त्यागी, परोपकारी, न्याय-धर्म से युक्त और सदाचारी हो। जिसके पुत्र मे ये गुण नही, उस स्त्री का पुत्र को जन्म देना ही वृथा है ।

पुत्र सभी स्त्रिया चाहती हैं, पर पुत्र कैसा होना चाहिये, यह बात कोई बिरली ही समझती है । कहावत है—

**जननी जने तो ऐसा जन, कै दाता कै सूर ।**
**नीतर रहजे बांझड़ी, मती गमाजे नूर ।।**

अर्थात्—मा, अगर पुत्र पैदा करना है तो ऐसा करना कि या तो वह दानी हो और या शूरवीर हो । नहीं तो बाझ भले ही रहना पर अपनी शक्ति को कलकित नही करना ।

बहिनें पुत्र तो चाहती हैं पर यह जानना नहीं चाहती कि पुत्र कैसा होना चाहिए ? पुत्र उत्पन्न हो जाने पर उसे सुसस्कारी बनाने की कितनी जिम्मेवारी आ जाती है, इस बात पर ध्यान न देने से उनका पुत्र उत्पन्न करना व्यर्थ हो जाता है ।

सुमित्रा फिर कहती है—लक्ष्मण ! तेरा भाग्योदय करने के लिये ही राम वन मे जा रहे हैं। वह अयोध्या मे रहते तो उनकी सेवा करने वालो की कमी नही रहती । वन मे की जाने वाली सेवा, तेरी सेवा-मूल्यवान् सिद्ध होगी । सेवक की परीक्षा सकट के समय पर ही होती है । राम वन न जाते तो तुम्हारी परीक्षा कैसे होती ?

धन्य है सुमित्रा ! उसके हृदय मे पुत्र-वियोग की व्यथा

कितनी गहरी होगी, इसका अनुमान लगाना कठिन है। लेकिन उसने धैर्य नही छोडा। वह लक्ष्मण से कहने लगी—वत्स! राग, द्वेष और मोह त्याग करके वन मे राम और सीता की सेवा करना। राम के साथ रहकर सब विकार तज देना। जब राम और सीता तेरे साथ हैं तो वन तुझे कष्टदायक नही हो सकता। हे वत्स! मेरा आशीर्वाद है कि तुम दोनो भाई सूर्य और चन्द्र की भाति जगत् का अन्धकार मिटाओ, प्रकाश फैलाओ, तुम्हारी कीर्ति अमर हो।

रामचन्द्र जी के वनवास के लिये प्रस्थान कर देने पर तो अवधनिवासी बहुत ही व्याकुल हुए। वे तो चाहते थे कि राम राज्य-सिहासन को सुशोभित करें। अत उन्हे लौटाने के लिये फिर सब लोग वन को गए। साथ मे कैकेयी भी स्वय वहा पहुची और उन्हे लौटाने का प्रयत्न करने लगी। यद्यपि वह विमाता थी, लेकिन यह बात नही थी कि वह कौशल्या, सुमित्रा आदि से द्वेष रखती थी तथा राम-लक्ष्मण आदि से प्रेम नही करती थी। कैकेयी के चरित्र से यह स्पष्ट था कि उसके हृदय मे किसी भी प्रकार की मलिनता नही थी। वह भी उतनी ही दयार्द्र तथा कोमल स्वभाव वाली थी, जितनी कि कौशल्या व सुमित्रा। तीनो सहोदरो की भाति एक-दूसरे से प्रेम करती थी। उनके चारो पुत्रो मे भी किसी प्रकार का भेद-भाव न था। सुमित्रा लक्ष्मण को भी उतना ही प्रेम करती थी, जितना राम को। कौशल्या और कैकेयी ने भरत और राम से अपने पुत्रो की ही भाति स्नेह किया था। कैकेयी को किन्ही विशेष परिस्थितियो तथा कुछ गलतफहमियो से दो वर-दान मागने पडे। उसका पूर्व-चरित्र कदापि इतना दूषित नही था। राम के चले जाने पर उसे बहुत ही दुःख हुआ। अपने किये पर उसे बहुत पश्चात्ताप हुआ। उसके सहज स्नेह और वात्सल्य पर एक

प्रकार की कुबुद्धि का जो वातावरण पड गया था, वह हट कर निर्मल स्नेह–रस मे परिणत हो गया, क्योकि आखिर मातृप्रेम ही तो ठहरा ! कुछ समय के लिये चाहे माता बच्चे को यातनाए तथा ताडनाए भी दे, पर उसका प्रेम तो कही नहीं जा सकता। वह तो हृदय की एक सदैव स्थित रहने वाली बहुमूल्य वस्तु है, जो माता से कभी पृथक् नही की जा सकती। कैकेयी के हृदय से पुत्रप्रेम फूट–फूट कर बह निकला। वह राम को अयोध्या लौट चलने के लिए आग्रह करने लगी। राम के हृदय मे तो माताओ के प्रति कोई भेद–भाव था ही नहीं, वे जरा भी भिन्नता का अनु–भव नहीं करते थे।

महारानी कैकेयी ने अत्यन्त सरल हृदय से पश्चात्ताप किया। वह बोली—'वत्स ! जो कुछ होना था, सो हो चुका। मुझे कलक लगना था सो लग गया। अब इस स्थिति का अन्त लाना तुम्हारे हाथ है। मेरा कलक कम करना हो तो मेरी बात मान कर अयोध्या चलो। तुमने मुझे बहिन कौशल्या के ही समान समझा है तो मेरी बात अवश्य मान लो। मैं अब तक भरत को ही अपना सबसे अधिक प्रिय समझती थी। मोहवश मैं मानती थी कि भरत ही मेरा पुत्र है और वही मुझे सबसे अधिक प्रिय होना चाहिए। अपने प्रिय के लिए सब कुछ किया जाता है। इसीलिए मैंने सोचा कि अगर मैंने भरत के लिये वरदान मे राज्य न मांगा तो फिर वर मागना ही किस काम का ? लेकिन भरत ने मेरी भूल सुधार दी है। भरत ने मुझे सिखा दिया है कि 'अगर मैं तुम्हे प्रिय हू तो राम मुझ प्रिय हैं। तू मेरे प्रिय से छुडा कर मुझे सुखी कैसे कर सकती है ? यह राज्य तो राम के सामने नगण्य है। मुझ से राम को दूर करना तो मेरे साथ शत्रुता करना है। राज्य मुझे प्यारा नही है, मुझे तो राम प्यारे हैं।' इस प्रकार भरत के समझाने से मैं समझ

गई हूं कि अपने प्रिय राम के बिछुड़ जाने से भरत निष्प्राण-सा हो रहा है। राम, तुम मेरे प्रिय के प्रिय हो तो मेरे लिए तो दुगुने प्रिय हो। अब तुम मुझे छोड़कर अलग नहीं रह सकते। यह निश्चय है कि तुम्हारे रहते ही भरत मेरा रह सकता है। तुम्हारे न रहने पर भरत भी मेरा नहीं रह सकता।'

कैकेयी कहती है—'राम! मैं नहीं जानती थी कि भरत मेरा नहीं राम का है। अगर मैं जानती कि मैं राम की रहूं तभी भरत मेरा है, नहीं तो भरत भी मेरा नहीं है, तो मैं तुम्हारा राज्य छीनने का प्रयत्न ही न करती। मुझे क्या पता था कि भरत राम को छोड़ने वाली माता को छोड़ देगा।'

अगर आपके माता-पिता परमात्मा का परित्याग कर दें और ऐसी स्थिति हो कि आपको माता-पिता या परमात्मा में से किसी एक को ही चुनना पड़े तो आप किसे चुनेंगे? माता-पिता का परित्याग करेंगे या परमात्मा का? परमात्मा को त्यागने वाला चाहे कोई भी क्यों न हो, उसका त्याग किये बिना कल्याण नहीं हो सकता।

कैकेयी फिर कहने लगी—'मुझे पहले मालूम नहीं था कि तुम भरत को अपने से भी पहिले मानते हो। काश! मैं पहले समझ गई होती कि तुम भरत का कष्ट मिटाने के लिये इतना महान् कष्ट उठा सकते हो। ऐसा न होता तो तुम्हारा राज्य छीनने की हिम्मत किसमें होती? खास तौर पर जब लक्ष्मण भी तुम्हारे साथ थे। तुमने महाराज के सामने भरत को और अपने आपको बाईं और दाईं आंख बताया था। यह सचाई अब मैं भली-भांति समझ रही हूं। मैं अब जान गई कि तुम भरत को प्राणों से भी ज्यादा प्यार करते हो।'

कैकेयी कहती गई—'वत्स ! तुम्हारे राज्य-त्याग से सूर्यवंश के एक नररत्न की परीक्षा हुई है । तुम्हारे वन आने पर लक्ष्मण ने भी सब सुखो का त्याग करके वन आना पसद किया । भरत ने राजा होकर भी क्षण भर भी शाति नही पाई । शत्रुघ्न भी बेहद दुःखी हो रहा है । चारो भाइयो मे से एक भी अपना स्वार्थ नहीं देखता है । सभी एक-दूसरे को सुखी करने के लिये अधिक से अधिक त्याग करने के लिये तैयार है । सब का सब पर अपार स्नेह है । तुम्हारा यह भ्रातृप्रेम मेरे कारण ही प्रकट हुआ है । इस दृष्टिकोण से मेरा पाप भी पुण्य-सा हो गया है और मुझे सतोष दे रहा है । भले ही मैंने अप्रशस्त कार्य किया है किन्तु फल उसका यह हुआ कि चिरकाल तक लोग भ्रातृप्रेम के लिए तुम लोगों का स्मरण करेंगे । कीचड-कीचड ही है पर कमल उत्पन्न होने से कीचड की भी शोभा बढ़ जाती है । मेरा अनुचित कृत्य भी इस प्रकार अच्छा हो गया । मैं अच्छी हू या बुरी, जैसी भी हू, सो हू । मगर तुम्हारा अन्तःकरण सर्वथा शुद्ध है । मेरी लाज आज तुम्हारे हाथ मे है । अयोध्या लौटने पर ही उसकी रक्षा होगी, अन्यथा मेरे नाम पर जो धिक्कार दिया जा रहा है, वह बद न होगा ।'

कैकेयी मे अपनी भूल सुधारने का साहस था । इसी कारण उसने बिगडी बात बना ली । वह कहने लगी—'राम, मैं तर्क नहीं जानती । मुझे वाद-विवाद करना नही आता । मैं राजनीति से अनभिज्ञ हू । मेरे पास सिर्फ अधीर हृदय है । अधीर हृदय लेकर मैं तुम्हारे पास आई हू । मैं माता हू और तुम मेरे पुत्र हो, फिर भी प्रार्थना करती हू कि अब अयोध्या लौट चलो । 'गई सो गई अब राख रही को ।' बीती बात को बार-बार याद करके वर्तमान की रक्षा न करना अच्छा नही है ।

हे राम ! इस परिवर्तनशील ससार मे एक-सा कौन रहता

है ? सूर्य भी प्रतिदिन तीन अवस्थाएं धारण करता है। इसी प्रकार सभी कुछ बदलता रहता है। तो फिर तुम्हारी इस स्थिति मे परिवर्तन क्यो नही होगा ? मेरे भाग्य ने मेरे साथ छल किया था, इससे मुझे अपयश मिला, लेकिन मेरा भाग्य अब बदल गया है और इसी कारण मुझे अपनी भूल मालूम पडी है। अब मैं पहले वाली कैकेयी नही हू। पुत्र ! मैं तुम्हारे निहोरे करती हू कि अब तुम अयोध्या वापिस लौट चलो।

रामचन्द्र जी अभी तक माता की बातें सुन रहे थे। अब उन्होने नम्रतापूर्वक मुस्कराते हुए कहा—'माताजी, बचपन से ही आपका मातृस्नेह मुझ पर रहा है और अब भी यह वैसा ही है। आप माता हैं, मैं आपका पुत्र हू। माता को पुत्र के आगे इतना अधीर नही होना चाहिए। आपने ऐसा किया ही क्या है, जिसके लिए इतना खेद और पश्चात्ताप करना पडे ? राज्य कोई बडी चीज नही है और वह भी मेरे भाई के लिए ही आपने मागा था, किसी गैर के लिए नही। जब मैं और भरत दो नही हैं, तब तो यह प्रश्न ही नही उठता कि कौन राजा है और कौन नहीं ? इतनी साधारण-सी बात को इतना अधिक महत्त्व मिल गया है। आप चिन्ता न करें। मेरे मन मे तनिक भी मैल नही है। भरत ने एक जिम्मेदारी लेकर मुझे दूसरा काम करने के लिए स्वतन्त्र कर दिया है।'

'माताजी ! जहा मा-बेटे का सम्बन्ध हो, वहा इतनी लम्बी बात-चीत की आवश्यकता ही नही है। आपके सम्पूर्ण कथन का सार यही है कि मै अवध को लौट चलू लेकिन यह कहना माता के लिए उचित नही है। आप शांत और स्थिर चित्त हो विचार करें कि ऐसी आज्ञा देना क्या उचित होगा ? आपकी आज्ञा मुझे

सदैव शिरोधार्य है । माता की आज्ञा का पालन करना पुत्र का कर्त्तव्य है लेकिन माता ! तुम्ही ने तो मुझे पाल-पोसकर एक विशिष्ट साचे मे ढाला है । मुझे इस योग्य बनाया है । इसलिये मैं तो आपकी आज्ञा का पालन करूगा ही, मगर निवेदन यही है कि आप उस साचे को न भूलें, जिसमे आपने मुझे ढाला है । मेरे लिए एक ओर आप हैं और दूसरी ओर सारा ससार है । सारे ससार की उपेक्षा करके भी मैं आपकी आज्ञा मानना उचित समझूंगा ।'

'माताजी, आपका आदेश मेरे लिए सबसे बडा है और उसकी अवहेलना करना बहुत बडा पाप होगा लेकिन यह बात आप स्वय सोच लें कि आपका आदेश कैसा होना चाहिए ? आप मुझसे अवघ चलने को कहती हैं, यह तो आप अपनी आज्ञा की अवहेलना कर रही हैं । मैंने आपको आज्ञा पालन करने के लिये ही वनवास स्वीकार किया है । क्या अब आपकी ही आज्ञा की अवहेलना करना उचित होगा ? ऐसे साचे मे आपने मुझे ढाला ही नही है । रघुवंश की महारानिया एक बार जो आज्ञा देती हैं, फिर उसका कदापि उल्लघन नही करतीं ।'

आप कह सकती हैं कि क्या मेरा और भरत का यहां आना असफल हुआ ? लेकिन यह बात नही है । आपका आगमन सफल हुआ है । यहा आने पर ही आपको मालूम हुआ होगा कि आपका आदेश मेरे सिर पर है । पहले आप सोचती होंगी कि वन में राम आदि दुखी हैं । क्या आपको हम तीनो के चेहरे पर कही दुख की रेखा भी दिखाई पडती है ? हमने ससार को यह दिखा दिया कि सुख अपने मन मे है, कही बाहर से नही आता ।'

'माता ! आपने यहा आकर देख लिया कि राम, लक्ष्मण

ग्रौर जानकी दुःखी नही हैं वरन् सन्तुष्ट ग्रौर सुखी हैं। ग्रगर ग्रब भी ग्रापको विश्वास न हो तो हम फिर भी कभी विश्वास दिला देंगे कि हम प्रत्येक परिस्थिति में ग्रानन्दमय ही रहते हैं, कभी दु:खी नहीं होते। सूर्यकुल मे जन्म लेने वालो की प्रतिज्ञा होती है कि वे प्राण जाते समय भी ग्रानन्द मानें, लेकिन वचन-भग होते समय प्राण जाने की ग्रपेक्षा ग्रधिक दु ख मानें। पिताजी ने भी यही कहा था, ऐसी दशा मे ग्राप ग्रयोध्या से चलकर मेरे प्रण को भग करेंगी ग्रौर मुझे दु ख मे डालेंगी? ग्रगर ग्राप सूर्यकुल की परम्परा को कायम रहने देना चाहती हैं ग्रौर मेरे प्रण को भग नही होने देना चाहती तो ग्रयोध्या लौटने का ग्राग्रह न करें। साथ ही साथ ग्रात्म-ग्लानि की भावना का भी परित्याग कर दें। मैं स्वेच्छा से ही वनवास कर रहा हू। इसमे ग्रापका कोई दोष नही है। विशेषत इस दशा मे जबकि ग्राप स्वय ग्राकर ग्रयोध्या लौट चलने का ग्राग्रह कर रही हैं तो उसमे ग्रापका दोष कैसे हो सकता है?

माताजी! मैंने जो कुछ भी कहा है, स्वच्छ ग्रत करण से ही कहा है। ग्राप उस पर विश्वास कीजिये। ग्राप मेरी गौरवमयी मा हैं, ऐसा मन मे विचार कर प्रसन्नतापूर्वक मुझे वनवास का ग्रादेश दीजिये।

इस प्रकार मातृप्रेम व वात्सल्य का उदाहरण कैकेयी ने उपस्थित कर भारतीय नारियो के लिए एक ग्रादर्श स्थापित किया। विमाता होते हुए भी उसके हृदय मे स्नेह की धाराए सदा प्रवाहित होती थी। किन्ही परिस्थितियो मे या ग्रज्ञानतावश चाहे कुछ समय के लिए माता बच्चे पर नाराज भी हो उठे पर इसका यह तात्पर्य नहीं कि वह उससे स्नेह नहीं करती। बाल्यकाल मे माताग्रो के उन्ही सस्कारो का ही तो परिणाम था, जिनके कारण राम के

ऐसे आदर्श व्यक्तित्व और चरित्र की नीव पडी । अगर माताएं योग्य न होती, अशिक्षित, असस्कृत और मूर्ख होती तो उनसे क्या आशा की जा सकती थी कि वे रामचन्द्र जैसे पुत्र-रत्न को पैदा करती ? तीनो माताएं सगी माताओ से किसी प्रकार कम न थी, अतः तीनो के सत्सस्कार चारो पुत्रो पर अंकित थे ।

नाना यातनाएं सहकर भी रामचन्द्र ने विश्व को बता दिया कि जब तक माता-पिता खाने-पीने को दें, अच्छा पहनने-ओढने को दें, खूब सुखपूर्वक रखें, तब तक उनकी सेवा करने मे कोई विशेषता नही है । बिशेषता तो तब है, जब माता-पिता द्वारा सभी कुछ छीन लेने पर भी पुत्र उनकी उसी प्रकार सेवा करे, जैसी पहिले करता था । इस प्रकार सेवा करने वाला पुत्र वास्तव मे सच्चा पुत्र है और भाग्यशाली है ।

## ६-माता का उपकार

मा बच्चे को जन्म देती है । नौ महीने उदर मे रखे हुए नाना तकलीफो का सामना करती है । पैदा होने के बाद तो उसके सकटो की गिनती ही नही रहती । फिर भी वह हसती-हसती पुत्र का मुंह देखकर सा कुछ सहन करती है । माता का पुत्र पर असीम उपकार है । माता बालक को जन्म देती है, अतएव कहा जा सकता है कि यह शरीर माता ने दिया है लेकिन बहुत से लोग माता-पिता के महान् उपकारो का विस्मरण करके पीछे से आई हुई स्त्री के मनोहारी हावभाव से मुग्ध होकर उसकी सम्मोहिनी माया के जाल मे फसकर, माता-पिता के शत्रु बन जाते हैं और स्त्री की उगली के इशारे पर नाचते हैं । वह जिस प्रकार नचाती है, पुरुष बन्दर की तरह उसी प्रकार नाचता है । कई लोग

तो माता-पिता को इतनी पीडा देते हैं कि सुनकर हृदय मर्माहत हो उठता है । उन्हे अपशब्द सुनाने, मार-पीट करने तक की घटनाएं घटती हैं । ये सब बातें मनुष्य की कितने दर्जे की कृतघ्नता सूचित करती हैं !

जिस माता ने अपने यौवन के सौन्दर्य की परवाह न करके, अपने हृदय के रस से—दूध से बालक के प्राणो की रक्षा की, जिसके उदर मे रहने पर उसकी रक्षा के लिये संयम से रही, प्रसव के पश्चात् जिसने सब प्रकार की घृणा को ममता के ऊपर न्योछावर कर दिया, जो बालक पर अपना सर्वस्व निछावर करने को उद्यत रही, जिसकी बदौलत पुत्र, पत्नी पाने योग्य बना, जिसने अपने पुत्र और पुत्र-वधू से अनेकानेक मसूबे बांधे, उसी माता की वृद्धावस्था मे जब दयनीय दशा होती है और वह भी अपने पुत्र के हाथ से, तब उस पूत को क्या कहा जा सकता है ?

इस प्रश्न का उत्तर मिलना आज कठिन है । पुरुषो ने स्त्रियो की जो अवहेलना की है, उस अवहेलना की छाया मे इस प्रश्न का उत्तर सूझना आज कठिन है ।

मगर तटस्थता से विचार किया जाय तो ज्ञात होगा कि महिलावर्ग के प्रति कितना अन्याय किया जा रहा है ! पुरुषो ने स्त्री-समाज को ऐसी परिस्थिति मे रखा है, जिससे वे निरी बेवकूफ रहना ही अपना कर्त्तव्य समझें । कई पुरुष तो स्त्रियो को पैर की जूती तक कह देने का साहस कर डालते हैं लेकिन तीर्थंकर की माता को प्रणाम करके इन्द्र क्या बता गया है, इस पर विचार करो । इस पर तो विचार करो कि इन्द्र ने तीर्थंकर की माता को प्रणाम क्यो किया और तीर्थंकर के पिता को प्रणाम क्यो नही किया ?

इन्द्र कहता है—'हे रत्नकुक्षि-धारिणी ! हे जगत्विख्याता ! हे महामहिमा-मंडिता माता ! आप धन्य हैं। आपने धर्म-तीर्थ की स्थापना करने वाले और भव-सागर से पार उतारने वाले, संसार मे सुख एव शांति की संस्थापना करने वाले त्रिलोकीनाथ को जन्म दिया है। अम्बे ! आप कृतपुण्या और सुलक्षणा हैं। आपने जगत् को पावन किया है।'

अब बताइये माता का पक्ष बडा होता है या पिता का ? इन्द्र पिता को सिर नही झुकाता, इसका क्या कारण है ? देवो का राजा इन्द्र मनुष्यो मे से ससारत्यागियो को छोडकर अगर किसी को नमस्कार करता है, तो तीर्थंकर भगवान् की माता को ही। और किसी के सामने इन्द्र का मस्तक नही झुकता।

इन्द्र ने महारानी त्रिशला को नमस्कार किया सो क्या भूल की थी ? या सिद्धार्थ महाराज रानी त्रिशला की अपेक्षा किसी बात मे कम थे ? महारानी त्रिशला को इन्द्र ने प्रणाम किया। इसका कारण यह है कि भगवान् महावीर माता के ही निकट हैं। भगवान् को बड़ा बताना और भगवान् जिनके प्रति अति सन्निकट हैं, उन्हे बडा न बताना, यह उनका अपमान है।

आजकल चक्कर उल्टा चल रहा है। लोग पूजा-पाठ, जप-तप आदि मे इन्द्र की स्थापना करते हैं, बुलाते हैं, उसे चाहते हैं पर इन्द्र भी जिसको प्रणाम करता है, ऐसी माता को नही चाहते। पर माता कितनी स्नेहमयी होती है ! वह पुत्र के सिवाय इन्द्र को भी नही चाहती। इन्द्र भगवान् की माता के पास प्रणाम करने जाता है पर भगवान् की माता क्या उससे किसी प्रकार की याचना करती हैं ? इन्द्र, माता को नमस्कार करता है पर माता इन्द्र को न चाहकर तीर्थंकर को ही चाहती है। ऐसी माता के

ऋण से क्या कोई उऋण हो सकता है ?

ठाणांग सूत्र मे वर्णन आता है कि गौतम-स्वामी ने भगवान् महावीर से पूछा, "भगवन्, अगर पुत्र माता-पिता को नहलाये, वस्त्राभूषण पहनावे, भोजन आदि सब प्रकार से सुख देवे और उन्हें कन्धे पर उठाकर फिरे तो क्या वह माता-पिता के ऋण से उऋण हो सकता है ? भगवान् ने उत्तर दिया—

नायमट्ठे समट्ठे ।

अर्थात् ऐसा होना सम्भव नहीं । इतना करके भी पुत्र माता के ऋण से उऋण नही हो सकता ।

इसका आशय यही है कि वास्तव मे इतना करने पर भी माता के उपकार का बदला नहीं चुक सकता । कल्पना कीजिये, किसी आदमी पर करोडो का ऋण है । ऋण मागने वाला ऋणी के घर गया। ऋणी ने उसका आदर-सत्कार किया और हाथ जोड-कर कहा—'मैं आपका ऋणी हू और ऋण को अवश्य चुकाऊंगा ।' अब आप कहिये कि आदर-सत्कार करने और हाथ जोड़ने से ही क्या वह ऋणी ऋणरहित हो गया ?

राजा बाग तैयार करवाए और किसी माली को सौंप दे। माली बाग मे से दस-बीस फल लाकर राजा को सौंप दे तो क्या वह राजा के ऋण से मुक्त हो जाएगा ?

नहीं !

इसी प्रकार यह शरीर रूपी बगीचा माता-पिता के द्वारा बनाया गया है । उनके बनाए शरीर से ही उनकी सेवा की तो

क्या विशेषता हो गई ? यह शरीर तो उन्ही का था। फिर शरीर से सेवा करके पुत्र उनके उपकार से मुक्त किस प्रकार हो सकता है ?

एक माता ने अपने कलियुगी पुत्र से कहा—मैंने तुझे जन्म दिया है, पाल-पोसकर बडा किया है, जरा इस बात पर विचार तो कर बेटा !

बेटा नई रोशनी का था । उसने कहा—फिजूल बडबड मत कर । तू जन्म देने वाली है कौन ? मैं नहीं था, तब तू रोती थी, बाझ कहलाती थी । मैंने जन्म लिया, तब तेरे यहा बाजे बजे और मेरी बदौलत ससार मे पूछ होने लगी । नहीं तो बाझ समझकर कोई तेरा मुह देखना भी पसन्द नहीं करता था । फिर मेरे इस कोमल शरीर को तूने अपना खिलौना बनाया, इससे अपना मनोरजन किया, लाड-प्यार करके आनन्द उठाया । इस पर भी उपकार जतलाती हो ?

माता ने कहा—मैंने तुझे पेट मे रखा सो ?

बेटा-तुमने जान बूझकर पेट मे थोडे ही रखा था। तुम अपने सुख के लिये प्रयत्न करती थी । इसमे तुम्हारा उपकार ही क्या है ? फिर भी अगर उपकार जतलाती हो तो पेट का किराया ले लो ।

यह आज की सभ्यता है । भारतीय सस्कृति आज पश्चिमी सभ्यता का शिकार बनी जा रही है और भारतीय जनता अपनी पूजी को नष्ट कर रही है !

माता ने कहा—कोठरी की तरह तू मेरे पेट का भाडा देने को तैयार है, पर मैंने तुझे अपना दूध भी तो पिलाया है ।

बेटा—हम दूध न पीते तो तू मर जाती। तेरे स्तन फटने लगते। अनेक बीमारियां हो जाती। मैंने दूध पीकर तुझे जिन्दा रखा है।

माता ने सोचा—यह बिगड़ैल बेटा ऐसे नहीं मानेगा। तब उसने कहा—अच्छा चल गुरुजी से इसका फैसला करा लें। अगर गुरुजी कहेंगे कि पुत्र पर माता-पिता का उपकार नहीं है तो मैं अब से कुछ भी नहीं कहूंगी। मैं माता हूं। मेरा उपकार मान या न मान, मैं तेरी सेवा से मुंह नहीं मोड़ सकूंगी।

माता की बात सुनकर लड़के ने सोचा—शास्त्रवेत्ता तो कहते हैं कि मनुष्य कर्म से जन्म लेता है और पुण्य से पलता है। इसके अतिरिक्त गुरुजी माता-पिता की सेवा करने को एकांत पाप भी कहते हैं। फिर चलने में हर्ज ही क्या है?

यह सोचकर लड़के ने गुरुजी से फैसला कराना स्वीकार कर लिया। वह गुरुजी के पास चला गया।

दोनों माता-पुत्र गुरु के पास पहुंचे। वहां माता ने पूछा—'महाराज, शास्त्र में कहीं माता-पिता के उपकार का भी हिसाब बतलाया है या नहीं? गुरु ने कहा—जिनमें माता पिता के उपकार का वर्णन न हो, वह शास्त्र, शास्त्र ही नहीं। वेद में माता-पिता के सम्बन्ध में कहा है।

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव।

ठाणांग सूत्र में भी ऐसी ही बात कही गई है।

गुरु की बात सुनकर माँ ने पूछा—माता-पिता का उपकार

पुत्र पर है या पुत्र का उपकार माता-पिता पर है ?

गुरु ने ठाणाग सूत्र निकाल कर बतलाया और कहा-बेटा अपने माता-पिता के ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकता, चाहे वह कितनी ही सेवा करे।

गुरु की बात सुनकर पुत्र अपनी माता से कहने लगा-देखलो, शास्त्र मे भी यही लिखा है न कि सेवा करके पुत्र, माता-पिता के उपकार से मुक्त नही होता। फिर सेवा करने से क्या लाभ है ?

पुत्र ने जो निष्कर्ष निकाला, उसे सुनकर गुरु बोले—मूर्ख, माता का उपकार अनन्त है और पुत्र की सेवा परिमित है। इस कारण वह उपकार से मुक्त नही हो सकता। पावनेदार जब कर्जदार के घर तकाजा करने जाता है, तब उसका सत्कार करना तो शिष्टाचार मात्र है। उस सत्कार से ऋण नहीं पट सकता। इसी प्रकार माता-पिता की सेवा करना शिष्टाचार मात्र है। इतना करने से पुत्र उनके उपकारो से मुक्त नही हो सकता। पर इससे यह मतलब नही निकलता कि माता-पिता की सेवा नहीं करनी चाहिये। अपने धर्म का विचार करके पुत्र को माता-पिता की सेवा करनी ही चाहिये। माता-पिता ने अपने धर्म का विचार करके तेरा पालन-पोषण किया है। नही तो क्या ऐसे माता-पिता नही मिलते, जो अपनी सतान के प्राण ले लेते हैं ?

गुरु की बात सुनकर माता को कुछ जोर बधा। उसने कहा-अब सुनले कि मेरा तुझ पर उपकार है या नही ? इसके बाद उसने गुरुजी से कहा—महाराज, यह मुझसे कहता है कि तूने पेट मे रखा है तो उसका भाड़ा ले ले। इस विषय मे शास्त्र क्या कहता है ?

प्रश्न सुनकर गुरुजी ने शास्त्र निकालकर बताया । उसमे लिखा था कि गौतम स्वामी के प्रश्न करने पर भगवान् ने उत्तर दिया कि इस शरीर मे तीन अंग माता के, तीन अंग पिता के और शेष अंग दोनो के हैं । मांस, रक्त और मस्तक माता के हैं । हाड, मज्जा और रोम पिता के हैं । शेष भाग माता और पिता दोनो के सम्मिलित हैं ।

माता ने कहा—बेटा ! तेरे शरीर का रक्त और मास मेरा है । हमारी चीजें हमे दे दे और इतने दिन इनसे काम लेने का भाड़ा भी चुकता कर दे ।

यह सब सुनकर बेटे की आँख खुली । उसे माता और पिता के उपकारों का ख्याल आया तो उनके प्रति प्रबल भक्ति हुई । वह पश्चाताप करके कहने लगा—मैं कुचाल चल रहा था । कुसंगति के कारण मेरी बुद्धि मलिन हो गई थी । इसके बाद वह गुरुजी के चरणो मे गिर पडा और कहने लगा—माता-पिता का उपकार तो मैं समझ गया पर उस उपकार को समझाने वाले का उपकार समझ सकना कठिन है । आपके अनुग्रह से मैं माता-पिता का उपकार समझ सका हू ।

कहने का आशय यही है कि मातृत्व को समझने के लिये सर्वप्रथम माता-पिता के प्रति श्रद्धा की भावना लाओ ।

भले ही पुत्र कितना भी पढ़ा-लिखा क्यो न हो, बुद्धि-वैभव कितना ही विशाल क्यो न हो, समाज मे कितनी ही प्रतिष्ठा क्यो न हो, फिर भी माता के समक्ष विनम्रता धारण करना पुत्र का कर्त्तव्य है । अगर पुत्र विनीत है तो उसके सद्गुणो का विकास ही होगा । प्रतिष्ठा मे वृद्धि ही होगी । [illegible] होने की तो कोई

सम्भावना ही नहीं की जा सकती। पुत्र अगर माता-पिता का आदर करेगा तो लोग भी उसका आदर करेंगे।

जो अविनीत है, जो माता-पिता की अवज्ञा करता है और जो माता पिता की इच्छा के विरुद्ध चलता है, वह कुल के लिये अंगार है। इसीलिये वह अविनीत कहलाता है।

## ७-संस्कारों का आरोपण

अविनय, अशिक्षा आदि दुर्गुणों को दूर करने का प्रयत्न सर्वप्रथम बाल्यावस्था मे ही माता के द्वारा किया जाना चाहिये। बचपन के संस्कार जीवन भर के लिये होते हैं। माता के सभी अच्छे या बुरे संस्कार बच्चे पर पडे बिना नही रहते। माता अगर चाहे तो अपने सद्गुणों द्वारा बच्चे को गुणवान् बना सकती है।

ज्ञानियो का कथन है कि बालक का जितना सुधार बचपन मे होता है, उतना और कभी नही होता। मान लीजिये किसी वृक्ष का अंकुर अभी छोटा है। वह फल-फूल नही देता। उस अंकुर से लाभ तो फल-फूल आने पर होगा, लेकिन फल-फूल आदि की समस्त शक्तिया उस अंकुर मे उस समय भी अव्यक्त रूप मे मौजूद रहती हैं। अंकुर अगर जल जाय तो फल-फूल आने की कोई क्रिया नही होती।

इसी प्रकार बालक मे मनुष्य की सब शक्तिया छिपी हुई हैं। योग्य दिशा मे उसका विकास होने पर समय पाकर उसकी शक्तिया खिल उठती हैं। मगर बालक को पालने मे डालकर दबा रखने से उसका विकास नही होता। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने एक जगह लिखा

है कि "पाच वर्ष तक के बालक को सिले कपडे पहनाने की आवश्यकता नही है । इस अवस्था मे बालक को कपडो मे लाद लेने का परिणाम वही होता है, जो अकुर को ढाक देने से होता है। बालक कपडा पहनने से दबा रहता है । प्रकृति ने उसे ऐसी सज्ञा दी है कि कपडा उसे सुहाता नही और जबर्दस्ती करने पर वह रोने लगता है। लेकिन उसके रोने को मा-बाप उसी तरह नही सुनते जैसे भारतीयो के रोने को अग्रेज नही सुनते थे। माताए अपने मनोरजन के लिये या बडप्पन दिखाने के लिये बच्चे को कपडो मे जकड देती हैं और इतने मे सतुष्ट न होकर हाथ-पैरो मे गहनो की बेडिया भी डाल देती हैं। पैरो मे बूट पहना देती हैं । इस प्रकार जैसे उगते हुए अकुर को ढक कर उसका सत्यानाश किया जाता है, उसी प्रकार बालक के शरीर को ढक कर, जकडकर उसका विकास रोक दिया जाता है। अशिक्षित स्त्रिया बालक के लिये गहने न मिलने पर रोने लगती हैं, जबकि उन्हे अपना और बच्चे का सौभाग्य मानना चाहिए ।"

बच्चो के बचपन मे ही सस्कार सुधारने चाहिये। बडे होने पर तो वे अपने आप सब बातें समझने लगेगे । मगर उनका झुकाव और उनकी प्रवृत्ति बचपन मे पडे सस्कारो के अनुसार ही होगी ।

आजकल बहुत कम माताए बच्चो को बचपन मे दी जाने वाली शिक्षा के महत्त्व को समझती है और अधिकाश माता-पिता शिक्षा को आजीविका का मददगार समझकर, धनोपार्जन का साधन मान कर ही बच्चो को शिक्षा दिलाते है। इसी कारण वे शिक्षा के विषय मे भी कजूसी करते है। आम छोटे बच्चो के लिये कम वेतन वाले छोटे अध्यापक नियत करते है किन्तु यह बहुत बडी भूल है। छोटे बच्चो मे अच्छे सस्कार डालने के लिये वयस्क

अनुभवी अध्यापक की आवश्यकता होती है।

एक यूरोपियन ने अपनी लडकी को शिक्षा देने के लिये एक विदुषी महिला नियुक्त की। । उनसे एक सज्जन ने पूछा—आपकी लडकी तो बहुत छोटी है और प्रारम्भिक पढाई चल रही है, उसके लिये इतनी बडी विदुषी की क्या आवश्यकता है ? उस यूरोपियन ने उत्तर दिया—'आप इसका रहस्य नही समझ सकते। छोटे बच्चो मे जितने जल्दी सस्कार डाले जा सकते हैं, बडो मे नही। यह बालिका अच्छा शिक्षण पाने से थोडे ही दिनो मे बुद्धमती बन जाएगी।'

प्राचीनकाल के शिक्षक विद्यार्थियो को यह समझाते थे कि माता-पिता का क्या दर्जा है और उनके प्रति पुत्र का क्या कर्त्तव्य है ? आज भी यह बात सिखाने की नितात आवश्यकता है।

बालक को सस्कार-सम्पन्न बनाने का उत्तरदायित्व, जैसा कि पहले कहा गया है, शिक्षको पर तो है ही, मगर पिता और विशेषकर ही नही परन्तु अनिवार्य रूप से माता पर है। माता के सहयोग के बिना शिक्षक अपने प्रयत्न मे पूरी तरह सफल नही हो सकता।

जो यह कहा गया है कि सन्तान तो पशु भी उत्पन्न करते हैं, ठीक ही है। इसमे मनुष्य की कोई विशेषता नही। मनुष्य की विशेषता सन्तान का समुचित रूप से पालन-पोषण करके सुसस्कारी बनाने मे है।

शिक्षा के साथ बालक के माता-पिता का सहयोग नितांत जरूरी है। मान लीजिये, शिक्षक पाठशाला मे बालक को सत्य बोलने की सीख देता है और स्वय भी सत्य बोलकर उसके सामने आदर्श

उपस्थित करता है, मगर बालक जब घर पर आता है और अपनी माता को एक पैसे के लिये झूठ बोलते देखता है तो पाठशाला का उपदेश समाप्त हो जाता है। ऐसी परिस्थिति मे वह किसका अनुकरण करे? शिक्षक का या माता का? शिक्षक ने ही तो बालक को मा के प्रति भक्ति-भाव रखने का उपदेश दिया है। उस उपदेश के अनुसार भी वह माता के असत्य से घृणा नही कर सकता। बहुत सूक्ष्म विचार करने की उसमे बुद्धि ही कहा है? बालक के सामने जब इस प्रकार की गडबड उपस्थित हो जाती है, इस प्रकार की विरोधी परिस्थितिया उत्पन्न होती हैं तो वह अपने आप ही मार्ग निकाल लेता है। वह सोचता है—कहना तो यही चाहिये कि असत्य मत बोलो, सत्य भाषण ही करो, मगर काम पडने पर मा की तरह असत्य का प्रयोग करना चाहिये। ऐसा ही कुछ निर्णय करके बालक या तो ढोगी बन जाता है या असत्यवादी, किन्तु सत्य का उपदेशक बन जाता है। इस प्रकार का विरोधी वातावरण बालको के सुधार मे बहुत बाधक है।

अतएव आज घर मे और पाठशाला मे जो महान् अन्तर है उसे मिटाना पडेगा। प्रत्येक घर पाठशाला का पूरक हो और पाठशाला घर की पूर्ति करे, तभी दोनो मिलकर बालको के सुधार का महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकेगे।

का असली मातृत्व है ।

प्राचीनकाल के माता-पिता बीस-बीस वर्ष तक ब्रह्मचारी रहकर सन्तान उत्पन्न करते थे । इस प्रकार सयमपूर्वक रह कर उत्पन्न की हुई सन्तान ही महापुरुष बन सकती है । आजकल के लोग समझते हैं, हनुमान का नाम जप लेने से ही शारीरिक शक्ति बढ जाती है । उन्हे यह नही मालूम कि हनुमान के समान वीर-पुत्र किस प्रकार उत्पन्न हुआ था ? मनमुटाव हो जाने के कारण अजना और पवनकुमार दोनो बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करते रहे थे । तभी ऐसी वीर सन्तति उत्पन्न हुई थी । अच्छी और सदाचारी सन्तान उत्पन्न करने के लिये पहले माता-पिता को अच्छा और सदाचारी बनना चाहिये । बबूल के पेड मे आम नहीं लगता ।

माता अपने बालक को जैसा चाहे बना सकती है । माता चाहे तो अपने पुत्र को वीर भी बना सकती है और चाहे तो कायर भी बना सकती है । साधारणतया सिह का बालक सिह ही बन सकता है और सूअर का बालक सूअर ही बनता है । उनमे किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता परन्तु मनुष्य को इच्छानुसार वीर या कायर बनाया जा सकता है ।

एक बार एक क्षत्रिय ने दूसरे क्षत्रिय को जान से मार डाला । मृत क्षत्रिय की पत्नी उस समय गर्भवती थी । वह क्षत्रिय-पत्नी विचार करने लगी—मेरे पति मे थोडी-बहुत कायरता थी, तभी तो उनकी अकाल-मृत्यु हुई ! वे वीर होते तो अकाल मे मृत्यु न होती । क्षत्रिय-पत्नी की इस वीर भावना का उसके गर्भस्थ शिशु पर प्रभाव पडा और आगे जाकर वह पुत्र वीर क्षत्रिय बना ।

क्षत्रिय-पत्नी ने अपने बालक को वीरोचित शिक्षा देकर वीर

क्षत्रिय बनाया। क्षत्रिय-पुत्र वीर होने के कारण राजा का कृपा-पात्र बन गया।

एक दिन राजा ने क्षत्रिय-पुत्र की वीरता की परीक्षा लेने का विचार किया। राजा ने सोचा—शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिये क्षत्रिय-पुत्र को भेजने से एक पथ दो काज होगे। एक तो शत्रु वश मे आ जायगा, दूसरे क्षत्रिय-पुत्र की परीक्षा भी हो जाएगी।

इस प्रकार विचार कर राजा ने क्षत्रिय-पुत्र को शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिये सेना के साथ भेज दिया। क्षत्रिय-पुत्र वीर था। वह तैयार होकर शत्रु को जीतने के लिये चल दिया। उसने शत्रु की सेना को अपनी वीरता का परिचय दिया, परास्त किया और शत्रु राजा को जीवित कैद करके राजा के सामने उपस्थित किया। राजा क्षत्रिय-पुत्र का पराक्रम देखकर बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने उचित पुरस्कार देकर उसका सत्कार किया। सारे गांव मे क्षत्रिय-पुत्र की वीरता की प्रशसा होने लगी। जनता ने भी उसका सम्मान किया। क्षत्रिय-पुत्र प्रसन्न होता हुआ अपने घर जाने के लिये निकला। रास्ते मे वह विचार करने लगा—आज मेरी मा मेरी पराक्रम-गाथा सुनकर बहुत प्रसन्न होगी। घर पहुच कर वह सीधा माता को प्रणाम करने व आशीर्वाद लेने गया। पर जब वह माता के पास पहुचा तो उसने देखा—माता रुष्ट है और पीठ देकर बैठी है। माता को रुष्ट व क्रुद्ध देखकर वह विचार करने लगा—मुझसे ऐसा कौनसा अपराध बन गया है कि माता क्रुद्ध और रुष्ट हुई है।

मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव ।

अर्थात्—माता देव तुल्य है, पिता देव तुल्य है और आचार्य देव तुल्य है। अतएव माता-पिता और आचार्य की आज्ञा की अवज्ञा नही करनी चाहिये ।

यह सुशिक्षा मिलने के कारण क्षत्रिय-पुत्र ने नम्रतापूर्वक माता से कहा—मा, मुझसे ऐसा क्या अपराध वन गया है कि आप मुझ पर इतनी क्रुद्ध हैं ? मेरा अपराध मुझे वताइये, जिससे मैं उसके लिये क्षमायाचना कर सकू ?

माता बोली—जिसका पितृहन्ता मौजूद है, उसने दूसरे शत्रु को जीता भी तो क्या ?

क्षत्रिय-पुत्र ने चकित होकर कहा—क्या मेरे पिता का घात करने वाला मौजूद है ?

माता—हा, वह अभी जीवित है ।

क्षत्रिय-पुत्र—ऐसा है तो अभी तक मुझे बताया क्यो नही, मा ?

माता—मैं तेरे पराक्रम की जाच कर रही थी। अब मुझे विश्वास हो गया कि तू वीर-पुत्र है । जब तू दूसरे शत्रु को परास्त कर चुका है तो अब अपने पिता का घात करने वाले शत्रु को भी अवश्य पराजित कर सकेगा । तेरा सामर्थ्य देखे बिना शत्रु के साथ भिड जाने को कैसे कहती ?

क्षत्रिय-पुत्र माता का कथन सुनकर उत्तेजित होकर कहने लगा—मैं अभी शत्रु को पराजित करने जाता हू । अपने पिता के

वैर का बदला लिये बिना हर्गिज नहीं लौटूंगा। इतना कहकर वह उसी समय चल दिया।

दूसरी ओर क्षत्रिय-पुत्र के पिता की हत्या करने वाले क्षत्रिय ने सुना कि जिसे मैंने मार डाला, उसका पुत्र क्रुद्ध होकर अपने पिता का वैर भजाने के लिये मेरे साथ लडाई करने आ रहा है तो यह सुनकर उस क्षत्रिय ने विचार किया—वह बडा वीर है और उसकी शरण मे जाना ही हितकर है। इसी मे मेरा कल्याण है। इस तरह विचार करके वह स्वय जाकर क्षत्रिय-पुत्र के अधीन हो गया। क्षत्रिय-पुत्र उस पितृ घातक शत्रु को लेकर माता के पास आया। उसने माता से कहा—इसी क्षत्रिय ने मेरे पिता की हत्या की है। इसे पकड कर तुम्हारे पास ले आया हू। अब तुम जो कहो, वही दण्ड इसे दिया जाय।

माता ने अपने पुत्र से कहा—इसी से पूछ देख कि इसके अपराध का इसे क्या दण्ड मिलना चाहिये ?

पुत्र ने शत्रु से पूछा—बोलो, अपने पिता का बदला तुमसे किस प्रकार लू ?

शत्रु ने उत्तर दिया—तुम अपने पिता के वैर का बदला उसी प्रकार लो, जिस प्रकार शरण मे आए हुए मनुष्य से लिया जाता है।

हुआ कितना ही बडा अपराधी क्यो न हो, फिर भी भाई के समान है। अतएव यह तेरा शत्रु नहीं, भाई है। मैं अभी भोजन बनाती हूं। तुम दोनो साथ-साथ बैठकर आनन्द से जीमो और प्रेमपूर्वक रहो। मैं यही देखना चाहती हू।

माता का कथन सुन कर पुत्र ने कहा—माताजी! तुम पितृघातक शत्रु को भी भाई बनाने को कहती हो, पर मेरे हृदय मे जो क्रोधाग्नि जल रही है, उसे किस प्रकार शात करू ?

माता ने कहा—पुत्र, किसी मनुष्य पर क्रोध उतार कर क्रोध शात करना कोई वीरता नही है। क्रोध पर ही क्रोध उतार कर शात करना अथवा क्रोध पर विजय प्राप्त करना ही सच्ची वीरता है।

माता का आदेश पाकर पुत्र ने प्रसन्नतापूर्वक अपने पितृहन्ता शत्रु को गले लगाया। दोनो ने सगे भाइयो की तरह साथ-साथ भोजन किया।

इसे कहते हैं, चतुर माता की सच्ची सीख! पुत्र को सन्मार्ग पर चलाना ही तो सच्चा मातृत्व है।

आजकल पुत्र को जन्म देने की लालसा का तो पार ही नही है, पर उसमे उत्तम सस्कार डालने की ओर शायद ही किसी का ध्यान जाता है। माताए पुत्र को पाकर ही अपने को धन्य मान बैठती हैं। पर पुत्र का जन्म देते ही कितना महत्त्वपूर्ण उत्तर-दायित्व सिर पर आ जाता है, यह कल्पना बहुत माताओ को नही है। पुत्र को जन्म देकर उसे सुसस्कृत न बनाना घोर नैतिक अप-राध है। अगर कोई मा-बाप अपने बालक की आखो पर पट्टी बाध दें तो आप उन्हे क्या कहेंगे ?

निर्दयी !

बालक मे देखने की जो शक्ति है, उसे रोक देना माता-पिता का धर्म नही है। इसके विपरीत उसके नेत्र मे अगर कोई रोग है, विकार है, तो उसे दूर करना उनका कर्त्तव्य है।

यह बाह्य धर्म-चक्षु की बात है, चर्म-चक्षु तो बालक के उत्पन्न होने के पश्चात् कुछ समय मे अपने आप ही खुल जाते हैं, पर हृदय के चक्षु इस तरह नही खुलते। हृदय के चक्षु खोलने के लिये सत्संस्कारों की आवश्यकता पड़ती है। बालको को अच्छी शिक्षा देने से उनके जीवन का निर्माण होता है।

७

# सन्तति-नियमन

इस जमाने मे जननेन्द्रिय की लोलुपता ने प्रचण्ड रूप धारण किया है और इसके फलस्वरूप सन्तानोत्पत्ति मे वृद्धि हो रही है। सन्तानो की इस बढती को देखकर कई लोग यह सोचने लगे हैं कि गरीब भारतवर्ष के लिए सन्तान-वृद्धि एक असह्य भार है। इस भार से भारत को बचाने के लिए उपाय ईजाद किया गया है कि सन्तान की उत्पत्ति के स्थान को ही नष्ट कर दिया जाय! न रहेगा बास, न बजेगी बासुरी!

यह उपाय सन्तति-नियमन या सन्तति-निरोध कहलाता है और इसी विषय पर मुझे अपने विचार प्रकट करने हैं। इस विषय का न तो मेरा अधिक अभ्यास है और न अध्ययन ही। पर समाचारपत्रो और कुछ पुस्तको को पढ कर मैं यह जान पाया हू कि कुछ लोग बडे जोरशोर से कहते हैं कि—"बढती जाती हुई सन्तान को अटकाने के लिए शस्त्र या औषध द्वारा स्त्रियो की जनन-शक्ति का नाश कर दिया जाय, उनके गर्भाशय का आपरेशन कर डाला जाय, या फिर उनके गर्भाशय को इतना निबल बना दिया

जाय कि सन्तान की पैदाइश हो ही न सके ।" इस उपाय द्वारा सन्तति-निरोध करने की आवश्यकता बतलाते हुए वे लोग कहते हैं—

संसार आज बेकारी के बोझ से दबा जा रहा है । भारत-वर्ष तो विशेष रूप से बेकारी की बीमारी का मारा कराह रहा है । ऐसी दुर्दशा में खर्च में वृद्धि करना उचित कैसे कहा जा सकता है ? इधर सन्तान की वृद्धि के साथ अनिवार्य रूप से व्यय में वृद्धि होती है । सन्तान जब उत्पन्न होती है, तब भी खर्च होता है, उसके पालन-पोषण में खर्च होता है, उसकी शिक्षा-दीक्षा में भी खर्च उठाना पड़ता है । इस दशा में जबकि अपना और अपनी पत्नी का पेट पालना भी दूभर हो पड़ा है, सन्तान उत्पन्न करके खर्च में वृद्धि करना आर्थिक संकट को अपने हाथों आमन्त्रण देना है । आर्थिक संकट के साथ अन्य अनेक कष्ट बढ़ जाते हैं । अतएव स्त्रियों की जनन-शक्ति नष्ट करके यदि सन्तानोत्पत्ति से छुटकारा पा लिया जाय तो बहुत से कष्टों से बचा जा सकता है ।

स्वातन्त्र्य का युग है । सबको अपने-अपने विचार प्रकट करने का अधिकार है। यदि यह सच है तो मुझे भी अपने विचार प्रकट करने का अधिकार है । अतएव इस सम्बन्ध मे जो बात मेरे मन मे आई है, वह प्रकट कर देना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हू ।

कल्पना करो कि एक अत्यन्त सुन्दर बगीचा है । इस बगीचे मे भाति-भाति के वृक्ष हैं । इन वृक्षो मे एक बहुत ही सुन्दर वृक्ष है। भारतीयता की दृष्टि से इस सुन्दर वृक्ष को आम का पेड समझा जा सकता है क्योंकि आम भारतवर्ष का ही वृक्ष है, ऐसा सुना जाता है ।

आम के वृक्ष मे यद्यपि फल बहुत लगते हैं किन्तु समय के परिवतन के कारण अथवा जमीन नीरस हो जाने के कारण जो फल पहले सुन्दर, स्वादिष्ट और लाभकारक होते थे, उनके बदले अब उसमे नीरस और हानिकारक फल आने लगे हैं । अब कुछ लोग, जो जन-समाज के हितैषी होने का दावा करते हैं, आपस मे मिल कर यह विचार करने लगे कि आम के फलों से जनता मे फैलने वाली बीमारी का निवारण किस प्रकार किया जाय ?

उनमे से एक ने कहा—इसमे आम के पेड का तो कोई अपराध नही है । पेड बेचारा क्या कर सकता है ? उसके फलो से जनता को हानि पहुच रही है और जनता को उस हानि से बचाने का भार बुद्धिमानो पर है, अतएव बुद्धिमानो को ऐसा कोई उपाय खोजना चाहिए, जिससे यह सुन्दर वृक्ष भी नष्ट न हो और उसके फलो से जनता को हानि भी न पहुचे ।

दूसरे ने कहा—मैं ऐसी एक रासायनिक औषधि जानता हूं, जिसे इस वृक्ष की जड़ मे डाल देने से वृक्ष फल देना ही बन्द कर

गा। ऐसा करने से सारा झंझट मिट जायगा। उस औषधि के प्रयोग से न तो वृक्ष मे फल लगेंगे, न लोग उसके फल खा-पाएगे। तब फलो द्वारा होने वाली हानि आप ही बन्द हो जायगी।

तीसरे ने कहा—वृक्ष मे फल ही न लगने देना उसकी स्वाभाविकता का विनाश करने के समान है। ऐसा किया जायगा तो आम वृक्ष का नाम-निशान तक शेष न बचेगा। इसलिए यह उपाय उचित नहीं प्रतीत होता।

चौथे ने कहा—मैं एक ऐसा उपाय बता सकता हू, जिससे वृक्ष मे अधिक फल नही आने पाए गे। जितने फलो की आवश्यकता होगी, उतने ही फल आए गे और शेष सारे नष्ट हो जाए गे।

पांचवां बोला—इससे लाभ ही क्या हुआ ? जितने भी फल नष्ट होने से बच रहेंगे, वे हानिकारक तो होगे ही, वे नीरस, निःसत्व और खराब भी होगे। तो फिर इस उपाय से दुनिया को क्या लाभ होगा ? मैं एक ऐसा उपाय जानता हू, जिससे वह वृक्ष भी सुन्दर और सुदृढ बनेगा और इसके फल भी स्वादिष्ट और स्वास्थ्यकारी होंगे। साथ ही जितने फलो की आवश्यकता होगी, उतने ही फल उसमे लगेंगे, अधिक नही लगेंगे। वे फल इतने मधुर और लाभप्रद होंगे कि उनमे किसी को हानि पहुचने की सम्भावना तक न होगी, वरन् लाभ ही लाभ होगा।

चौथे सज्जन ने कहा—यह एकदम अनहोनी बात है। ऐसा कोई भी उपाय सफल नही हो सकता। इस उपाय से वृक्ष भी नही सुधर सकता और आवश्यकता के अनुसार परिमित फल भी नही आ सकते।

पांचवें ने उत्तर दिया—भाई, तुम्हारा उपाय कारगर हो

सकता है और मेरा उपाय नही, यह क्यो ? मेरी बात का समर्थन करने वाले अनेक प्रमाण मौजूद हैं। प्राचीनकालीन शास्त्र से भी मेरी बात पुष्ट होती है और वर्तमानकालीन व्यवहार से भी सिद्ध हो सकती है। ऐसी दशा मे प्रत्यक्ष-सिद्ध वस्तु को भी स्वीकार न करना और असम्भव कहकर टाल देना, कहा तक उचित है ?

इस पाचवें सज्जन ने अपने कथन के समर्थन मे ऐसे प्रमाण उपस्थित किये जिनसे प्रभावित होकर सबने एक स्वर से उसका कथन स्वीकार कर लिया और उसके द्वारा बताया हुआ उपाय सबने पसन्द किया

यह एक दृष्टात है और सन्तति-नियमन के सम्बन्ध मे इसे इस प्रकार घटित किया जा सकता है :-

यह ससार एक बगीचे के समान है। संसारी जीव इसी बगीचे के वृक्ष हैं। जीव-रूपी इन वृक्षो मे मानव वृक्ष सबसे श्रेष्ठ है। इस मानव-रूपी वृक्ष मे किसी कारण से अति सन्तान-रूप फल बहुत लगते हैं और ये फल निःसत्व और हानिकारक होने से भार-रूप प्रतीत होते हैं। अति-सतति की बदौलत मनुष्य के बल-वीर्य का ह्रास हो रहा है, खर्च का भार बढ गया है, बेकारी बढ़ गई है अतएव सन्तान भी दुःखी हो रही है।

आज के सुधारक—जो अपने को ससार के और विशेषतः मानव-समाज के हितैषी मानते हैं—इस दुरावस्था को समझे और उसे दूर करने के लिए उपायो पर विचार करने लगे।

इन सुधारकों मे से एक कहता है—विज्ञान की बदौलत मैंने एक उपाय ऐसा खोज निकाला है, जिससे मनुष्य रूपी वृक्ष

कायम रहेगा, उसके सुख-सौंदर्य को किसी प्रकार की क्षति न पहुंचेगी और साथ ही उस पर प्रति संतति-रूप भार भी न पड़ेगा। और वह उपाय यह है कि शस्त्र या औषध के प्रयोग से गर्भाशय का सफाया कर दिया जाय।

इस प्रकार संतति-नियमन के लिये एक व्यक्ति गर्भाशय का नाश करने की सम्मति देता है। दूसरा कहता है कि ऐसा करने से तो मनुष्य-समाज ही समूल नष्ट हो जायगा, अतएव यह उपाय प्रयोजनीय नहीं है।

आजकल के सुधारक बढ़ती हुई संतति का निरोध करने के लिये इसी को अन्तिम उपाय मानते हैं। बहुत से लोगों को यह उपाय पसन्द भी आ गया है और वे इसका प्रचार भी करते हैं। सुना तो यहां तक जाता है कि इस उपाय का प्रचार करने के लिए सरकार भी सहायता दे रही है।

लोग यह सोचते हैं कि इस उपाय का प्रयोग करने से हमारे विषय-भोग में भी बाधा नहीं पड़ेगी और हमारे ऊपर संतान का बोझ भी न पड़ेगा। प्रति-संतति की उलझन से भी छुटकारा मिल जायगा और आमोद-प्रमोद में भी कमी न आने पड़ेगी। जान पड़ता है, इसी विचार से प्रेरित होकर लोग इस उपाय का अवलम्बन करने के लिए लालायित हो उठे हैं।

को विषय–भोग मे बाधक माना जा रहा है। इस विघ्न–बाधा को हटाकर, अपनी काम–लिप्सा को निरकुश और निर्विघ्न बनाने के जघन्य उद्देश्य से प्रेरित होकर ही लोग उपर्युक्त उपाय काम मे लाना पसन्द करते हैं। जहा विषय-भोग की वासना मे वृद्धि होती है, वहां इस प्रकार की कुत्सित मनोवृत्ति होना स्वाभाविक है। गीता मे कहा है—

> ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते,
> संगात्सञ्जायते काम कामात् क्रोधोऽभिजायते।
> क्रोधाद् भवति सम्मोह सम्मोहात्स्मृतिविभ्रम,
> स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो, बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥

इन्द्रिय-लोलुपता किस प्रकार विनाश को जन्म देती है, इसका स्वाभाविक क्रम गीता मे इस प्रकार बताया गया है.—

विषयो का विचार करने से संग–उत्पन्न होता है, सग से काम की उत्पत्ति होती है। काम से क्रोध, कोध से सम्मोह अर्थात् अज्ञान का जन्म होता है, अज्ञान से स्मृति का नाश होता है, स्मृति के नाश के बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और बुद्धि–भ्रष्ट हो जाने के फल–स्वरूप सर्वनाश हो जाता है।

आज सतति–नियमन के लिए जिस दृष्टि को सम्मुख रखकर उपायो की आयोजना की जा रही है और जिन उपायो को कल्याणकारी समझा जा रहा है, उनका भावी परिणाम देखते हुए यही कहा जा सकता है कि यह सब विनाश का पथ है।

जन–साधारण के विचार के अनुसार विषय–भोगो का त्याग

नहीं किया जा सकता। इसी भ्रांत विचार के कारण विषय लालसा जागृत होकर विषय-भोग का सेवन किया जाता है। अधिक से अधिक स्त्री-संग करके विषयों का सेवन किया जाय, ऐसी इच्छा की जाती है। इस इच्छा की पूर्ति के लिए कामोत्तेजक गोलियां, ताकतनी गोलियां आदि जीवन को बर्बाद करने वाली चीजों का उपयोग किया जाता है। आजकल विषय-भोग की लालसा इस सीमा तक बढ़ गई है कि जीवन को मटियामेट करने वाली, कामवर्धक चीजों के विज्ञापनों को रोकने की ओर तो तनिक भी ध्यान नहीं दिया जाता, उलटे संतति रोकने के लिए कृत्रिम उपायों का आश्रय लिया जा रहा है।

कहने का आशय यह है कि स्त्री-संग करने से कामवासना जागृत होती है और उससे क्रोध उत्पन्न होता है। जो कामवासना को परितृप्त करने में बाधक हो, उस पर क्रोध आना स्वाभाविक ही है। सन्तान पर क्रोध आने का यही प्रधान कारण है। इस भावना के कारण अपनी प्यारी संतान भी शैतान का अवतार प्रतीत होती है। यही कारण है कि संतान से खर्च में वृद्धि होती है और वह भोग भोगने में विघ्न उपस्थित करती है। इस कारण से ऐसे उपायों की योजना की जाती है, जिनसे संतान पैदा ही न होने पाए। किन्तु यह वृत्ति अत्यन्त भयंकर है। जिस दृष्टि को सन्मुख रखकर आज संतान पर क्रोध किया जाता है, उसके प्रति [illegible] किया जा रहा है और उसकी उत्पत्ति का नाश किया जा रहा है, इस दृष्टि पर यदि गहरा और दूरदर्शितापूर्ण विचार किया जाय तो जान पड़ेगा कि यह दृष्टि घोर-घोर बढ़ती हुई कुछ भी काम न कर सकने वाले—अतएव भार-स्वरूप समझे जाने वाले—वृद्ध और अपाहिज पुरुषों के विनाश के लिए प्रेरित करेगा। [illegible] जिस प्रकार सन्तान के प्रति व्यवहार किया जा रहा है, उसी

प्रकार वृद्धों के प्रति भी निर्दयतापूर्ण व्यवहार करने की भावना उत्पन्न होगी। फिर स्त्रियां भी यह सोचने लगेंगी कि मेरा पति अब अशक्त और अयोग्य हो गया है, यह मेरे लिये अब भार-स्वरूप है और मेरी स्वतन्त्रता में बाधक है। ऐसी दशा में क्यों न उसका विनाश कर डाला जाय? पुरुष भी इसी प्रकार स्त्रियों को अयोग्य एवं असमर्थ समझ कर उनके विनाश का विचार करेंगे। इस प्रकार शस्त्र या औषध का जो कृत्रिम उपाय, खर्च से बचने और संतति-नियमन के काम में लाया जाता है, वही उपाय स्त्री और पुरुष के प्राणों का संहार करने के काम में लाया जाने लगेगा। परिणाम यह होगा कि मानवीय सद्गुणों का नाश हो जायगा, समाज की शृंखला भंग हो जायगी, हिंसा-राक्षसी की चंडाल-चौकडी मच जायगी और जो भयंकर काल अभी दूर है, वह एकदम नजदीक आ जायगा।

सन्तति-नियमन के भयंकर और प्रलयंकर उपाय से और भी अनेक अनर्थ उत्पन्न हो सकते हैं। इस उपाय के विषय में स्त्रियां यह सोच सकती हैं कि सन्तान की बदौलत ही मेरे गर्भाशय का आपरेशन किया जाता है, अतएव आपरेशन की झंझट से बचने के लिए सन्तान उत्पन्न होते ही क्यों न उसका गला घोट दूं ?

शस्त्र-प्रयोग से जब सन्तति की उत्पत्ति रोकी जा सकती है और इस प्रकार संतति के प्रति अन्तःकरण में बसने वाली स्वाभाविक ममता और दया को तिलांजलि दी जा सकती है, तो यह क्या असम्भव है कि एक दिन ऐसा आ जाय जब लोग अपनी लूली-लंगडी या अविनीत संतान का भी वध करने पर उतारू हो जाएं ?

इस प्रकार संतति-नियमन के लिए किये जाने वाले कृत्रिम

उपायों के कारण घोर अनर्थ फैल जाएंगे और मानवीय अन्तःकरण में विद्यमान नैसर्गिक दया आदि सद्भावनाएं समूल नष्ट हो जायेंगी।

यहां एक आशंका की जा सकती है। वह यह कि जो संतान उत्पन्न हो चुकी हो, उसे नष्ट करना तो पाप है, मगर संतान को उत्पन्न होने देने के लिए गर्भाशय का आपरेशन कराना पाप कैसे कहा जा सकता है?

इस आशंका का समाधान यह है। मान लीजिये एक मनुष्य किसी नौका में छेद कर रहा है और उस पर बहुत से मनुष्य सवार हैं। वह मनुष्य नौका पर सवार मनुष्यों को तो मार नहीं रहा है, सिर्फ नौका में छेद कर रहा है। तो क्या यह कहा जा सकता है कि वह सचमुच उन आदमियों के प्राण नहीं ले रहा है? यदि यह नहीं कहा जा सकता तो यह कैसे कहा जा सकता है कि उत्पत्तिस्थान को नष्ट करके अपने विषय भोग चालू रखने के लिए हिंसा नहीं की जा रही है? इसके अतिरिक्त जब मनुष्य की परोक्ष हिंसा से घृणा नहीं होगी, वरन् जान बूझकर परोक्ष हिंसा की जायगी, तो प्रत्यक्ष हिंसा करने में घृणा उठ जायगी।

का पालन यदि पूर्ण रूप से किया जाय तो सतति-नियमन की आवश्यकता ही प्रतीत नही होगी।

इस प्रकार ब्रह्मचर्य का आश्रय लेने से सतति-नियमन की समस्या सहज ही सुलझ जाती है। फिर उसके लिए हानिकारक उपायो का अवलम्बन करने की आवश्यकता नही रह जाती। सन्तति-नियमन के लिये ब्रह्मचर्य अमोघ उपाय है पर विलासी लोग उसका उपयोग न करते हुए चाहते है कि न तो विषय-भोग का परित्याग करना पडे और न सतान ही उत्पन्न होने पावे और इस दुरभिसन्धि की पूर्ति के लिए शस्त्र-प्रयोग आदि उपायो से जन-शक्ति का ही नाश करने की तरकीबें खोजते हैं पर स्मरण रखना, यदि ब्रह्मचर्य का पालन न करके कृत्रिम उपायो द्वारा सन्तति नियमन किया जायगा तो इससे भविष्य मे अपार और असीम हानिया होगी। ब्रह्मचर्य का पालन न करते हुए संतान को कृत्रिम साधनो द्वारा रोका जायगा और पानी की भाति वीय का दुरुपयोग किया जायगा तो निर्बलता मानव समाज को ग्रस लेगी और तब सन्तान की अपेक्षा मनुष्य स्वय अपने लिए भार-रूप बन जायगा, ऐसा भार जिसे सम्भालना कठिन हो जायगा।

सन्तति-नियमन के लिए ब्रह्मचर्य ही अमोघ उपाय है—यही प्रशस्त साधन है। इस अमोघ उपाय की उपेक्षा करके—इसका तिरस्कार करके कृत्रिम साधनो से सतति-नियमन करना और विषय-भोग का व्यापार चालू रखना निसर्ग के नियमो का अतिक्रमण करना है और नैसर्गिक नियमो का अतिक्रमण करके कोई भी व्यक्ति और कोई भी समाज सुखी नही हो सकता। यदि सतति-नियमन का उद्देश्य विषय भोग का सेवन नही है, किन्तु आर्थिक और शारीरिक निर्बलता के कारण ही सन्तति-नियमन की

आवश्यकता का प्रतिपादन किया जाता है, तो भी ब्रह्मचर्य ही एक-मात्र अमोघ उपाय है।

कोई यह कह सकता है कि सन्तति नियमन के लिए ब्रह्मचर्य उत्तम उपाय तो है, पर विषय-भोग की इच्छा को रोक सकना शक्य नहीं है। ऐसी लाचारी की हालत में ब्रह्मचर्य का उपाय किस प्रकार काम में लाया जाय?

किसी उपवास चिकित्सक के पास कोई रोगी जाय और चिकित्सक से कहे कि अपने रोग का निवारण करना चाहता हूँ और उपवास-चिकित्सा-पद्धति को अच्छा भी मानता हूँ, पर उपवास करने में असमर्थ हूँ। तो चिकित्सक उस रोगी को क्या उत्तर देगा? निस्सन्देह वह यही कह सकता है कि अगर उपवास नहीं कर सकते तो आपके रोग की औषधि इस चिकित्सालय में नहीं है। इसी प्रकार जब तुम विषय-भोग की इच्छा को जीत नहीं सकते, तो ब्रह्मचर्य के सिवाय और क्या इलाज है? तुम ब्रह्मचर्य पालन नहीं करना चाहते और विषय भोग की प्रवृत्ति चालू रखकर सन्तति का नियमन करना चाहते हो तो इसका अर्थ यही है कि तुम सन्तति-नियमन के सच्चे उपाय को काम में नहीं लाना चाहते, बल्कि विषय-वासना की पूर्ति में तुम्हें सन्तान बाधक जान पड़ती है, इसलिये उसका निरोध करना चाहते हो।

कामना पर विजय प्राप्त करना तनिक भी कठिन न होगा ।

मर्यादित ब्रह्मचर्य का पालन करके उत्पन्न की हुई सन्तान कितनी बलिष्ठ होती है, इस बात को समझने के लिए हनुमान की कथा पर विचार करो। हनुमान हमे बल देंगे इस भावना से लोग उसकी पूजा करते हैं, पर हनुमान की मूर्ति पर तेल या सिंदूर पोत देने से ही क्या बल की प्राप्ति हो सकती है ? हनुमान को जिस बल की प्राप्ति हुई थी, वह ब्रह्मचर्य के प्रताप से हुई थी। वे शील के ही पुत्र थे। पवन, महासुन्दरी अन्जना का पाणिग्रहण करके उन्हें अपने घर लाये । फिर अन्जना के प्रति उनके हृदय मे किंचित् सन्देह उत्पन्न हो गया और इस कारण उन्होंने अ जना का परित्याग कर दिया । उन्होने इस अवस्था मे अपने पर पूर्ण नियन्त्रण रखा। अंजना ने यह समझ लिया था कि पतिदेव को मेरे विषय मे शका उत्पन्न हो गई है और इसी कारण वे अपने ऊपर पूर्ण अंकुश रखते हुए मुझसे अलग-अलग रहते हैं। यह समझ कर अ जना ने भी अपने मन को वशीभूत करने का निश्चय कर लिया ।

अंजना की दासी ने एक बार अंजना से कहा—पवन जी तुम्हारे लिए पति नही, प्रत्युत पापी हैं । वह जो पति होते तो क्या इस तरह अपनी पत्नी का परित्याग कर देते ?

अंजना ने उत्तर दिया—दासी! जीभ सम्भाल कर बोल। मेरे पति की निन्दा मत कर । वे सच्चे धर्मात्मा हैं । वे राजपुत्र हैं—चाहे तो अनेक कन्याओं का पाणिग्रहण कर सकते हैं। पर नही, मेरी खातिर वे अपने मन पर सयम रख रहे हैं । मेरे किसी पूर्व-कृत पाप के कारण उन्हें मेरे विषय मे सन्देह उत्पन्न हो गया है । जब मेरा पाप दूर हो जायगा तो मेरे पति का सन्देह दूर हो जायगा और तब वे फिर मुझे पहले की तरह अपनाने लगेंगे ।

एक दिन वह था जब स्त्रिया अपने पति का प्रेम सम्पादन करने के लिए आत्म-समर्पण करती थी और आज यह दिन है कि पुनर्विवाह करने के लिए स्त्रियो को भरसक उत्तेजित किया जाता है। उसके हृदय मे काम-वासना की आग भडकाई जाती है। पुरुष स्वय काम-वासना के गुलाम बन रहे हैं और इसी कारण आज विधवा-विवाह या पुनर्विवाह का प्रश्न खडा हो गया है। अगर विधवाओ की भाति पुरुष भी पत्नी की मृत्यु के पश्चात् ब्रह्मचर्य का पालन करें और त्यागमय जीवन व्यतीत करें तो सहज ही यह प्रश्न हल हो सकता है। किन्तु स्त्री की मृत्यु के बाद पुरुष ऊपर से रोने का ढोग भले ही करते हो पर नई स्त्री के आने के विचार से हृदय मे प्रसन्न होते हैं।

जैसे स्त्रियों के लिए अजना का आदर्श है, इसी प्रकार पुरुषों के लिए पवनकुमार का आदर्श है। पवनकुमार और अजना-दोनो ने बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन किया था। जैसे अजना बारह वर्ष तक ब्रह्मचारिणी रही, उसी प्रकार पवनकुमार बारह वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचारी रहे। वह राजकुमार थे। चाहते तो एक छोड दस विवाह कर लेते अथवा आजकल की तरह दुर्व्यवहार भी कर सकते थे, पर उन्होने यह नही किया। उन्होने सोचा, जब मै अपनी पत्नी को पतिव्रता देखना चाहता हू तो मै स्वय दुराचार करके क्यो भ्रष्ट होऊ—मैं भी क्यो न पत्नीव्रती बनू? मैं यह पाप कैसे कर सकता हू?

अतएव मैं यह कहता हूं कि स्त्री और पुरुष दोनो को ही शील का पालन करना चाहिए। शास्त्र मे पुरुष के लिए स्वदार-संतोष और स्त्री के लिए स्वपति-सतोष का विधान है। पुरुप यदि स्वदार-सतोष व्रत का पालन करें तो स्त्रिया स्वपति-सतोष व्रत का पालन क्यो न करेंगी ? पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन न हो सके तो भी यदि इस आंशिक व्रत का पालन किया जाय और स्त्री-पुरुप सन्तोषपूर्वक मर्यादित जीवन व्यतीत करें तो सन्तति- नियमन का प्रश्न सहज ही हल हो सकता है।

बारह वर्ष बाद युद्ध मे जाते हुए पवनकुमार ने जगल मे पडाव डाला। वही पास मे किसी पेड के नीचे एक चकवी रो रही थी। पवनकुमार ने अपने मित्र प्रहस्त से उस चकवी के रोने का कारण पूछा। प्रहस्त ने कहा—रात मे चकवा-चकवी का वियोग हो जाता है और इसी वियोग की वेदना से व्याकुल होकर यह चकवी रो रही है।

पवनकुमार ने प्रहस्त से कहा—जब यह चकवी केवल एक रात के वियोग से कल्पात मचा रही है, तो मेरी पत्नी के दुख का क्या ठिकाना होगा, जिसे मैंने बारह वर्ष से त्याग रखा है ! मुझे उसके विषय मे सन्देह उत्पन्न हो गया था और इसी कारण मैंने उसका त्याग कर दिया है।

प्रहस्त ने पवन से पूछा—अपनी पत्नी के प्रति आपको क्या सन्देह हो गया था ? इस विषय मे आपने आज तक मुझसे कुछ भी जिक्र नही किया। जिक्र किया होता तो मैं आपके सन्देह का निवारण कर देता।

पवनकुमार ने अपना सन्देह प्रहस्त को बता दिया। प्रहस्त ने कहा—वह सती है। उस पर आपका यह सन्देह अनुचित है।

आपका सन्देह सच्चा होता तो वह इतने दिनों तक घर में न बैठी रहती, वह कभी की मायके चली गई होती। आपने जिसे दूषण समझा और जिसके कारण आपको सन्देह हो गया है, वह दूषण नहीं, भूषण है—गुण है।

पवनकुमार सारी बात समझ गये। उनका सन्देह काफूर होता गया। उन्होंने प्रहस्त से कहा—मैंने एक सती-साध्वी स्त्री को बहुत कष्ट पहुंचाया है। इस समय मैं समरांगण में जा रहा हूं और कदाचित् मैं युद्ध में मारा गया तो यह दुःख कांटे की तरह मुझे सदा ही सताता रहेगा। क्या ऐसा कोई उपाय नहीं है कि मैं रात भर उसके पास रहकर वापिस लौट सकूं? प्रहस्त ने कहा—है क्यों नहीं, मैं ऐसी विद्या जानता हूं।

आज एरोप्लेन—वायुयान है, पर पहले आकाश में उड़ने की विद्या भी थी। इस विद्या के बल से प्रहस्त के साथ पवनकुमार अंजना के निवास-स्थान पर आए। जिस समय पवनकुमार अंजना के पास पहुंच रहे थे, उस समय अंजना की एक दासी उससे कह रही थी—जिसे तुम अपना सुहाग समझती हो, तुम्हारे उस पति ने तुम्हारा सत्कार न लेकर तुम्हारा अपमान किया है। [illegible] तुम्हारा पति अत्यन्त क्रूर है। मैं तो सोचती हूं—वह युद्ध में अवश्य मारा जायगा।

दासी—जिसने तुम्हारा घोर अपमान किया है, उसी की तुम विजय चाहती हो ! कैसी भोली हो मालकिन !

अ जना—मेरे पति के हृदय मे मेरे विषय मे सन्देह उत्पन्न हुआ है । वे मुझे दुराचारिणी समझते हैं और इसी कारण युद्ध के लिए जाते समय उन्होने मेरा शकुन नही लिया है । मेरे पति महा-पुरुष और वीर है । उन्होने अपने पिताजी को युद्ध मे नही जाने दिया और आप स्वय युद्ध मे सम्मिलित होने गये है । वे ऐसे शूर-वीर हैं और बारह वर्ष से ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे हैं । ऐसे सच्चरित्र और वीर-पुरुष की जीत नही होगी, तो किसकी होगी ?

इस प्रकार अ जना और उसकी दासी मे चल रही बातचीत पवनकुमार ने शात चित्त से सुनी । पवनकुमार अ जना को अपने प्रति अगाध निष्ठा देख कर गद्गद् हो गये । प्रहस्त से उन्होने कहा—मित्र ! मैंने इस सती के प्रति अक्षम्य अपराध किया है । अब किस प्रकार इसे अपना मु ह दिखाऊ ?

प्रहस्त ने कहा—थोडी देर और धैर्य धारण कीजिए । इतना कहकर प्रहस्त ने अ जना के मकान की खिडकी खडखडाई । खिडकी की खडखडाहट सुनकर अ जना गरज उठी—कौन दुष्ट है, जो कुमार को बाहर गया देखकर इस समय आया है ? जो भी कोई हो, फौरन यहा से भाग जाय, अन्यथा उसे प्राणो से हाथ धोना पडेगा ।

प्रहस्त ने उत्तर दिया—और कोई नही है । दूसरे किसकी हिम्मत है, जो यहा आने का विचार भी कर सके । यह पवनकुमार जी हैं और इनके साथ मैं इनका मित्र प्रहस्त हू । ये शब्द सुनते ही अ जना के अ ग-अ ग मे मानो बिजली दौड गई । उसकी प्रसन्नता का पारावार न रहा । पर जब तक उसे खातिरी न हो गई, उसने

किवाड़ न खोले। जब उसने खिड़की में से देखकर यकीन कर लिया, तभी दरवाजा खोला।

अंजना ने अर्घ लेकर अपने प्राण-पति पवनकुमार की आरती उतारी और फिर कुछ-कुछ लजाते हुए बोली, सकुचते हुए विनम्र वाणी से कहने लगी—'क्षमा करना नाथ, मैंने आपको बहुत कष्ट पहुंचाया है।'

कष्ट किसने किसे पहुंचाया था? पवनकुमार ने अंजना को अथवा अंजना ने पवनकुमार को? वास्तव में तो पवनकुमार ने ही अंजना को कष्ट दिया था। फिर भी अंजना ने इस तरह की शिकायत न करते हुए उल्टा यही कहा कि—मैंने आपको बहुत कष्ट दिया है। मेरे कारण ही आपने एकनिष्ठता के साथ बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य पाला है। इस कष्ट के लिए मुझे क्षमा कीजिए। आपका सन्देह दूर हो गया है, यह जानकर आज मुझे असीम आनन्द की अनुभूति हो रही है।

पवनकुमार ने मन ही मन लजाते हुए कहा—'रानी! दोष मेरा था। अनजान में मैंने तुम सरीखी परम सती महिला को मिथ्या कलंक लगाया है। मेरे इस घोर अपराध को क्षमा करो।'

तुम कदाचित् भीष्म और भगवान् अरिष्टनेमि की तरह पूर्ण ब्रह्मचारी नही रह सकते तो पवनकुमार की भाति ब्रह्मचर्य-पूर्वक मर्यादित जीवन तो अवश्य विता सकते हो। कामवासना पर काबू नही रखा जा सकता। इस भ्रमपूर्ण भावना का परित्याग करो। इस दुर्भावना के कारण ही विषय-वासना वेगवती बनती है।

मेरे सम्पूर्ण कथन का सार यही है कि इस समय सतति-नियमन की आवश्यकता तो है, पर आजकल उसके लिए शस्त्रक्रिया या औषध का जो उपाय बताया जाता है, वह सच्चा हितकर उपाय नही है। यह उपाय तो प्रत्येक दृष्टि से लाभ के बदले हानि ही पहुचाएगा। अतएव हानिकारक उपायो का उपयोग न करके सन्तति-नियमन के लिए ब्रह्मचर्य का अमोघ और कल्याणकारी उपाय काम मे लाना चाहिए। ब्रह्मचर्य के अवलम्बन से सन्तति का नियमन होगा और जो सन्तान होगी, वह स्वस्थ, सबल और सम्पन्न होगी। साथ ही तुम भी शक्तिशाली और चिरजीवी बन सकोगे।

सन्तति-नियमन करके द्रव्य के अपव्यय या अधिक व्यय से बचना चाहते हो—द्रव्य तुम्हे प्यारा है तो असली धन—जीवन के मूल और शक्ति के स्रोत वीर्य के अपव्यय से भी बचने का प्रयास करो। द्रव्य-धन की अपेक्षा वीर्य-धन का मूल्य कही अधिक है—बहुत अधिक है। फिर इस ओर दृष्टि-निपात क्यो नहीं करते ?

शस्त्र-क्रिया या औषध के प्रयोग द्वारा सन्तति-नियमन करने से अपनी हानि के साथ-साथ परम्परा से दूसरों की भी हानि होगी। इसके अतिरिक्त आजकल तो स्त्री-पुरुष की समानता का प्रश्न भी उपस्थित हो गया है। ऐसी दशा मे, सम्भव है, स्त्रियों की ओर से यह प्रश्न खडा कर दिया जाय कि सन्तति-नियमन के लिए हमारे गर्भाशय का ही आपरेशन क्यो किया जाय ? क्यो न

पुरुषों को ही ऐसा बना दिया जाय, जिससे सन्तान की उत्पत्ति ही न हो सके। पुरुषों की उत्पादक शक्ति का ही विनाश क्यों न कर दिया जाय ?

सन्तति-नियमन के जिन कृत्रिम उपायों के कारण भविष्य में ऐसी भयानक स्थिति उत्पन्न होने की सम्भावना है, उन उपायों का प्रयोग न करना ही विवेकशीलता है। कदाचित् सरकार सन्तति-नियमन के लिए ऐसे कृत्रिम उपायों को काम में लाने के लिए कानून बना दे, तो सरकार के उस काले कानून को मानना या न मानना, तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है। अगर तुम्हें भी सन्तति-नियमन के कृत्रिम उपाय अनुचित और हानिकारक जान पड़ते हों तो इन उपायों का परित्याग करो और सन्तति-नियमन के लिए अमोघ उपाय ब्रह्मचर्य का प्रयोग करो। इसी में तुम्हारा, समाज का और समस्त विश्व का कल्याण है।

ॐ ॐ ॐ

का अनुभव कुछ जुदा है। शास्त्र मे ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये नव-वाड़ बतलाई हुई हैं, जिनकी सहायता से वीर्य शरीर मे पचाया जा सकता है।

अमेरिकन तत्त्ववेत्ता डाक्टर थोर एक बार अपने शिष्य के साथ जगल मे गया था। शिष्य ने उनसे पूछा कि यदि कोई आदमी अपने वीर्य को शरीर मे न पचा सके तो उसे क्या करना चाहिये? थोर ने उत्तर दिया कि ऐसे व्यक्ति के लिये जीवन भर मे एक बार स्त्री-प्रसग करना अनुचित नही है। ऐसा करना वीर का काम है। जिस प्रकार सिंह जीवन मे एक बार सिंहनी से मिलता है, वैसे ही जो जीवन मे एक बार स्त्रीसग करता है, वह वीर पुरुष है। शिष्य ने पूछा कि यदि ऐसा करने पर भी मन न रुके तो क्या करना चाहिये? थोर ने उत्तर दिया कि साल मे एक बार स्त्री-प्रसग करना चाहिये। फिर शिष्य ने पूछा-यदि इस पर भी मन न रुके तो क्या करना? गुरु ने कहा कि मास मे एक बार स्त्री से मिलना चाहिये। यदि इस पर भी मन न रुके तो क्या करना चाहिये? ऐसा पूछने पर थोर ने उत्तर दिया कि फिर मर जाना चाहिये।

आज समाज की क्या दशा है? आठम-चौदस को भी शील पालने की शिक्षा देनी पडती है। आठम-चौदस की प्रतिज्ञा लेकर लोग ऐसे भाव दिखलाते हैं, मानो हम साधुओ पर कोई उपकार करते हैं। सच्चा श्रावक स्वस्त्री का आगार होने पर भी अपनी स्त्री के साथ भी सन्तोष से काम लेगा। जहा तक होगा, बचने की कोशिश करेगा। सब सुधारो का मूल शील है। आप यदि जीवन मे शील को स्थान देंगे तो कल्याण होगा।

जब स्त्री गर्भवती होती है, तब उसके दो हृदय होते हैं।

एक खुद का और दूसरा बालक का। दो हृदय होने के कारण उसकी इच्छा को दोहद कहा जाता है। उसकी इच्छा गर्भ की इच्छा मानी जाती है। जैसा जीव गर्भ में होता है, वैसा ही दोहद भी होता है। दोहद के अच्छे बुरे होने का अन्दाजा लगाया जा सकता है। श्रेणिक को कष्ट देने वाला उसका पुत्र कोणिक जब गर्भ में था, तब उसकी माता को अपने पति श्रेणिक के कलेजे का मांस खाने की इच्छा उत्पन्न हुई थी। दुर्योधन जब गर्भ में था, उसकी माता को पौरव वंश के लोगों के कलेजे खाने की इच्छा हुई थी। गर्भ में जैसा बालक होता है, वैसा दोहद होता है। दोहद पर से अन्दाजा लगाया जा सकता है कि गर्भस्थ बालक कैसा होगा। बालक के भूत और भविष्य का पता दोहद से लग सकता है। आजकल सांसारिक प्रपञ्चों का बोझा मगज पर अधिक होता है, अतः स्वप्न याद नहीं रहा करते। रात्रि में नदी के बहाव का शब्द ज़ोर से सुनाई देता है। इसका अर्थ यह नहीं होता कि रात में नदी ज़ोर का शब्द करती है। वह तो एक-समान रूप से बहती है। किन्तु उस समय वातावरण में शान्ति होने से शब्द स्पष्ट सुनाई देता है। स्वप्न के विषय में भी यही बात है। [illegible] है। यदि इनको ठीक तरह न समझा तो ज्ञानियों की [illegible] कि उनमें भूत-भविष्य का ज्ञान कराने का भी [illegible] हुआ है।

न करना निरोध का ठीक रास्ता है।

गर्भ रह जाने के बाद उसकी सम्भाल न करना निष्करुणा है। धारिणी राणी को जब गर्भ था, वह अधिक ठडे, अधिक गर्म, अधिक तीखे कडुवे कसायले खट्टे-मीठे पदार्थों का भोजन नहीं करती थी। ऐसी चीजो पर उसका मन भी दौड जाता, फिर भी गर्भ की रक्षा के लिए वह अपनी जबान पर काबू रखती थी। वह न अधिक जागती, न अधिक सोती, न अधिक चलती और न पडी रहती।

ब्रह्मचर्य का पालन न करने से गर्भ रह जाय, तब यह उत्तर दे देना कि बालक के भाग्य में जैसा होगा वैसा देखा जायगा, नगाईपूर्ण उत्तर है। इस उत्तर मे कर्त्तव्य का खयाल नही है। किसी को पाच रुपये देने हैं। वह लेने वाला कह दे कि तेरे भाग्य मे होगे तो मिल जायगें, नही तो नही मिलेंगे। यह उत्तर व्यवहार मे नगाई का उत्तर गिना जाता है। इसी प्रकार पहले अपने ऊपर काबू न रखना और बाद मे कह देना कि जैसा नसीब मे होगा देखा जायगा, मूर्खता सूचित करता है, केवल मूर्खता ही नहीं किन्तु निर्दयता भी साबित होती है।

८

# पर्दा

बाद अन्य वस्तुओ की लूट के साथ-साथ स्त्रियो को भी लूटा जाता था। उनके साथ खुले आम व्यभिचार होता था। घोडा, गाय आदि की तरह ही स्त्रियो को रखा जाता रहा। अपनी वस्तुओ को जैसे छिपाकर रखा जाता है, उसी प्रकार औरतो को भी बडे यत्न से पर्दों और बुरको मे छिपाकर रखा जाता था। सुन्दर स्त्रियो को तो और भी सबकी दृष्टि से बचाकर रखे जाने का प्रयत्न होता था। यही उनकी परतन्त्रता का एक रूप पर्दे के रूप मे अब तक बना हुआ है।

स्त्रियो को दासी समझने के विचार कोई नए नही, लम्बे समय से ऐसा दृष्टिकोण चला आ रहा है। बौद्ध साहित्य मे भी स्त्रियो की हालत बहुत गिरी हुई रखी गई थी। बडी मुश्किल से बाद मे सघ के अन्दर स्त्रियो के प्रवेश की आज्ञा मिली पर बुद्ध ने कहा था कि यह उचित न रहेगा। इस प्रवेश से सघ का पतन शीघ्र हो जायगा। पारसियो के धर्म-ग्रन्थो के अनुसार पत्नी को प्रातःकाल उठकर पति से नौ बार यह पूछना चाहिए कि मैं क्या करू ? मुसलमानो को चार स्त्रिया तक एक साथ रखने की स्वतन्त्रता है। पुरुषो की प्रतियोगिता मे उनके अधिकार आधे माने गए हैं। इसी प्रकार यहूदी और ईसाई धर्म मे भी स्त्रियो को पुरुषो के मुकाबले मे बहुत कम अधिकार दिए गए। ईसाई-मत मे तो स्त्रियो मे आत्मा भी नही मानी गई। उनके धर्मानुसार पुरुषो को स्त्रियो पर शासन करने का अधिकार है और स्त्रियो का कर्त्तव्य उनसे शासित होना है। प्रथम-महायुद्ध से पहिले तक उन्हे पादरी बनने की आज्ञा ना थी।

स्त्रियो को बहुत समय तक परतन्त्रता की बेडियो मे जकड कर रखा गया। पर्दा उसी का ध्वसावशेष है। पर्दा रखना पूर्ण

रा ये स्त्रियों पर अविश्वास रखना है । अपनी स्थायी वस्तु समझ कर दूसरों की दृष्टि से बचाकर रखना पर्दे का कार्य था । उन्हे इस प्रकार रखा जाना घोर अन्याय है । अभी तक हमारा समाज इस भावना से मुक्त नही हो पाया । फलस्वरूप यह प्रथा अब तक विद्यमान है ।

कुछ समय से स्त्रियो में जागृति की भावना फैलती जा रही है । वे स्वतन्त्र रूप से अपने अधिकारो की माग कर पुरुषो के दासत्व को छोड़ने के लिए प्रयत्नशील हैं । योरप मे स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए काफी आंदोलन किए गए थे । पहले उन्हे चुनाव आदि में वोट देने का अधिकार नही था पर धीरे-धीरे लड़ते हुए उन्हें बहुत से अधिकार प्राप्त हो गए। अतः पाश्चात्य स्त्रियो की दशा इस लिहाज से अच्छी है, उसके मुकाबले मे भारतीय महिलाओं की स्थिति उतनी ठीक नहीं है । यद्यपि उन्हें सभी राजनीतिक अधिकार प्राप्त है, फिर भी पहिले की अज्ञानता अभी गई नहीं है । तुर्की और अफगानिस्तान की महिलाओ ने भी पुर्दा का विरोध किया है और वे अपने अधिकारो की प्राप्ति की ओर अग्रसर है ।

बिल्कुल नीच न रखी जाए। सक्षेप मे पर्दा हटाना सदियो से चली आती हुई दासता के बधन को हटाना है ।

पर्दे के कारण हमारा समाज अपग हो गया है । पुरुष और स्त्री समाज के दो अभिन्न अग हैं। सामाजिक उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि दोनो का सम्बन्ध परस्पर सहानुभूति और सहयोग-पूर्ण रहे। पर्दे के कारण स्त्री और पुरुषो को भिन्न-भिन्न-सा कर दिया गया है । दोनों के बीच कोई सम्बन्ध नही, मिलकर कोई कार्य नही कर सकते । किसी समस्या पर दोनो गम्भीरता से विचार भी नही कर सकते । अभी एक स्त्री अपने निकट सम्बन्धियो के अतिरिक्त किसी से बात भी नही कर सकती, मिलकर कोई कार्य करना तो अलग रहा । कोई पुरुष अपनी रिश्तेदार-स्त्रियो के अलावा अन्य स्त्रियो से बात नहीं कर सकता । अगर किसी स्त्री ने किसी अन्य पुरुष से कुछ देर बातें करली तो उनका सम्बन्ध अनुचित समझा जायगा । उस पर व्यभिचारिणी होने का आरोप लगाया जायगा । कोई पुरुष अपने पवित्रतम प्रेम का भी परिचय किसी स्त्री को नही दे सकता । इस प्रकार अभी तक स्त्रियो और पुरुषो का कार्यक्षेत्र सर्वथा अलग रहा है । उनका समाज भी भिन्न रहा। दोनो की सम्मति और सहयोग से कोई कार्य नही किया जाता । पति-पत्नी, पिता-पुत्री और भाई-बहिन के अतिरिक्त स्त्री पुरुषो का कोई सम्बन्ध ही नही रहा और यह भी रिश्तेदारी तक ही सीमित रहा । इनके अलावा सब रिश्ते नाजायज समझे जाते हैं। हमारे समाज मे इन विचारो से बहुत सकुचितता उत्पन्न हो गई है । जहा स्त्री-पुरुषो मे जरा भी मिलना-जुलना सभा-सोसाइटियो मे हुआ कि वही पर लोग कलियुग का स्मरण करने लगते हैं। पति-पत्नी का साथ मे कही बाहर भ्रमण करने जाना भी बहुत बुरा समझा जाता है । इसे निर्लज्जता और उच्छृंखलता के

जैसा चाहें रख सकते हैं। स्वतंत्र होते ही वे अपने-आपको मनुष्य अनुभव करने लगेंगी। उस समय पुरुषों की सत्ता उन पर नही चलेगी। पहले से ही वे सहानुभूतिपूर्वक उन्हें उचित सुविधाए देंगे तो ठीक रहेगा।

जो लोग यह कहते हैं कि पर्दा प्राचीनकाल से बडे-बूढ़ो के जमाने से चला आया है, उन्हें सोचना चाहिए कि अगर बडे-बूढो के कायदो पर अच्छी तरह विचार करते और उसके अनुसार आचरण करते तो तुम्हारी यह हालत नही होती। जितनी विचारशीलता से उन्होने यह प्रथा चलाई थी, उतनी आज होती तो इन परिस्थितियो मे पर्दा उठाने मे क्षण भर का भी विलम्ब न होता। भिन्न-भिन्न परिस्थितियो के अनुसार रीति-रिवाजो मे परिवर्तन करते रहने मे ही बुद्धिमत्ता है। कोरी लकीर पीटने से ही कुछ हाथ नही आता।

पुराने समय मे लज्जा स्त्रियो का आभूषण समझा जाता था। विनय उनका श्रेष्ठ गुण था। पर्दे की प्रथा तो पहले बिलकुल न थी। मुसलमानों के समय के पश्चात् पर्दा प्रारम्भ हुआ। उस समय की परिस्थितियो और आज की परिस्थितियो मे भिन्नता है। यह आवश्यक नही कि उस समय जो वस्तु उपयुक्त हो, वही आज भी हो। लोग इस दृष्टि से नहीं सोच पाते। उनके दिमाग मे इतना आता है कि पर्दा हमारे बडे-बूढों ने चलाया था। जो काम उन्होने किया, जो चीज उन्होने अपने दिमाग से सोची, उस समय वही ठीक थी। उनके ऊचे विचारो और ऊचे आदर्शों की ओर तो किसी की दृष्टि नही जाती और तुच्छ से तुच्छ बातो पर गुड के मकोडो सरीखे चिपटते हैं।

पर्दा उठाने का अर्थ निर्लज्जता नही और न अविनय है। कौन इन्कार करता है कि वधू को सास-श्वसुर की विनय रखना

# ६

# आभूषण

—०—

आभूषण स्त्रियों की अत्यन्त प्रिय वस्तु है। आज से ही नही पर प्राचीनकाल से ही आभूषण स्त्रियो का शृङ्गार है। हा, उसकी बनावट अथवा रूपो मे भले ही परिवर्तन होता रहा है।

यही कारण है कि अनेको स्त्रिया तो जेवरो के पीछे इस तरह पागल रहती हैं कि भले ही गृहस्थी मे उन्हें और सब सुख हो पर अगर जेवर नहीं है तो कुछ नही है। इस प्रकार की स्त्रिया आए दिन सास-ससुर अथवा पति से गहने के लिये झगडती रहती हैं।

कुछ जातियो मे तो इतना अधिक जेवर पहिनने का रिवाज है कि वह गहना उनके लिये बेडी के समान हो जाता है। हाथ-पाव मे गड्ढे पड जाते हैं, फिर भी उनका मोह उनसे नहीं छूटता। वे दुनिया भर मे उनका प्रदर्शन कर उस भारी वजन को ढोती फिरती हैं। प्रदर्शन इसलिए कि अधिक गहना पहन कर दूसरों को दिखाना एक प्रकार की इज्जत समझती हैं। इज्जत का जेवर से अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध समझा जाता है। इसलिए अधिक गहना पहनने वाली औरत को प्राय. डाह की नजरो से देखा जाता है।

भावार्थ—पतिव्रता फटे चिथडे पहने हो और गले मे पोत भी न हो तो भी हीरे की ज्योति सदृश दीप्ति को प्राप्त होती है।

गहना-कपडा नारी का सच्चा आभूषण नही है। नारी का श्रेष्ठ आभूषण शील है। सीता जब वन मे रही, तब उसने क्या गहना पहना था ? द्रौपदी ने विराटनगर मे राजा के यहा सैरध्री नामक दासी बनकर रानियो को रानी होते हुए भी सिर गूथने का छोटी से छोटी दासी का काम किया था। आज ऐसी सती-साध्वी देवियो के सामने सारा ससार सिर झुकाता है।

तात्पर्य यह है कि बाहरी सुन्दरता के पीछे मत पडो। बढिया गहने और कपडे नारी के आभूषण नही हैं। इनसे शरीर का ऊपरी सौन्दर्य भले ही कुछ बढ जाय, मगर आत्मा की सुन्दरता का ह्रास होता है।

नारी की सुन्दरता बढ़ाने के लिए शील का आभूषण काफी है। उन्हे और आभूषणो का लालच नही होना चाहिए। बाहरी सुन्दरता मन को बिगाडने वाली होती है और मन की पवित्रता अंत.करण के शुद्ध करने वाली होती है। बाह्य सुन्दरता अनेक कष्टो का निमन्त्रण करती है, अनावश्यक व्ययजनक होती है। आतरिक सुन्दरता अनेको कष्टो का निवारण करती है व पैसा भी खर्च नही होता। प्रत्येक स्त्री को चाहिए कि आत्मा की शोभा बढाने का सतत प्रयत्न करे। मन की पवित्रता को कायम रखते हुए जीवन को उज्ज्वलता-रूपी सुन्दर आभूषण से अलकृत करे। इस मासपिंड ( शरीर ) की सजावट मे क्या पडा है ? नारी की सच्ची महत्ता और पूजा शील से होगी। शील आभूषणो का भी आभूषण है। गहनो मे सुन्दरता देखने वाली नारी आत्मा के सद्गुणाभूषण को कभी नहीं देख पाती। त्याग, सयम और सादगी मे जो सुन्दरता

अपने भाई की कद्र कम करते हैं। यह सुहाग-बिन्दी आपके भाई के होने से ही है। क्या आप अपने भाई की अपेक्षा रत्नो को भी बडा समझते हैं ? आपका ऐसा समझना उचित नही है।

भरत ! आप प्रकृति की ओर देखिये ! जब रात गहरी होती है तो ओस के बूंद पृथ्वी पर गिर कर मोती के गहने बन जाते हैं। लेकिन उषा के प्रकट होते ही प्रकृति उन गहनो को पृथ्वी पर गिरा देती है . जैसे प्रकृति यह सोचती है कि इन गहनो का शृङ्गार तभी तक ठीक था, जब तक उषा प्रकट नही हुई थी। अब उषा की मौजूदगी मे इनकी क्या आवश्यकता है ? यही बात मेरे लिये भी है। जब तक वन-वासरूपी उषा प्रकट नही हुई थी, तब तक भले ही आभूषणो की आवश्यकता रही हो, अब तो सौभाग्य को सूचित करने वाली इस सुहाग-बिंदी मे ही समस्त आभूषणो का समावेश हो जाता है। यही मेरे लिये सब शृङ्गारों का शृङ्गार है। इससे अधिक की मुझे आवश्यकता नही है। ऐसी स्थिति मे आप क्यो व्याकुल होते हैं ? आपको मेरा सुहाग देखकर ही प्रसन्न होना चाहिए।

बहिनो से यही कहना है कि सीता जी ने जिन गहनो को हसकर त्याग दिया था, उन गहनो के लिए तुम आपस मे कभी मत लडो। जब आत्मा सद्गुणो से अलकृत होती है तो शरीर को विभूपित करने की आवश्यकता ही नही रहती। सीता और राम के प्रति आपके हृदय मे इतनी श्रद्धा क्यो है ? उन्होने त्याग न किया होता तो जो गौरव उन्हे मिला है, वह कभी मिल सकता था ? त्याग के बिना कोई किसी को नही पूछता।

कदाचित् कहा जाय कि घर मे नगे हाथ अच्छे नहीं लगते

तो यही कहना पडेगा कि ऐसा कहने वाले की दृष्टि दूषित है गहनो मे सुन्दरता देखने वाला आत्मा के सद्गुणो के सौन्दर्य को देखने में अधा हो जाता है। त्याग, सयम और सादगी मे जो सुन्दरता है, पवित्रता है, सात्त्विकता है, वह भोगो मे कहा ? मै बहिनो को सम्मति देता हू कि घर वालो की ऐसी बातो की परवाह न करके गहनो के मोह को त्याग दें और सादगी के साथ रहें

बाहरी चमक-दमक को सुन्दर रूप मत समझो। जिस रूप को देखकर पाप कापता है और धर्म प्रसन्न होता है, वही सच्चा सुरूप है—सौन्दर्य है।

असली सौन्दर्य आत्मा की वस्तु है। आत्मिक सौंदर्य की सुनहरी किरणें, जो बाहर प्रस्फुटित होती हैं, उन्हीं से शरीर की सुन्दरता बढती है।

बहनो से मेरा कहना है कि तुम लोग चमडी को बडा मानती हो या आभूषणो को ? अनेक विशिष्ट गुणो वाली चमडी को भूल कर जो लोग आभूषणो के प्रलोभन मे पड जाते हैं, वे ठूस ठूस कर आभूषण पहनने से चमडी को पहुचने वाली हानि की ओर ध्यान नही देते। आभूषणो का वजन सहन न होने पर भी इतने आभूषण शरीर पर लादे जाते हैं कि बेचारी चमडी की दुर्दशा हो जाती है। स्त्रिया झूठे बडप्पन के लोभ मे फसकर अनावश्यक आभूषण पहनती हैं। परिणाम यह होता है कि चमडी के विशिष्ट गुण नष्ट हो जाते हैं और वे दिनोदिन निर्बलता की शिकार बनती जाती हैं।

कल्पना कीजिये, किसी गृहस्थी में दो बाइया हैं। एक हीरे की चूडिया पहिन कर, सुगधित इत्र तैल लगा कर, सुन्दर औ

सुकोमल वस्त्र पहन कर झूले मे झूल रही है। भोजन के समय भोजन करती है और विलास मे डूबी रहती है। उसी गृहस्थी मे दूसरी बाई कर्मशीला है। वह शृंगार की परवाह नही करती, नाज-नखरो मे दिल नहीं लगाती। घर को साफ-सुथरा रखती है। बच्चो की अशुचि मिटाकर उन्हे नहलाती है, स्वच्छ वस्त्र पहनाती है, उनके भोजन की उत्तम व्यवस्था करती है।

आप इन दोनो मे किसे अच्छा समझती हैं? किसे जीवन-दात्री मानती हैं?

इस प्रकार जीवन मे वाह्य शारीरिक सौन्दर्य और विलास को प्रधानता देने वाले का दुनिया मे कोई मूल्य नहीं। मूल्य तो आध्यात्मिक पवित्रता और स्वच्छता का है। जो जितना ही शरीर से उदासीन और हृदय से पवित्र होगा, उसी का जीवन सफल और मूल्यवान् है। पवित्र जीवन ही उसका वास्तविक सौंदर्य है।

सीता के सम्बन्ध मे बुद्धिमती स्त्रिया कहती हैं—सीता ने क्षमा का नौलडा हार पहन रखा है। ऐसा ही हार हमें पहनना चाहिए। यद्यपि कैकेयी की वर-याचना के फलस्वरूप उनके पति को और उनको वन जाना पड रहा है, फिर भी इनके चेहरे पर रोष का लेशमात्र भी कोई चिन्ह नही दिखाई देता। उनकी मुद्रा कितनी शात और गम्भीर है! अगर उनमे धैर्य नहीं होता तो वह तुम्हारी तरह रोने लगती। अगर वह अपनी आख टेडी करके कह देती कि मेरे पति का राज्य लेने वाला कौन है तो किसका साहस था कि वह राज्य ले सके। सारी अयोध्या उनके पीछे थी। लक्ष्मण उनके परम सहायक थे और वे अकेले ही सबके लिए काफी थे। सीता चाहती तो मिथिला से फौज मगवा सकती थी लेकिन

नही, सीता ने क्षमा का हार पहन रखा है। ऐसा हार हमे भी पहनना चाहिए।

सीता के हाथ मे आज केवल मगल-चूडी के अतिरिक्त और कुछ भी नही है। मगर उन्होने अपने हाथो मे इस लोक और परलोक को सुधारने का चूडा पहन रखा है। ऐसा ही चूडा हमे भी पहनना चाहिए। उभय लोक के सुधार का मगलमय चूडा न पहना तो न मालूम अगले जन्म मे कैसी बुरी गति मिलेगी।

आजकल मारवाड मे आभूषण पहनने की प्रथा बहुत बढी है। बोर तो अनार हो गया है। बोर तो बोर (बेर) के बराबर ही हो सकता है, पर चढते-बढ़ते वह अनार से भी बाजी मार रहा है। जेवरो की वृद्धि के साथ ही विकार मे भी प्राय वृद्धि होने लगती है।

बुद्धमती स्त्रिया कहती हैं—सीताजी ने गुरु-जनो की आज्ञा-पालन रूपी बोर अपने मस्तक पर धारण किया है। ऐसा ही बोर स्त्रियो को धारण करना चाहिए। उन्होने कैकेयी जैसी सास का भी मान रखा है। अगर हम जरा-सी बात पर भी बडो का अपमान करें तो हमारा यह बोर पहनना वृथा हो जायगा।

अच्छी सीख ने करणफूल,
कान रा करां।
झूठा बारला बनाव,
देख क्यो वृथा लडां।
हिया मांय अमोल,
खान खोल पैरला।
सब बाहर का बनाव,
वा पे वारणां करां॥

बहिनो ! सीता ने मणि-जडे कर्णफूल त्याग कर उत्तम शिक्षा के जो कर्णफूल पहने हैं, उन्हे ही हमे पहनना चाहिए । सीता विदेहपुत्री है और विदेह आत्मज्ञानी हैं । सीता ने उन्ही की शिक्षा ग्रहण की है ।

× ×

मैं जब गृहस्थावस्था मे था, तब की बात है । मेरे गांव मे एक बूढे ने विवाह करना चाहा । एक विधवा बाई की एक लडकी थी । बूढे ने वृद्धा के सामने विवाह का प्रस्ताव उपस्थित किया । मगर उसने और उसकी लडकी दोनो ने उसे अस्वीकार कर दिया । कुछ दिनो बाद उस बूढे की रिश्तेदार कोई स्त्री उस बाई के पास आई और उसे बहुत-सा जेवर दिखला कर बोली-तुम्हारी लडकी का विवाह उनके साथ हो जाएगा तो उसे इतना जेवर पहनने को मिलेगा । लालच मे आकर विधवा ने अपनी लडकी का विवाह उस बूढे के साथ कर दिया ।

मेवाड की भी एक ऐसी ही घटना है । एक धनी वृद्ध के साथ एक कन्या का विवाह होना निश्चित हुआ । समाज-सुधारकों ने लडकी की माता को ऐसा न करने के लिये समझाया । लडकी की माता ने कहा कि पति मर जाएगा तो क्या हुआ, मेरी लडकी गहने तो खूब पहिनेगी ।

आप ही बताइये ? उक्त दोनो विवाह किसके साथ हुए ?

'धन के साथ'

'पति के साथ तो नही ?'

नहीं ।

धन ही इन कन्याओ का पति बना ।

बहिनो ! तुम्हे जितनी चिन्ता अपने गहनो की है, उतनी इन गहनो का आनन्द उठाने वाली आत्मा की है ? तुम्हें गहनो का जितना ध्यान रहता है, कम से कम उतना ध्यान अपनी आत्मा का रहता है ? तुम आभूषणों को ठेस न लगने के लिए जितनी सावधान रहती हो, उतनी आत्मधर्म को ठेस न लगने देने के लिये रहती हो?

अच्छा यह बताओ, जवाहरात पैरिस मे अधिक हैं या हिन्दुस्तान मे ? अमेरिका और इग्लेण्ड मे माणिक मोती ज्यादा हैं या भारत में ?

पैरिस मे जवाहरात ज्यादा हैं और भारत से ज्यादा माणिक-मोती अमेरिका इगलैंड मे हैं। मगर पैरिस के तथा अमेरिका और इगलैंड के अनेक स्त्री-पुरुष अपने बालको को भारत मे लाते हैं। उन्हे तो हमने कभी आपकी भाति जवाहरात से लदा हुआ नहीं देखा। इसका क्या कारण है ?

कारण यह है कि वे बच्चो को आभूषण पहनाना पसन्द नहीं करते।

देखो, वे तो पसन्द नहीं करते पर हम भारतवासी गहनो के लिये प्राण दिये रहते हैं ! कैसी विचित्र बात है !

## बच्चे और आभूषण-

हमारे यहा आभूषण इतने अधिक पसन्द किये जाते हैं कि जिनके यहा सच्चे माणिक मोती नही हैं, वे बहिनें अपने बच्चो को सिगारने के लिए खोटे जेवर पहनाती है पर पहनाये बिना नहीं मानती। कहीं-कहीं तो लोक-दिखावे के लिए आभूषणों की चोड

दिनो के लिए भीख मागी जाती है और उन आभूषणो से हीनता का अनुभव करने के बदले महत्त्व का अनुभव किया जाता है। क्या यह घोर अज्ञान का परिणाम नही है ? आभूपण न पहनने वाले यूरोपियन क्या हीन–दृष्टि से देखे जाते हैं ? फिर आपको ही अपनी सारी महत्ता आभूषणो मे क्यों दिखाई देती है ?

आभूषणों से लादकर बच्चो को खिलौना बनाना आप पसन्द करते हैं, पर उनके भोजन की ओर अक्षम्य उपेक्षा रखते हैं। यह कैसी दोहरी भूल है ? जरा अपने बच्चे का खाना किसी अंग्रेज बच्चे के सामने रखिये। वह तो क्या, उसका बाप भी वह भोजन नही खा सकेगा, क्योंकि हमारा भोजन इतना चटपटा होता है कि वेचारे का मुंह जल जाय।

बच्चो को आभूषण पहनाने का आपका उद्देश्य क्या है ? इसके दो ही उद्देश्य हो सकते है। एक तो अपने बालक को सुन्दर दिखाना अथवा अपनी श्रीमन्ताई प्रकट करना। मगर ये दोनो उद्देश्य भ्रमपूर्ण हैं। वालक तो स्वभाव से ही सुन्दर होता है। वह निसर्ग का सुन्दरतर उपहार है। उसके नैसर्गिक सौन्दर्य को आभूपण दवा देते हैं, विकृत कर देते हैं। जिन्हे सच्चे सौन्दर्य की परख है, वे ऐसे उपायो का अवलम्बन नही करते। विवेकवान् व्यक्ति जड–पदार्थ लादकर चेतन की शोभा नही बढाते। जो लोग आभूपणो मे सौन्दर्य निहारते हैं, कहना चाहिए कि उन्हे सौन्दर्य का ज्ञान नही है। वे सजीव वालक की अपेक्षा निर्जीव आभूपण को अधिक चाहते हैं। उनकी रुचि जडता की ओर आकृष्ट हो रही है।

अगर अपनी श्रीमन्ताई प्रकट करने के लिए वालक को आभूपण पहना कर खिलौना वनाना चाहते हो तो स्वार्थ की हद हो गई! अपनी श्रीमन्ताई प्रकट करने के लिए निर्दोप वालक का

जीवन क्यो विपत्ति मे डालते हो ? जिसे अपनी धनाढ्यता का अजीर्ण है, जो अपने धन को नहीं पचा सकता, वह किसी अन्य उपाय से बाहर निकाल सकता है। उसके लिए अपनी प्रिय संतान के प्राणो को संकट मे डालना क्या उचित है ?

बच्चो को आभूषण पहनाने से मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अनेक हानियां होती हैं। परन्तु एक प्रत्यक्ष हानि आप सभी जानते हैं। गहनो की बदौलत कई बालको की हत्या होती है। हत्या की घटनाए आये दिन घटती रहती हैं। फिर भी आप अपना ढर्रा नहीं छोडते, यह कितने आश्चर्य की बात है ? आपका विवेक कहा है ? वह कब जागृत होगा ?

विधवा बहिनों के लिए चर्खा अच्छा साधन माना गया है, पर आप लोग तो उसके फिरने मे वायुकाय की हिंसा का महापाप मानते हैं। आपको यह विचार कहा है कि अगर विधवाएं निकम्मी रहकर इधर-उधर भटकती फिरेंगी और पापाचार का पोषण करेंगी तो कितना पाप होगा ?

बहिनो ! शील आपका महान् धर्म है। जिन्होंने शील का पालन किया है, वे प्रात स्मरणीय बन गई हैं। आप धर्म का पालन करेंगी तो साक्षात् मगलमूर्ति बन जाएगी !

बहिनो ! स्मरण रखो—तुम सती हो, सदाचारिणी हो, पवित्रता की प्रतिमा हो ! तुम्हारे विचार उदार और उन्नत होने चाहिए। तुम्हारी दृष्टि पतन की ओर कभी नहीं जानी चाहिए। बहिनो ! हिम्मत करो, धैर्य धारण करो। सच्ची धर्म-धारिणी बहिन मे कायरता नही हो सकती। धर्म जिसका अमोघ कवच है, उसमे कायरता कैसी ?

विधवा बहिनो से मेरा यही कहना है कि अब परमेश्वर से नाता जोडो। धर्म को अपना साथी बनाओ। सयम से जीवन व्यतीत करो। ससार के राग-रगो को और आभूषणो को अपने धर्म-पालन मे विघ्नकारी समझकर उनका त्याग करो। इसी मे आपकी प्रतिष्ठा है। आप त्याग-शील देविया हैं। आपको गृहस्थी के ऐसे प्रपचो से दूर रहना चाहिए, जिनसे आपके धर्म-पालन मे बाधा पहुचती है।

आप अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए सोना-पहनना कर्त्तव्य समझती हैं, पर यह बहुत बुरी चाल है। यह चाल विधवा-धर्म के विरुद्ध है। मानव की प्रतिष्ठा, फिर वह चाहे स्त्री हो या पुरुष,

उसके सद्गुणों पर अवलम्बित है । वही नारी की वास्तविक प्रतिष्ठा है। आभूषणो से अपनी प्रतिष्ठा का दिखावा करने अपके सद्गुणों का अपमान करना है । आप सोचती हैं कि बिना आभूषणो के विधवा अच्छी नहीं लगती, इसलिए आभूपण पहनती हैं। पर मैं कहता हूं—विधवा बहिन के मुख-मडल पर जब ब्रह्मचर्य का तेज विराजमान होगा तो उसके सामने आभूषणो की आभा फीकी पड जाएगी । चेहरे की सौम्यता बलात् उसके प्रति आदर का भाव उत्पन्न किये बिना नही रहेगी। उसके तप, त्याग और सयम से उसके प्रति असीम श्रद्धा का भाव प्रकट हुए बिना नही रहेगा। इसमे क्या प्रतिष्ठा नही ? सच पूछो तो यही उत्तम-गुण उसकी सच्ची प्रतिष्ठा के कारण होंगे। ऐसी अवस्था मे कृत्रिम-प्रतिष्ठा के लिए वैधव्य-धर्म के विरुद्ध गहने आदि की आवश्यकता नहीं रहेगी । इसीलिए मैं कहता हू—आत्मा के सद्गुणों का सत्यानाश करने वाली इन रीतियों का आप बिल्कुल त्याग कर दें और संयम से जीवन बिताएं ।

卐

## ११

# विविध विषय

## १–सच्चा श्रृंगार

बहनो री करलो ऐसो सिंगार,
जिससे होओ भव-जल पार।

अङ्ग शुचि कर, फिर कर मंजन, वस्त्र अनुपम धारो,
राग-द्वेष को तज मन-जल से, विद्या वसन सवारो।

बहिनो, यह जन्म हमे बाह्य श्रृङ्गार सजने के लिए नही मिला है। कल्याण होगा तो भाव-श्रृङ्गार से ही होगा। स्त्री का पहला श्रृङ्गार शरीर का मैल उतारना है। मैल उतारने के बाद स्नान करना और फिर वस्त्र धारण करना श्रृङ्गार माना जाता है। लेकिन इतने मे ही श्रृङ्गार की इतिश्री नही हो जाती। ऐसा श्रृङ्गार तो वेश्या भी करती है।

मैं नही कहता कि गृहस्थ लोग शरीर पर मैल रहने दें, पर जल से शरीर का मैल उतारते समय यह मत भूल जाओ कि शरीर की तरह हृदय का मैल धोने की भी बडी आवश्यकता है। केवल जल-स्नान से आत्मा की शुद्धि मानने वाले लोग भ्रम मे हैं।

मन का मैल उतारे विना न तो शुद्धि हो सकती है और न मुक्ति मिल सकती है। इसलिए कहा जाता है कि पानी से मैल उतारने मात्र से कुछ न होगा, मन का मैल उतारो।

केवल जल से मैल उतार लेने से कुछ नहीं होगा, मन के राग-द्वेषरूपी मैल को साफ करो।

स्त्रियों मे राग-द्वेष के कारण ही आपस मे झगडे होते हैं। जो स्त्रिया राग-द्वेष से भरी हैं, वे अपने बेटे को तो बेटा मानती हैं पर देवरानी के बेटे को बेटा नही समझतीं। उनमे इतना क्षुद्रतापूर्ण पक्षपात होता है कि अपने बेटे को तो दूध के ऊपर की मलाई खिलाती हैं और देवरानी या जिठानी के लडके को नीचे का सारहीन दूध देती हैं। जो स्त्री इस प्रकार राग-द्वेष के मल से भरी है, वह सुख-चैन कैसे पा सकती है? राग-द्वेष को हटाकर मन, वचन की शुद्धता मे स्नान करना ही सच्ची शुचि है।

जो स्त्री ऊपर के कपडे तो पहने है मगर जिसने आत्मा के सम्यग्दृष्टिरूपी वस्त्रों को उतार फेंका है, वह ऊपरी वस्त्रो के होते हुए भी नगी-सी ही है। जिसके ऊपर विद्यारूपी वस्त्र नही हैं, उसकी शोभा सुन्दर वस्त्रो से भी नही हो सकती। कृत्य-अकृत्य के ज्ञान को विद्या कहते हैं और स्त्री के लिए यह विद्या ही सिंगार है। अविद्या के साथ उत्तम वस्त्र तो और भी ज्यादा हानिकारक होते हैं।

किसी स्त्री का पति परदेश में था। उसने अपनी पत्नी को पत्र भेजा। पत्नी पढ़ी-लिखी नही थी। वह किसी से पत्र पढवाने का विचार कर ही रही थी कि बढिया वस्त्रो से सुसज्जित एक

वह पढ़ा-लिखा नही था। साथ ही मूर्ख भी था। वह सोचने लगा-पत्र क्या खाक पढू ! मेरे लिए काला अक्षर भैंस बराबर है। उसे अपनी दशा पर इतना दु ख हुआ कि उसकी आखो से आसू वहने लगे। स्त्री ने सोचा—पत्र पढ़कर ही यह रो रहा है। जान पडता है कि मेरा सुहाग लुट गया ! यह सोचकर वह स्त्री भी रोने लगी। स्त्री का रोना सुनकर पडौस की स्त्रियां भी आ पहुची और वे सभी अपनी समवेदना प्रकट करने के लिए सुर मे सुर मिलाने लगीं। कोहराम मच गया।

पडौस के कुछ पुरुष भी आये। उन्होने पूछा—क्या बात हुई ? अभी तो पत्र आया था कि मजे मे हैं और अचानक क्या हो गया। पत्र मे लिखा था—हम मजे मे हैं और इन दिनो चार पैसे कमाये हैं। जब पडौसियो ने यह समाचार बतलाया तो घर वालो का रोना बन्द हुआ।

अब विचारने की बात यह है कि विद्या बिना उत्तम वस्त्रो को धारण करने से क्या परिणाम आता है ? एक आदमी की अविद्या के प्रताप से ही स्त्री को रोना पडा और जलील होना पड़ा। अतः—

केश सवारहु मेल परस्पर न्याय की मांग निकार।
धीरज रूपी महावर धारहु यश की टीकी लिलार।।

स्त्रिया स्नान करके केश सवारती हैं ! केश सुहाग के लिए हैं। मस्तक के केश सवार कर रह जाना ही ठीक नही है किन्तु परस्पर मेल रखना ही सच्चा केश सवारना है। देवरानी-जिठानी से या ननद-भोजाई से लडाई-झगड़ा करके केश सवारने का क्या महत्त्व है ? केश सवार कर लडाई मे चिपट जाने वाली स्त्रियां

चुडैल कहलाती हैं । वास्तव मे परस्पर मेल–मिलाप से रहना ही केश सवारना है । आपस मे मेलरूपीकेश संवार कर न्याय की माग निकालो अर्थात् परस्पर मेल होने पर भी अन्याय की बात मत कहो । न्याय की बात कहो । न किसी का हक छीनो, न खाओ । हो सके तो अपना हक छोड दो । इतना नही बन सकता तो कम से कम दूसरे का हक हजम मत करो । जो स्त्रिया ऐसा करती हैं, समझना चाहिए कि उन्हीं की मांग निकली हुई है। ऐसी देवियो को देवता भी नमस्कार करते हैं ।

स्त्रिया पैरों मे महावर लगाती हैं । किन्तु सच्चा महावर क्या है ? हृदय मे धैर्यरूपी महावर लगाओ । इसी प्रकार ललाट पर यश का तिलक लगाओ । कम से कम ऐसा कोई काम मत करो जिससे लोक मे अपयश होता हो । इस लोक और परलोक मे निंदा करने वाला कार्य न करना ही स्त्रितो का सच्चा तिलक है ।

स्त्रिया अपना सिंगार पूरा करने के लिए गाल पर कस्तूरी या काजल की एक बिन्दी लगाती हैं । वह तिल कहलाता है । किन्तु वास्तव मे अपना एक भी क्षण व्यर्थ न जाने देना ही सच्चा तिल लगाना है । गन्दे विचारो मे समय जाने से ही अनेक खरा–बिया होती हैं ।

परोपकार की मिस्सी लगाओ । केवल दात काले कर लेने से क्या लाभ है ? एक स्त्री अपनी मिस्सी की शोभा दिखलाने के लिए हसती रहती है और दूसरी हसती नही है किन्तु परोपकार मे लगी रहती है। इन दोनो मे से परोपकार करने वाली ही अच्छी समझी जाएगी । जो निठल्ली बैठी दांत निकाला करती है, उसे कोई भली नहीं कहेगा, चाहे मिस्सी कितनी ही बढ़िया क्यो न लगी

हो ! वास्तव मे परोपकार की मिस्सी लगाना ही सच्चा सिंगार है।

पतिव्रता के काजल मे भी शक्ति होती है । शिशुपाल ने अपनी भौजाई से कहा था—मैं बनडा बना हू भाभी, मेरी आखों मे काजल आज दो । उसकी भौजाई ने कहा—रुक्मिणी को ब्याहने का तुम्हें अधिकार नही हैं, क्योकि वह तुम्हे चाहती नही है। जो चाहती ही नही उसे ब्याहने का अधिकार पुरुष को नही है। ऐसी हालत मे मैं तुम्हे काजल नही आजू गी । मैंने काजल आज दिया और तुम वहा से कोरे आ गये तो मेरे काजल का अपमान होगा ।

अरगजा अर्थात् सौन्दर्य बढ़ाने वाला सुगन्धित द्रव्य, जिसे स्त्रिया लगाती हैं, ज्ञान का होना चाहिए। अर्थात् किस अवसर पर क्या करना चाहिए, इसका ज्ञान होना ही सच्चा अरगजालेपन है। इस प्रकार का सिगार करके शम, दम, सतोष के आभूषण पहनना चाहिए और अपने घर पर आये हुए का अपमान न होने देना ही मेंहदी लगाना होना चाहिए ।

सुना है, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की जन्मगाठ के अवसर पर कलेक्टर आदि प्रतिष्ठित अतिथि उनके घर आये हुए थे । विद्यासागर की माता के हाथ मे चादी के कडे थे। माता जब उन अतिथियो के सामने आई तो उन्होने कहा—विद्यासागर की माता के हाथ मे चादी के कडे शोभा नही देते । माता ने उत्तर दिया—अगर मैं सोने के कडे पहनती तो अपने पुत्र को विद्यासागर नही बना सकती थी। हाथो की शोभा सोने के कड़ो से नही, दान देने से बढ़ती है। कहा भी है—

दानेन पाणिर्न तु ककणेन

अर्थात्—हाथ की शोभा दान से है, ककण पहनने से नहीं।

हाथों की शोभा मेहदी लगाने से नही होती, बल्कि घर पर आए हुए गरीबो को निराश व अपमानित न करके उन्हें दान देने से होती है।

शुभ विचारो की फूलमाला धारण करनी चाहिए, वनस्पति के फूलों की माला पहनना तो प्रकृति की शोभा को नष्ट करना है। इसी प्रकार मुख मे पान–बीडा दबा लेने से स्त्री की प्रतिष्ठा नही बढ़ती। प्रतिष्ठा बढाने के लिए स्त्री को विनय सीखना चाहिए।

भारत की स्त्रियो मे विनय की जैसी मात्रा पाई जाती है, अन्य देशो मे नही है। यूरोप की स्त्रियों मे कितनी विनयशीलता है, यह बात तो उस फोटू को देखने से मालूम हो जायगी, जिसमे रानी मेरी कुर्सी पर डटी हैं और बादशाह जार्ज उनके पास नोकर की भांति खड़े हैं! भारत की स्त्रियो मे इतनी अशिष्टता शायद ही मिले।

इस सब सिंगार पर सत्सगति का इत्र लगाना चाहिए। कुसंगति से यह सब पूर्वोक्त सिंगार भी दूषित हो जाता है। कैकेयी भरत की माता होने पर भी मथरा की सगति के कारण बुरी कहलाई।

## २–कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य

आज कर्त्तव्य–अकर्त्तव्य के विषय मे बड़ी उलटी समझ हो रही है। लोगों ने न जाने किस प्रकार अपनी कुछ धारणाए बना ली हैं। बाजार से घी लाने मे पुण्य है और घर पर गाय का पालन करके घी उत्पन्न करने मे पाप है, ऐसा कई लोग समझते

हैं । मगर विचारणीय यह है कि बाजार का घी क्या आकाश से टपक पडा है ? बाजार का घी खरीदने से कितने जानवरो की हिंसा का भागी होना पडता है, इस बात पर आपने कभी विचार किया है ?

यह सभी जानते हैं कि एक रुपये का जितना विदेशी घी आता है उतने देशी घी के दो रुपये लगते हैं । पर विदेशी घी मे किन–किन वस्तुओ की मिलावट होती है, वह स्वास्थ्य को किस प्रकार बिगाडता है, इस बात का भली–भाति अध्ययन किया जाय तो नफे–टोटे की बात मालूम हो जायगी ।

जिस देश वाले भारतवर्ष से हजारों मन मक्खन ले जाते हैं, लाखो मन गेहू ले जाते हैं वही लोग जब आधी कीमत पर वही वस्तुए लाकर हमे देते हैं तो समझना चाहिए कि इसमें कुछ रहस्य अवश्य है । क्या वे दिवालिया बनने के लिए व्यापार करते हैं ?

घर पर उत्पन्न हुए घी से बाजार के घी मे अधिक पाप क्यो है, इस प्रश्न पर ऊपरी दृष्टि से विचार मत कीजिये । आप उस शास्त्र पर नजर रखते हुए विचार कीजिए जो धनुष–बाण बनाने मे घोर आरम्भ–समारम्भ का होना बतलाता है । विदेशी घी तैयार करने के लिए कितने बडे–बड़े कारखाने खडे किये जाते हैं और उसके लिए कितने पशुओ का वध किया जाता है, इस बात का जब आपको पूरा पता लग जायगा तब सहज ही आप जान सकेंगे कि थोडा पाप किसमे है और अधिक पाप किसमे है ।

बहुत से भाई कहते हैं कि मैं गायें पालने का उपदेश देता हूं । वह कहते हैं—महाराज गायें पलवाते हैं, पर मैं क्या उपदेश

देता हूं, क्या कहता हूं और किस आधार से कहता हूं, इस बात को वे समझने का कष्ट नही उठाते । उन्हें कौन समझाए कि साधु का कर्त्तव्य जुदा होता है और गृहस्थ का धर्म जुदा है । दोनों की परिस्थितिया इतनी भिन्न हैं कि उनका कर्त्तव्य एक नही हो सकता । साधु कभी सावद्य भाषा का प्रयोग नहीं करता ।

शास्त्र मे प्रतिपादित कर्त्तव्य क्या है और आधुनिक श्राविकाएं उसे किस रूप मे समझती हैं, इस बात का विचार करने से आश्चर्य होने लगता है। कोई-कोई श्राविका चक्की न चलाने की प्रतीज्ञा लेती है । वह समझती है—'चक्की नहीं चलाऊंगी तो पाप से बच जाऊगी ।' मगर उन्हें यह विचार नहीं आता कि आटा तो खाना ही पडेगा, फिर वह पाप से कैसे बच जायगी ?

मैं तो यहां तक कहता हूं कि मशीन से आटा पिसवाने की अपेक्षा हाथ से पीसकर खाने मे कम पाप होता है। इसका कारण यह है कि हाथ से पीसने मे यतना रखी जा सकती है । पीसते समय गेहूं आदि मे कोई जीव-जन्तु गिर जाए तो उसे बचाया जा सकता है । चक्की के पाटों के बीच मे छिपे हुए जीवों की रक्षा की जा सकती है । हाथ से इतना अधिक आटा नही पीसा जाता कि उसका बहुत अधिक सग्रह हो जाए ।

## ३–मशीन का आटा

अभी कुछ दिनो पहले तक गृहस्थ बहिनें अपने हाथ से आटा पीसती थी । धनाढ्य और निर्धन का इस विषय मे कोई भेद नही था । शरीर के लिए किसी न किसी प्रकार के शारीरिक व्यायाम की जरूरत होती ही है । नीरोग रहने के लिए यह अत्या-

वश्यक है। अपने हाथ से आटा पीसने में बहिनों का अच्छा व्यायाम हो जाता था और वे कई प्रकार के रोगों से बची रहती थीं। परन्तु आजकल हाथ की चक्की घरों से उठ गई और उसका स्थान पनचक्की ने ग्रहण कर लिया है। बहिनें आलसी हो गई हैं। वे अपने हाथ से काम करने में कष्ट मानती हैं और धीरे-धीरे बडप्पन का भाव भी उन्हें ऐसा करने के लिए रोकने लगा है। इसका एक परिणाम तो प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है कि बहिनों ने अपना स्वास्थ्य खो दिया है। आज अधिकांश बाइयां निर्बल निःसत्व और तरह-तरह के रोगों से ग्रस्त हैं। प्रसव के समय अनेक बहिनों को भारी कष्ट उठाना पडता है और कइयों को तो प्राणों से भी हाथ धो बैठना पडता है। इसका एक प्रधान कारण आलस्यमय जीवन है, जिसकी बदौलत वे शारीरिक श्रम से वंचित रहती हैं। इतना सब होते हुए भी, उनकी आंखें नहीं खुलती, यही आश्चर्य है।

शारीरिक रोगों के अतिरिक्त पन-चक्की के कारण और भी अनेक हानियां होती हैं। पन-चक्की आटे का असली तत्त्व तो आप खा जाती है और सिर्फ आटे का निःसत्व कलेवर बाकी रखती है। संसार में कहावत है—जिस खाद्य वस्तु पर डाकिन की दृष्टि पड जाती है, वह सत्व-रहित हो जाती है। डाकिन के सम्बन्ध मे यह कहना तो सिर्फ वहम मात्र है, लेकिन पन-चक्की तो प्रत्यक्ष ही अन्न का सत्व खा जाती है। पन-चक्की मे पिस कर निकला हुआ आटा जलता हुआ होता है और ठंडा होने पर ही काम मे आता है। वह जलता हुआ आटा मानो कह रहा है कि—'मेरा सत्व चूस लिया गया है और मैं बुखार चढे हुए मनुष्य की तरह कमजोर हो गया हूं।'

पन-चक्की का आटा खाने मे आपको सुभीता भले ही

मालूम होता हो, लेकिन किसी भी दृष्टि से वह लाभप्रद नहीं है। सस्कार की दृष्टि से भी वह अत्यन्त हेय है। वम्वई मे सुना था कि मछली वेचने वाले लोग जिस टोकरी मे मछलिया रखकर वेचते हैं, उसी टोकरी मे गेहू लेकर पन-चक्की में पिसाने ले जाते हैं। मछली वाली टोकरी के गेहू जिस चक्की मे पिसते हैं उसी मे दूसरे गेहू पिसते हैं। लोग यो तो छुआछूत का वडा ध्यान रखते हैं लेकिन पन-चक्की मे वह छुआछूत भी पिस कर चूरा-चूरा हो जाती है। क्या मछली वाली टोकरी के गेहू का आटा पनचक्की मे रह कर आप लोगों के आटे मे नही मिलता होगा ! और वह आटा बुरे सस्कार नही डालता होगा ?

आप डाक्टरो की राय लेंगे तो वह आपको वतलायेंगे कि पन-चक्की का आटा हानिकारक है।

इसके सिवाय हाथ की चक्की से अल्प-आरम्भ से काम चलता था, लेकिन पनचक्की से महा-आरम्भ होता है।

पनचक्की से गृहस्थ-जीवन की एक स्वतन्त्रता नष्ट हो गई और परतन्त्रता पैदा हो गई है।

## ४-बिना छना पानी

गर्मी और वर्षा के कारण आटे मे भी कीडे पड जाते हैं, जल मे भी कीडे पड जाते हैं और ईंधन मे भी। लोग धर्म-ध्यान तो करते हैं, परन्तु इन जीवो की रक्षा करने मे और हिंसा के घोर पाप से बचने मे न मालूम क्यों आलस्य करते हैं ? बडे-बडे मटको मे भरा हुआ पानी कई दिनो तक खाली नही होता। पहले से भरा हुआ पानी मे दूसरा पानी डालते रहते हैं। कदाचित् पहले

का पानी प्रारम्भ मे छान कर भरा गया हो, तो भी उसमे जीव उत्पन्न हो जाते हैं। एक बार छना हुआ जल सदा के लिए छना हुआ जल नहीं रहता। अतएव ऊपर से नया पानी डाल देने से वह भी बिना छना पानी हो जाता है। उसे व्यवहार मे लाना हिंसा का कारण है। अगर जल छानने की यतना मर्यादापूर्वक की जाय, तो अहिंसा-धर्म का भी पालन हो और स्वास्थ्य की भी रक्षा हो। आप सामायिक आदि धर्म-ध्यान तो करते हैं, पर कभी इस पर ध्यान देते हैं कि आपके घर मे पानी छानने के कपडे की क्या दशा है ?

पहनने-ओढ़ने के कपडो की सफाई करते हैं, परन्तु पानी छानने कि कपडे की ओर ध्यान नही जाता। सेठ-सेठानी की पेटिया कपडो से भरी रहती हैं, फिर भी पानी छानने के कपडे मे तो कजूसी ही की जाती है। आप स्वय इस ओर ध्यान नही देते। नोकरो के भरोसे छोड देते हैं। इस कारण जल की पूरी तरह यतना नही होती।

लोगों ने इस प्रकार की छोटी-छोटी वातो मे भी विधि का नाश कर डाला है। केवल जल न छानने के कारण ही—बिना छना जल पीने से ही बहुत रोग होते हैं, ऐसा डाक्टरो का मत है। विना छना जल न पीने से अहिंसा वढेगी, रोगो से रक्षा होगी और दया का पालन होगा। जो आदमी विना छना जल भी न पीयेगा, उनके हृदय मे कभी मछली पकड़ने की भावना उत्पन्न न होगी।

## ५—रात्रि-भोजन

जल छानने के साथ ही भोजन मे भी विवेक रखने की आवश्यकता है। रात्रि-भोजन अत्यन्त ही हानिकारक है। यथा

जैन और क्या वैष्णव सभी ग्रन्थो मे रात्रि-भोजन को त्याज्य माना गया है । जिसने रात्रि-भोजन त्याग दिया है, वह एक प्रकार से तपस्या करके अनेक रोगो से बच रहा है । रात्रि-भोजन त्यागने से बहुत लाभ होता है । प्लेग के कीडो का जोर दिन मे उतना नहीं होता, जितना रात्रि मे होता है । रात्रि मे प्लेग के कीडे प्रबल हो जाते हैं, दिन मे सूर्य की किरणो से या तो वह नष्ट हो जाते हैं या प्रभावशील हो जाते हैं । डाक्टरो और शास्त्रकारो का कथन है कि जो भोजन रात्रि मे रहता है, उसमे अनेक प्रकार के कीटाणु पैदा हो जाते हैं । इस प्रकार रात्रि का भोजन सब प्रकार से अभक्ष्य होता है । मगर खेद है कि कई भाई चार पहर के दिन मे तो भोजन नहीं कर पाते और रात्रि मे ही फुर्सत पाते हैं ।

रात्रि-भोजन की बुराइया इतनी स्थूल हैं कि उन्हें अधिक समझाने की आवश्यकता नही जान पडता । रात्रि मे चाहे जितना प्रकाश किया जाय, अन्धेरा रहता ही है । बल्कि प्रकाश को देख कर बहुत-से कीडे आ जाते हैं और वे भोजन मे गिर जाते हैं। अगर एक दम अन्धेरे मे भोजन किया जाय तो आकर गिरने वाले जीवजन्तुओ का पता लग ही नही सकता । इस प्रकार दोनो अवस्थाओ मे रात्रि-भोजन करने वाले अभक्ष्य भक्षण और हिंसा के पाप से नहीं बच सकते । रात्रि-भोजन के प्रत्यक्ष प्रतीत होने वाले दोषों का दिग्दर्शन कराते हुए हुए आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है—

मेधां पिपीलिका हन्ति, यूका कुर्याज्जलोदरम् ।
कुरुते मक्षिका वान्ति, कुष्ठरोगं च कोलिकः ।।
कण्टको दारुखण्डं च, वितनोति गलव्यथाम् ।
व्यञ्जनान्तर्निपतितस्तालु, विध्यति वृश्चिकः ।।

**विलग्नश्चः गले वाल, स्वरभङ्गाय जायते ।**
**इत्यादयो दृष्टदोषा सर्वेषां निशिभोजने ॥**
**—योगशास्त्र, तृतीय प्रकाश**

अर्थात् रात्रि मे विशेष प्रकाश न होने के कारण अगर कीडी भोजन के साथ पेट मे चली जाय, तो वह मेधाशक्ति(बुद्धि) का नाश करती है । । जूं गिर जाय तो जलोदर नामक भयकर रोग होता है । मक्खी से वमन होता है । कोलिक (जीव विशेष) से कोढ़ होता है । काटा या लकडी की फास भोजन के साथ खाने मे आ जाय तो गले मे पीडा हो जाती है । कदाचित् बिच्छू व्यजनो मे मिल जाय तो वह तालू को फोड डालता है । बाल से स्वर भग होता है । इस प्रकार के अनेक दोष रात्रि-भोजन करने से उत्पन्न होते हैं ।

पूर्वोक्त शारीरिक दोषो के अतिरिक्त रात्रि-भोजन हिंसा का कारण तो है ही । इस विषय मे कहा है—

**जीवाण कुंथुमाईण घायणं भायणधोयणाईसु ।**
**एवमाइ रयणिभोयणदोसे को साहिउं तरइ ॥**

अर्थात्—जो लोग रात्रि मे भोजन करते हैं, उनके यहां रात्रि का भोजन पकाने का भी विचार नही रहता और ऐसी स्थिति मे वर्तन धोने आदि कामो मे कुंथुवा आदि जीवो की घोर हिंसा होती है । रात्रि-भोजन मे इतने अधिक दोष हैं कि कहे नही जा सकते ।

रात्रि-भोजन के दोषो के उदाहरण खोजने से सैकड़ो मिल सकते हैं । जिस रात्रि-भोजन को अन्य लोग भी निषिद्ध मानते हैं, उसका सेवन अहिंसा और संयम का अनुयायी जैन किस प्रकार

कर सकता है ? एक उदाहरण लीजिये—

जैनी रात को नहीं खाते है, सुन चातुर भाई ।
हठ करके किसी ने खाया, क्या नसीहत पाई ।।
रामदयाल सागर मे हकीम था, उसकी थी नारी ।
प्यास लगी पानी की उसको, रात थी अन्धियारी ।।
मकड़ी उसमें पड़ी आन कर, जहरी थी भारी ।
जहरी मकड़ी गई पेट में, हो गई दुखियारी ।।
पेट फूला और सूजी सारी,
वैद औषधि करी तैयारी ।
नहीं लागे कारी ।।
छह महीने में मुई निकली, सागर में भाई ।।हठ०।।

आप इस कविता की शाब्दिक त्रुटियो पर ध्यान न देकर उसके भावो पर ध्यान दीजिए। रात्रि-भोजन से होने वाली हानियों के उदाहरण पहले के भी हैं और आज भी अनेक सुने जाते हैं। सागर के हकीम ने रोगो पर हिकमत चलाई, लेकिन रात्रि का भोजन नही त्यागा। नतीजा यह हुआ कि उसे अपनी स्त्री से हाथ धोना पडा। आजकल के वैज्ञानिक भी रात्रि-भोजन को राक्षसी भोजन कहते हैं। रात्रि मे पक्षी भी खाना-पीना छोड देते हैं। पक्षियो मे नीच समझे जाने वाले कौवे भी रात मे नही खाते। हा, चमगीदड रात्रि को खाते हैं, परन्तु क्या आप उन्हे अच्छा समझते हैं ? आप उनका अनुकरण करना पसन्द करते हैं ?

सारांश यह है कि रात्रि-भोजन अहिंसा और स्वास्थ्य दोनो

का ही नाशकर्ता है, अतएव सब भाइयों और बहिनों को धर्म की और साथ ही शरीर की रक्षा के लिए रात्रि-भोजन का त्याग करना चाहिये ।

कुछ दिन हुए एक समाचार-पत्र मे एक घटना पढी थी। वह इस प्रकार थी—एक व्यक्ति के यहा कुछ मित्र आये। मित्र लोग आधुनिक शिक्षा के सभी फलो से युक्त थे। वम्बई की तरफ लोगो मे चाय का विशेष तौर पर सत्कार होता है। रात्रि के दस ग्यारह वजे का समय था। उस व्यक्ति ने आगुन्तक मित्रो के लिए चाय वनाई। सबने रुचि के साथ चाय पी ली। लेकिन एक भला आदमी ऐसा था जो रात को कुछ खाता-पीता नही था। उसने चाय नही पी। दूसरे आदमियो ने वहुत आग्रह किया, दवाव डाला। उससे कहा गया—'यार! इतना पढ़-लिख करके भी धर्म-कर्म के ढोंग मे पडे हो! यह धर्म तो विप की पुडिया है। धम ने और साधुओ ने ही सव खरावी कर रखी है। भाई, बीडी-चाय पी लो थकावट मिट जायगी। तवीयत हरी हो जायगी।

चाय के विज्ञापनो मे लिखा रहता है कि गर्म चाय थकावट को मिटाती है, स्फूर्ति देती है, आदि-आदि। इस प्रकार के विज्ञापनो द्वार चाय का प्रचार किया जाता है। मगर कौन विचार करता है कि चाय से क्या-क्या हानिया होती हैं? विज्ञापनो द्वारा लोगो को किस प्रकार भुलावे मे डाला जाता है!

वहुत आग्रह करने पर भी उस एक पुरुष ने चाय पीना स्वीकार नही किया। शेप सव चाय पीकर सो गये। वह लोग जो सोये सो सदा के लिए ही सोये। सवेरा होने पर भी नहीं उठे। विस्तरो पर उनके निर्जीव शरीर पडे थे। अपने मित्रो को मरा

हुआ देखकर चाय न पीने के कारण जीवित रहने वाला बहुत घबराया। उसने सोचा—कही मुझ पर ही कोई आफत न आ पडे। थाने मे इत्तला करने पर पुलिस तहकीकात करने आई। उस जीवित बचने वाले ने कहा—ये सब लोग चाय पी-पी कर सोये थे। जान पडता है, चाय मे ही कोई विषैली चीज मिली होगी। इनकी मृत्यु का और कारण मालूम नहीं होता। पुलिस-अफसर ने चायदानी देखी तो मालूम हुआ कि चायदानी की नली मे एक छिपकली जमी हुई थी, जो चाय के साथ उबल गई और उसके जहर से सभी पीने वाले अपने प्राणो से हाथ धो बैठे।

कोद (बिडवाल) की ठकुरानी ने दिन भर एकादशी का व्रत किया और रात को फलाहार करने लगी। ठकुरानी ने केवल एक ही ग्रास खाया था कि भयकर रोग हो गया। अनेक प्रकार की चिकित्सा करने पर भी वह न बच सकी।

**अस्तंगते दिवानाथे आपो रुधिरमुच्यते।**
**अन्न मांससमं प्रोक्तं, मार्कण्डेयमहर्षिणा ॥**

यहां सूर्य डूबने के पश्चात् अन्न को मास और पानी को रुधिर के समान बतलाया गया है। यह चाहे आलकारिक भाषा हो, फिर भी कितने तीखे शब्दों मे रात्रि के भोजन-पान का त्याग बतलाया गया है! अतएव रात्रि-भोजन के अनेक विध दोषो का विचार करके आप उसका त्याग करें।

## ६—चाय

चाय का प्रचार बहुत हो गया है। चाय का प्रचलन हो भले गया हो मगर समझदार लोगो का कहना है कि चाय हानि

करने वाली चीज है । अतएव इस पाप को भी त्यागने की आवश्यकता है । यह मत देखो कि इसका प्रचार बहुत लोगो मे हो गया है । यह भी मत सोचो कि सभ्य कहलाने वाले लोग इसका सेवन करते हैं । जब यह निश्चित है कि चाय हानिकारक है तो फिर कोई भी उसका सेवन क्यों न करें, वह हानिकारक ही रहेगी । जिस हानि करने वाली चीज का अधिक प्रचार हो जाता है, उसी का निषेध किया जाता है । कहा जाता है कि उबलते हुए पानी मे दूध डालने से उसका सत्व नष्ट हो जाता है । कई स्थानो पर चाय का व्यवहार बन्द करने के लिए होटलो पर टैक्स बढा दिया गया है, लेकिन इसका कोई अभीष्ट परिणाम नहीं आया । होटल वाले पैसे बचाने के लिए दूध के बदले भ्रष्ट चीजें डाल देते हैं और इस प्रकार वे तो अपने टैक्स की पूर्ति कर लेते हैं परन्तु ग्राहको को मूर्ख बनना पडा है ।

सरकारी आदेश से ऐसी चीजो के बन्द होने की अपेक्षा प्रजा स्वय समझ कर बन्द कर दे तो कितना अच्छा हो ! अगर आप लोग विचार करें तो राज्य-सत्ता को भी सहायता मिल सकती है और चाय के पाप से आपका छुटकारा हो सकता है ।

इस देश मे चाय का इतना अधिक प्रचलन हो गया है कि बहिनें भी चाय पीने लगी हैं और यह कोई बुरा काम नहीं समझा जाता । मैंने तो यहा तक सुना है कि उपवास करने वाली बाइया पारणा करते समय पहले चाय लेती हैं । यह बडी भयकर बात समझिए । जब स्त्री और पुरुष दोनो ही चाय के शौकीन हो जाएं तो फिर चाय को डर ही किसका रहा ! घर मे उसका स्वच्छन्द विहार होगा और यह बाल-बच्चों को भी चूसे बिना नहीं रहेगी । अतएव इस दुर्व्यसन का त्याग करने के सम्बन्ध मे भी विचार करना चाहिए ।

# ७—सच्ची लज्जा

आजकल की बहुत-सी स्त्रिया घूंघट आदि से ही लज्जा की रक्षा समझती हैं, किन्तु वास्तव मे लज्जा कुछ और ही है। लज्जा-वती अपने अंग-अंग को इस प्रकार से छिपाती है कि कुछ कहा नही जा सकता। लज्जावती कैसी होती है, यह बात उदाहरण से समझ लीजिये—

एक लज्जावती बाई पतिव्रत धर्म का पालन करती हुई अपना जीवन बिताती थी। उसने यह निश्चय किया था कि मेरे साथ जो भी कोई रहेगी, उसे भी मैं ही शिक्षा दूंगी। उसकी शिक्षा से मुहल्ले की बहुत-सी स्त्रियां सदाचारिणी बन गईं।

उसी मुहल्ले मे एक और औरत थी, जिसका स्वभाव इससे एकदम विपरीत था। यह पूर्व को तो वह पश्चिम को जाती थी। वह अपना दल बढाने के लिए स्त्रियो को भरमाया करती। उस पतिव्रता की निन्दा करती, उसकी सगति को बुरा बतलाती और कहती—'अरी, उसकी सगत करोगी तो जोगिन बन जाओगी। खाना-पीना और मौज करना ही तो जीवन का सबसे बडा लाभ है।

कुछ स्त्रिया उस निर्लज्जा और धूर्ता स्त्री की भी बातें सुनने वाली थीं, पर ऐसी थी कम ही। सदाचारिणी की बातें सुनने वाली बहुत थीं। यह देखकर उसे बडी ईर्ष्या होती और उसने उस सदाचारिणी की जड खोद फेंकने का निश्चय कर लिया।

वह सदाचारिणी बाई बडी लज्जावती थी, मगर ऐसी नही कि घर मे ही बन्द रहे और और बाहर न निकले। वह अपने काम करने के लिए बाहर भी जाती थी। जब वह बाहर निक-

लती तो निर्लज्जा उससे कहती—'मैं तुझे अच्छी तरह जानती हूं कि तू कैसी है। बडी बगुला-भगत बनी फिरती है, लेकिन तेरी जैसी दूसरी कहीं शायद ही मिले।'

निर्लज्जा ने दो-चार वार लज्जावती से ऐसा कहा। लज्जावती ने सोचा—क्षमा रखना तो उचित है, पर ऐसा करने से—चुपचाप सुन लेने से तो लोगो को शका होने लगेगी। एक वार ऐसा ही प्रसग उपस्थित होने पर उसने रुक कर कहा—'तेरा मार्ग अलग है और मेरा मार्ग अलग है। मेरा-तेरा कोई लेन-देन नहीं, फिर विना मतलव अपनी जवान क्यो विगाडती है ?'

लज्जावती का इतना कहना था कि निर्लज्जा भडक उठी। वह कहने लगी—'तू मीठी-मीठी वातें वनाकर अपने ऐब छिपाती है और जाल रचती रहती है। मगर मैं तेरे सारे ऐब ससार के सामने खोल कर रख दूगी।'

यह सुनकर लज्जावती को भी कुछ तेजी आ गई। उसने उस कुलटा से कहा—'तुझे मेरे चरित्र को प्रकट करने का अधिकार है, मगर जो यद्वा-तद्वा ऊल-जलूल कहा तो तेरा भला न होगा।'

पतिव्रता की यह युक्तिपूर्ण वात सुनकर लोगो पर अच्छा प्रभाव पडा। लोगो ने उससे कहा—'वहिन, तुम अपने घर जाओ। यह कैसी है, यह सभी जानते हैं।' लोगो की वात सुनकर पतिव्रता अपने घर चली गई। यह देखकर कुलटा ने सोचा—'हाय! यह भली और मैं बुरी कहलाई। अब इसकी पूछ और वढ़ जायगी और मेरी वदनामी वढ़ जायगी। ऐसे जीवन से मरना ही भला! मगर इस प्रकार मरने से भी क्या लाभ है? अगर उसे कोई

कलक लगाकर उसके प्राण ले सकू' तो मेरे रास्ते का काटा दूर हो जाए। मगर कलक क्या लगाऊ'? और कोई कलंक लगाने पर तो उसका सावित करना कठिन हो जाएगा। क्यो न मैं अपने लडके को ही मार डालू और दोष उसके माथे मढ दू'। लोगो को विश्वास हो जायगा और उसका भी खात्मा हो जायगा।'

इस प्रकार क्रूरतापूर्ण विचार करके उसने अपने लडके के प्राण ले लिये। लडके का मृत शरीर उस सदाचारिणी के मकान के सामने कुए' मे फैंक आई। इसके बाद रो-रो कर, बिलख-बिलख कर अपने लडके को खोजने लगी। हाय ! मेरा लड़का न जाने कहा गायब हो गया है! दूसरे लोग भी उसके लडके को ढूढने लगे। आखिर वह लोगो को उसी कुए के पास लाई जिसमे उसने लडके का शव फैंका था। लोगो ने कुए' को ढूढा तो उसमे से बच्चे की लाश निकल आई। लाश निकलते ही दुराचारिणी उस सदा-चारिणी का नाम ले-लेकर कहने लगी—'हाय! उस भगतन की करतूत देखो। उस पापिनी ने मुझसे बैर भजाने के लिए मेरे लडके को मार डाला! डाकिन ने मेरा लाल खा लिया। हाय! मेरे लडके को गला घोटकर मार डाला।'

आखिर न्यायालय मे मुकदमा पेश हुआ। दुराचारिणी ने सदाचारिणी पर अपने लड़के को मार डालने का अभियोग लगाया। सदाचारिणी को भी न्यायालय मे उपस्थित होना पडा। उसने सोचा—बडी विचित्र घटना है। मैं उस लडके के विषय मे कुछ नही जानती, फिर भी मुझ पर हत्या का आरोप है। खैर कुछ भी हो, अभियोग का उत्तर तो देना ही पड़ेगा।

कुलटा स्त्री ने अपने पक्ष के समर्थन मे कुछ गवाह भी पेश

किये । सदाचारिणी से पूछा गया—'क्या तुमने इस लड़के की हत्या की है ?'

सदाचारिणी—नही, मैंने लडके को नही मारा। किसने मारा है, यह भी मैं नहीं जानती और न मुझे किसी पर शक ही है।

मामला बादशाह के पास पहुचाया गया । बादशाह बडा बुद्धिमान् और चतुर था । उसने सदाचारिणी को भलीभांति देखा और सोचा—कोई कुछ भी कहे, सबूत कुछ भी हो पर यह निश्चित मालूम होता है कि इसने लडके की हत्या नही की ।

बादशाह का वजीर भी बडा बुद्धिमान् था । उसने कहा—इस मामले मे कानून की किताबें मददगार नही होगी । यह मेरे सुपुर्द कीजिये । मैं इसकी जांच करूगा ।

बादशाह ने वजीर को मामला सौंप दिया । वजीर दोनो स्त्रियो को साथ लेकर अपने घर आया । वह सदाचारिणी को साथ लेकर एक ओर जाने लगा । सदाचारिणी ने वजीर से कहा—मैं अकेली पर-पुरुष के साथ एकांत मे कदापि नहीं जा सकती, फिर वह चाहे सगा बाप ही क्यो न हो । आप जो पूछना चाहें, पूछ सकते हैं ।

वजीर ने धीमे स्वर मे कहा—तुम मेरी एक बात मानो तो मैं तुम्हे बरी कर दूगा ।

सदाचारिणी—आपकी बात सुने बिना मैं नहीं कह सकती कि मै उसे मान ही लूगी । अगर धर्म-विरुद्ध बात नही हुई तो मान लूगी, अन्यथा जान देना मन्जूर है ।

वजीर—मैं तुम्हारा धन नही जाने दूगा, तब तो मानोगी ।

सदाचारिणी—अगर धर्म न जाने योग्य बात है तो साफ क्यो नही कहते ?

वजीर—तुम्हारे खिलाफ यह आरोप है कि तुमने लडके को मारा है । न मारने की बात केवल तुम्ही कहती हो, पर तुम्हारी बात पर विश्वास कैसे किया जाय ? अपनी बात पर विश्वास कराना है तो नंगी होकर मेरे सामने आ जाओ । इससे मैं समझ लूंगा कि तुमने मेरे सामने जैसे शरीर पर पर्दा नही रखा, उसी प्रकार बात कहने मे पर्दा न रखोगी ।

सदाचारिणी—जिसे मैं प्राणो से भी अधिक समझती हूं,उस लज्जा को नही छोड़ सकती और आपका भी यह कर्त्तव्य नहीं है । आप चाहे तो शूली पर चढा सकते हैं—फासी पर लटकाने का आपको अधिकार है, परन्तु लज्जा का त्याग मुझ से न हो सकेगा ।

इतना कहकर वह वहा से चल दी । वजीर ने कहा—'देखो, समझ लो । न मानोगी तो मारी जाओगी ।' सदाचारिणी ने कहा—'आपकी मर्जी । यह शरीर कौन हमेशा के लिए मिला है । आखिर मनुष्य मरने के लिए ही तो पैदा हुआ है ।

वजीर ने सोच लिया—'यह स्त्री सच्ची और सती है ।'

इसके बाद वजीर ने कुलटा को बुलाकर वही कहा—'तुम मेरी एक बात मानो तो तुम जीत जाओगी ।'

कुलटा—मैं तो जीती हुई हूं ही । मेरे पास बहुत से सबूत हैं ।

वजीर—नहीं, अभी संदेह है। वह बाई हत्यारिणी नहीं है।

कुलटा—आप इसके जाल में तो नहीं फंस गये? वह बड़ी धूर्ता है।

वजीर—यह सन्देह करना व्यर्थ है।

कुलटा—फिर आप उस हत्यारिणी को निर्दोष कैसे बतलाते हैं?

वजीर—अच्छा; मेरी एक बात मानो।

कुलटा—क्या?

वजीर—तुम मेरे सामने कपड़े खोल दो तो मैं समझूंगा कि तुम सच्ची हो।

कुलटा अपने कपड़े खोलने लगी। वजीर ने उसे रोक दिया और जल्लाद को बुलाकर कहा—इसे ले जाकर बेंत लगाओ।

जल्लाद उसे बेरहमी से पीटने लगा। वह चिल्लाई—ईश्वर के नाम पर मुझे मत मारो। जल्लाद ने पूछा—'तो बता, लड़के को किसने मारा है?' कुलटा ने सच्ची बात स्वीकार कर ली। मार के आगे भूत भागता है, यह कहावत प्रसिद्ध है।

वजीर ने अपना फैसला लिखकर बादशाह के सामने पेश कर दिया। कहा—लड़के की हत्या उसकी मा ने ही की है।

बादशाह ने कहा—यह कौन मान सकता है कि माता अपने पुत्र को मार डाले! लोग अन्याय का सन्देह करेंगे।

वजीर ने कहा—यह कोई अनोखी बात नहीं है। धर्म—

शास्त्र के अनुसार पहला धर्म लज्जा है। जहां लज्जा है, वहीं दया है। मैंने दोनों की लज्जा की परीक्षा की। पहली बाई ने मरना स्वीकार किया, पर लाज तजना स्वीकार न किया। वह धर्मशीला है। इस दूसरी ने मुझे भी कलंक लगाया और फिर लाज देने को तैयार हो गई। यह देखकर इसे पिटवाया तो लड़के की हत्या करना स्वीकार कर लिया।

सारा मामला बदल गया। सच्चरित्रा बाई के सिर मढा हुआ कलंक मिट गया। बादशाह ने सच्चरित्रा को धन्यवाद देकर कहा—'आज से तुम मेरी बहिन हो।'

लज्जा के प्रताप से उस बाई की रक्षा हुई। वह लाज तज देती तो उसके प्राण भी न बचते। बादशाह ने कुलटा को फांसी की सजा सुनाई और सदाचारिणी से कहा—'बहिन! तुम जो चाहो, मुझसे मांग सकती हो।

सदाचारिणी बाई ने उठकर कहा—'आपके अनुग्रह के लिए आभारी हूं। मैं आपके आदेशानुसार यही मांगती हूं कि यह बाई मेरे निमित्त से न मारी जाय। इस पर दया की जाय।'

बादशाह ने वजीर से कहा—तुम्हारी बात बिलकुल सत्य है। जिसमे लज्जा होगी, उसमे दया भी होगी। इस बाई को देखो। अपने साथ बुराई करने वाली की भी कितनी भलाई कर रही है।

बादशाह ने सदाचारिणी बाई की बात मान कर कुलटा को क्षमा-दान दे दिया। कुलटा पर इस घटना का ऐसा प्रभाव पडा कि उसका जीवन एकदम बदल गया।

साराश यह है कि लज्जा एक बडा गुण है । जिसमे लज्जा होगी, वह धर्म का पालन करेगा ।

## ८—अपने दोष देखो

दूसरे के अवगुण देखने से काम नहीं चलेगा । खुद अपने अवगुण देखने से ही कल्याण का मार्ग मिल सकता है । दूसरो के अवगुण देखना स्वय एक अवगुण है । दुनिया के अवगुणो को अपने चित्त मे धारण करोगे तो चित्त अवगुणो का खजाना बन जायगा । इसके अतिरिक्त अवगुण आपके लिए ऐसे साधारण हो जाएगे कि आप उन्हे शायद हेय भी समझना छोड दें । दुनिया के प्रत्येक मनुष्य मे अगर कुछ अवगुण होगे तो कुछ गुण भी होगे । आप अपनी दृष्टि ऐसी उज्ज्वल बनाइए कि आपको दूसरे के गुण दिखाई दें मगर अवगुणो की तरफ दृष्टि मत जाने दीजिए । हा, अवगुण देखने हैं तो अपने ही अवगुण देखो । अपने अवगुण देखने से उन्हे त्यागने की इच्छा होगी और आप सद्गुणी बन सकेंगे ।

अगर परमात्मा के दर्शन करने है तो सीधे मार्ग पर आकर यह विचार करो—मैं अपराधी हू । मेरे अवगुणो का पार नही है । प्रभो ! मुझसे ये अवगुण कब छूटेंगे ?

इस प्रकार अपने दोष देखते रहने से हृदय निर्दोष बनेगा और परमात्मा का दर्शन होगा । कोई आदमी चित्र बनाना न जानता होगा तब भी यदि वह काच पास मे रख कर किसी वस्तु के सामने करेगा तो उस वस्तु का प्रतिबिम्ब उस काच मे आ जायगा । अगर काच ही मैला होगा तो फोटो नही आएगा । अब अगर और कुछ न बन पडे तो भी हृदय का काच तो [illegible]

स्वच्छ रखो । इससे परमात्म-दर्शन हो सकेगा ।

## ६-द्रौपदी की विदाई

शुभ मुहूर्त मे द्रौपदी का विवाह हुआ । द्रुपद और कृष्ण ने पाडवो को खूब सम्पत्ति दहेज मे दी । द्रौपदी अन्य रानियो के साथ अपनी सास कुन्ती के पास गई ।

द्रौपदी के परिवार वालो को और खास तौर पर उसकी माता को विदाई के समय कितना दुःख हुआ होगा, यह बात भुक्त-भोगी गृहस्थ ही समझ सकते हैं । लडकी की विदाई का करुण दृश्य देखा नही जाता । कन्या का वियोग हृदय को हिला देता है । साधारण घरो मे भी कन्या की विदाई के समय कोलाहल मच जाता है तो राजकुमारी द्रौपदी की विदाई का किन शब्दो मे वर्णन किया जा सकता है !

द्रौपदी की माता ने द्रौपदी को दिलासा देते हुए कहा—बेटी, जैसे मैं अपने पिता का घर छोड कर आई हू, उसी प्रकार तू भी घर छोडकर ससुराल जा रही है । यह तो लोक की परम्परा ही है । इसका उल्लघन नहीं किया जा सकता । तेरे जैसी पुत्री पाकर मैं निहाल हुई हूं, अब अपने कुल की लाज रखना तेरे हाथ की बात है । तूने मेरे स्तनो का दूध पीया है, इसलिए ऐसा कोई काम मत करना, जिससे मेरा मुंह काला हो । अपने जीवन मे कोई भी अपवाद न लगने देना ।

अच्छी माता ऐसी ही शिक्षा देगी । वह बतलाएगी कि तुझे पति, सास, ससुर और नौकरो-चाकरों के साथ कैसा शिष्टतापूर्ण व्यवहार करना चाहिए । कोई समझदार माता अपनी लड़की को

यह नहीं समझाएंगी कि अब तुम रानी हो, सो मनमानी करना।

खेद है कि आजकल की अशिक्षित माताएं अपनी पुत्रियों को उल्टा पाठ पढ़ाती हुई कहती हैं—देख बेटी, हमने तुझे बेचा नहीं है। तेरे बदले मे कुछ लिया भी नहीं है। इसलिए सास आदि से बने तो ठीक, नहीं तो जामाता को अलग दूकान करा देंगे।' ऐसी शिक्षा गीतों द्वारा भी दी जाती है। आरम्भ मे ही इस प्रकार के बुरे संस्कार डालने के कारण लडकी का भविष्य बुरी तरह बिगड जाता है।

द्रौपदी की माता ने उसे सीख दी थी कि बेटी, अपने घर की आग बाहर मत निकालना। इसी तरह बाहर की आग घर में मत लाना। जो देने लायक हो, उसे देना। जो न देने योग्य हो, उसे न देना। इसी प्रकार दोनों को देना तथा घर की अग्नि आदि देवों की पूजा करना।

ये बातें आलंकारिक ढंग से कही गई हैं। घर की आग बाहर मत निकालना और बाहर की आग घर मे मत लाना, इस कथन का अर्थ यह है कि कदाचित् घर मे क्लेश हो जाय तो दूसरों के आगे इसका रोना मत रोना। उसे बाहर प्रकट नहीं करना बल्कि घर मे ही बुझा देना। इसी प्रकार बाहर की लडाई घर मे न आने देना। दूसरों की देखा-देखी अपने घर मे कोई बुराई न आने देना।

आज भारतीय बाहर की—यूरोप की आग अपने घरों मे ले आये हैं। यूरोप की अनेक बुराइयां आज भारत मे घर कर रही हैं। इसी कारण भारतीय जीवन मलिन और दुःखमय बनता जा रहा है। भारत की उज्ज्वल संस्कृति नष्ट हो रही है और उसका

न देना और अयोग्य को देना मूर्खता है।

इससे आगे कहा है—योग्य और अयोग्य दोनो को देना। इसका अर्थ यह है कि कोई भूखा आदमी रोटी पाने की आशा से तुम्हारे द्वार पर आवे तो उस समय योग्य-अयोग्य का विचार न करना। उसे रोटी दे देना ही धर्म है। करुणा के समय कुपात्र-सुपात्र का विचार मत करना। करुणा करके सभी को देना। नीति मे कहा है—

> अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते।
> स तस्मै दुष्कृतं दत्वा पुण्यमादाय गच्छति ॥

जिसके घर से अतिथि अभ्यागत निराश होकर लौट जाता है, वह पाप का भागी होता है।

ग्रामों मे कई-एक भद्र लोग ऐसे देखे गये हैं कि उनके घर से रोटी न ली जाय तो वे रोने लगते हैं। उन्हे यह विचार तो होता नहीं कि साधु-सदोष आहार नही लेते-निर्दोष ही लेते है। वे केवल यही जानते हैं कि साधु हमारे घर आये और खाली हाथ लौट गये। यही विचार कर वे रोने लगते हैं। जो अतिथि कष्ट का मारा आपके द्वार पर आया है, वह दया पाने की आशा से आया है। उसे निराश कर देना उचित नही है। अगर आप निराश करेंगे तो नीतिकार के कथनानुसार उसका पाप आपने ले लिया है और आपका पुण्य उसने ले लिया है।

पुण्य-पाप का लेन-देन कैसे हो सकता है? इसका उत्तर यह है—वह आपको पुण्यवान् समझकर आपके पास आया था। आपने उसे गालियां सुनाई, पीट दिया या कटुक वचन सुना दिये।

उसने दीनता एव नम्रता के साथ आपसे याचना की और आपने उसे झिडक दिया तो वह अतिथि अपनी नम्रता से पुण्य लेकर जाता है और आपको पापी बना जाता है ।

द्रौपदी की माता ने उसे इस प्रकार की शिक्षा दी । वहां जो दूसरी स्त्रिया मौजूद थी, वे समझती थीं कि महारानी हम सभी को शिक्षा दे रही हैं । द्रौपदी की माता तथा अन्य सभी कुटुम्बी-जनो की आखें आसुओ से भरी हुई थीं ।

जब कन्या पीहर से ससुराल जाती है तो पीहर को देख करके वह सोचती है—मैं इस घर के आगन मे खेली हू और आज यही घर छूट रहा है । अदृष्ट मुझे और कही ले जा रहा है । जीवन मे जिन्हे अपना माना था, वे पराये बनते जा रहे हैं और जिन्हे देखा नही, जाना नहीं, उन्हें आत्मीय बनाना होगा ! स्त्री जीवन की यह कैसी विचित्रता है, मानो एक ही जीवन मे स्त्री के दो,एक-दूसरे से भिन्न जीवन हो जाते हैं। क्षण भर मे 'ममता का क्षेत्र बदल जाता है !'

तत्त्व की दृष्टि से देखा जाय तो जो बात स्त्री के जीवन मे घटित होती है, वह मनुष्य मात्र के जीवन मे, यहां तक कि जीवमात्र के जीवन मे घटित होती है । अन्तर है तो केवल यही कि स्त्री-जीवन की परिवर्तन-घटना आखो के सामने होती है, जब कि दूसरो की आखो से ओझल होती है । इतना अन्तर होने पर भी असली चीज दोनो जगह समान है । इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता । आज जिन्हे तुम अपना मान रहे हो, वे क्या अनादि-काल से तुम्हारे हैं और अनन्त काल तक तुम्हारे रहेगे ?

भक्तजन कहते हैं—हम भी कन्या हैं । ससार हमारा

ससुराल है और ईश्वर का घर पीहर है। कर्म की प्रेरणा से आत्मा को संसार में निवास करना पड़ता है। जैसे कन्या ससुराल में आकर भी अपने पीहर को नहीं भूलती, उसी प्रकार संसार में रह कर भी भगवान् को भूलना उचित नहीं है।

कुन्ती, माद्री और गांधारी को यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि पुत्रवधू द्रौपदी आ रही है। उन सबको विदित हो चुका है कि द्रौपदी कोई साधारण वधू नहीं है। स्वयंवर में उसकी चेष्टाएं देख कर उन्होंने उसका महत्त्व जान लिया है। इस कारण पुत्रवधू के आगमन को जान कर उनकी प्रसन्नता का पार न रहा। दूसरी ओर द्रौपदी की माता के दिल की वेदना को कौन जान सकता है? सर्वज्ञ उस वेदना को जान सकते हैं पर अनुभव वे नहीं करते। अनुभव तो वही स्त्री कर सकती है, जो स्वयं माता हो और जिसने अपनी प्राणप्यारी कन्या को विदाई दी हो! द्रौपदी की माता सोचने लगी—जिसके लिए भारत के बड़े-बड़े राजा दौड़ कर आये थे, वही आज जा रही है। यह घर सूना हो रहा है और साथ ही मेरा हृदय भी।

द्रौपदी तथा उसकी माता आदि के आने पर कुन्ती आदि खड़ी हो गईं। सबका यथायोग्य आदर-सत्कार किया, भेंट की, उचित आसन दिया। तब कुन्ती ने द्रौपदी की माता से कहा—महारानी जी, आपने अपनी कन्यारूपी लक्ष्मी दे हमें खरीद लिया है। आपकी उदारता की कितनी सराहना की जाय जो कन्या और धन-सम्पत्ति लेकर आप स्वयं देने के लिए पधारी हैं। आपने हमें बहुत सम्मानित किया है, बहुत उपकृत किया है।

द्रौपदी की माता ने कहा—समधिन जी, कन्या का दान करना कोई महत्व की बात नहीं है। यह तो जगत् का अटल नियम

है। एहसान तो आपका है, जो आपने इसे स्वीकार किया है। देना तो मेरे लिए अनिवार्य था मगर लेना आपके लिए अनिवार्य नही था। फिर भी आपने अनुग्रह करके मेरी कन्या को ग्रहण कर लिया। यह मेरे ऊपर आपका उपकार है।

कुन्ती—आप बहुत गुणवती हैं; इसी से आप ऐसा कहती हैं। नही तो द्रौपदी जैसी लक्ष्मी को पाने के लिए कौन लालायित नही होता ?

द्रौपदी की माता ने द्रौपदी की ओर मुंह फेर कर और एक गहरी सास लेकर कहा—बिटिया! देख, तू बडभागिनी है कि तुझे ऐसी सास मिली है।

फिर वह कुन्ती से कहने लगी—आप हमारी बडाई न करें। आपने हमे जो दिया है, वह कम नही है। आपने मेरी लडकी को सुहाग दिया है। स्वयवर-मंडप मे हमारी लाज रख ली है। आप अपने विनीत कुमारो के साथ, हमारे यहा पधारीं। यह सब आपकी बहुत कृपा है। आपके साथ सम्बन्ध होने से अब देव भी हमे छल नही सकते—जीत नही सकते। आपका वंश धन्य है, जिसमे ऐसे-ऐसे वीररत्न उत्पन्न हुए हैं।

इसके बाद द्रौपदी की माता आदि लौटने को तैयार हुईं। फिर नेत्रो के मेघ बरसने लगे। सबके हृदय गद्गद् हो गए। अन्त मे द्रौपदी सब को प्रणाम करके अपनी सास के पास खडी हो गई।

कुन्ती ने द्रौपदी को आशीर्वाद देते हुए कहा—हे पुत्री! हे कुलवधू, तेरा सुहाग अचल रहे। तेरी गोद भरी रहे। तू पाडवो के घर वैसी है, जैसी हरि के यहा लक्ष्मी, इन्द्र के यहां

इन्द्राणी और चन्द्र के यहां रोहिणी। तुम्हारे पति सार्वभौमशक्ति के विजेता और तुम सदैव उनकी सहायिका रहो। हे वधू ! तू मेरे कुल की समस्त सम्पत्ति की स्वामिनी है, परन्तु मेरे घर जो मुनि या दीन-दुखी या भिखारी आवें, उनके यथा-योग्य सत्कार में कमी मत रखना। पुण्य की रक्षा करना और उसे सम्पदा की तरह बढ़ाना।

मेरे घर किसी अतिथि का अनादर न हो। आज से हम तेरे भरोसे हैं। तू घर के सब छोटे-बड़ों का आशीर्वाद लेना। हे द्रौपदी ! ऐसा समय आवे कि तेरे पुत्र हों और वधू तेरे जैसी गुणी हो। जिस प्रकार आज मैं तुझे आशीर्वाद दे रही हूं, उसी प्रकार तू भी उन्हें आशीर्वाद देना।

बहिनो ! कन्या को किस प्रकार विदा देनी चाहिये और नववधू का किस प्रकार स्वागत करके उसे क्या सिखाना चाहिए, यह बात इस प्रकरण से सीखो।

## १०—आदर्श भाभी

सीता राम से कहने लगी—नाथ ! आपको राज्य मिल रहा है, इस विषय में गहराई के साथ विचार करने की आवश्यकता है। कम से कम देवरों के सम्बन्ध में तो विचार करना ही चाहिए। अब तक आप चारों भाई साथ रहते और खाते पीते थे। लेकिन अब जो हो रहा है, उससे बराबरी मिट जायगी। यह भ्रातृभाव में फर्क डालने वाली व्यवस्था है। इसलिए मैं कहती हूं कि आपको मिलने वाला राज्य कहीं सगोत्र से वियोग में तो नहीं डाल देगा ?

सीता की बात सुनकर राम बोले—शाबाश सीता ! मेरे दिल

मे जो बात आ रही थी, वही तुमने भी कही है ! मैं भी इसी समस्या पर विचार कर रहा हू ।

भिन्न-सा करके कोशलराज,
राज देते हैं तुमको आज ।
तुम्हें रुचता है वह अधिकार,
राज्य है प्रिये भोग या भार ।

सीता कहती है—'मेरे श्वसुर आपको राज्य क्या दे रहे हैं मानो भाइयों को आपस मे अलग-अलग कर रहे हैं-जुदाई दे रहे हैं । क्या आपको ऐसा रुचिकर है ? आप उसे चाहते हैं ? आप राज्य को प्रिय वस्तु समझते हैं या भार मानते हैं ?'

सीता की भाति आज की बहिने भी क्या देवरों के विषय मे ऐसा ही सोचती हैं ? राज्य तो बडी चीज है, क्या तुच्छ से तुच्छ वस्तुओ को लेकर ही देवरानी-जेठानी मे महाभारत नही मच जाता ? वे भाई-भाई के बीच कलह की बेल नहीं बो देती ? क्या जमाना था वह, जब सीता इस देश मे उत्पन्न हुई थी ? सीता जैसी विचारशील सती के प्रताप से यह देश धन्य हो गया है । आज क्या स्थिति है ? किसी कवि ने कहा है—

एक उदर का नीपज्या, जामण जाया वीर ।
औरत के पाले पड्या, नहि तरकारी मे सीर ।।

बहिनो ! अगर धर्म को जानती हो तो इस बात का विचार रखो कि भाई-भाई मे भेद न पडने पावे ।

सीता ने राज्य प्राप्ति के समय भी इस बात का विचार

किया था। वह राज्य को भार मान रही है। मगर आज क्या भाई और क्या भौजाई, जरा-जरा-सी बात के लिए छल-कपट करते नही चूकते ?

रामचन्द्र, सीता से कहने लगे—प्रिये ! तुम वास्तव में असाधारण स्त्री हो । तुम बड़े भाग्य से मुझे मिली हो। स्त्रियो पर साधारणतया यह दोषारोपण किया जाता है कि वे पुरुष को गिरा देती हैं, पुरुष को ऊर्ध्वगामी नही बनने देती—उसके पंख काट डालती हैं, और यहां तक कि पुरुष को नरक मे ले जाती हैं । मगर जानकी, तुम अपवाद हो। पुरुष की प्रगति मे बाधा डालने वाली स्त्रिया और कोई होंगी, तुम तो मेरी प्रगति ही हो ! तुम मेरी सच्ची सहायिका हो । जो काम मुझसे अकेले नहीं हो सकता, वह तुम्हारी सहायता से कर सकूंगा ।

जानकी ! मैं स्वयं राज्य को भार मानता हूं । वह वास्तव मे भार ही है । मै राज्य पाना दुःख पाना समझता हूं । अगर वह सौभाग्य की बात समझी जाय तो सिर्फ इसलिए कि राज्य के द्वारा प्रजा की सेवा करने का अवसर मिलता है । जो राजा न होकर भी प्रजा की सेवा कर सकता है, उसे राज्य की आवश्यकता ही क्या है ? सम्भव है, मेरे सिर पर यह भार कभी न आवे, कदाचित् आया तो भी मैं अपने भाइयों के साथ लेशमात्र भी भेदभाव नहीं करूंगा। हम जिस प्रकार रहे, उसी प्रकार रहेंगे, अवध का राज्य क्या, इन्द्र का पद भी मुझे अपने भाइयों से अलहदा नहीं कर सकता ।

## ११—बारीक वस्त्र

जो स्त्रियां शील को ही नारी का सर्वोत्तम आभूषण

समझती हैं,उनके मन मे वढिया वस्त्र और हीरा-मोती के आभूषणों की क्या कीमत हो सकती है ? उन्हे इन्द्राणी वना देने का प्रलोभन भी नही गिरा सकता। शील का सिंगार सजने वाली के लिए यह तुच्छ—अति तुच्छ है। सच्ची शीलवती अपने शील का मूल्य देकर उन्हें कदापि लेना नही चाहेगी।

और बारीक कपडे ! निर्लज्जता का साक्षात् प्रदर्शन है। कुलीन स्त्रियों को यह शोभा नही देते। खेद है कि आजकल बारीक वस्त्रों का चलन बढ गया है। यह प्रथा क्या आप अच्छी समझते हैं ? नहीं।

मगर आज तो यह बडप्पन का चिह्न वन गया है। जो जितने बडे घर की स्त्री, उसके उतने ही बारीक वस्त्र ! बडप्पन मानों निर्लज्जता मे ही है ? क्या वारीक वस्त्र लाज ढंक सकते हैं ? इन बारीक वस्त्रो की बदौलत भारत की जो दुर्दशा हुई है, उसका बयान नहीं किया जा सकता।

मोटे कपडे मजदूरी करना सिखाते हैं और महीन कपडे मजदूरी करने से मना करते हैं। महीन कपडा पहनने वाली बाई अपना बच्चा लेने मे भी संकोच करती है इस, डर से कि कहीं धूल न लग जाय। इस प्रकार बारीक वस्त्रों ने सन्तान-प्रेम भी छुड़ा दिया है।

## १२-पति को सीख

एक होशियार वकील भोजन करने बैठा था। इतने में उसका एक मवक्किल आया और उसने पचास हजार रुपये के नोट वकील के सामने रख दिये। वकील ने अपनी चतुराई का गर्व प्रकट

करते हुए अपनी पत्नी की ओर निगाह फेरी । मगर पत्नी मुंह के आगे हाथ लगा कर रुदन कर रही थी । वकील ने रोने का कारण पूछा । कहा—'क्यों, अपने घर किस बात की कमी है ? देखो, आज ही पचास हजार आये हैं । मैं कितना होशियार हूं और मेरी कितनी ज्यादा कमाई है, यह सब जानते-बूझते भी तुम रो रही हो?'

वकील की पत्नी ने कहा—मैं तुम्हें देखकर रो रही हूं ।

वकील—क्यों ? मैंने कोई बुरा काम किया है ?

वकील-पत्नी—आपने सच्चे को झूठा और झूठे को सच्चा बनाया है । यह क्या कम खराब काम है ? आप पचास हजार लेकर फूले नहीं समाते, मगर जिसके एक लाख डूब गये और एक लाख पर से देने पड़े, उसके दुःख का क्या पार होगा ? मुझे नहीं मालूम था कि आप इस प्रकार पाप का पैसा पाकर आनन्द मान रहे हैं ।

वकील—हमारा धन्धा ही ऐसा है । ऐसा न करें तो काम कैसे चले ?

पत्नी—आप सत्य को असत्य बनाते हैं, इसके बदले सत्य को सत्य बताने की ही वकालात क्यों नहीं करते ? सच्चा मुकदमा ही लें तो क्या आपका काम नहीं चलेगा ? मैं चाहती हूं कि आप प्रतिज्ञा ले लें भविष्य में कोई भी झूठा मुकदमा आप हाथ में नहीं लेंगे ।

पत्नी की बात वकील के गले उतर गई । वकील ने प्रतिज्ञा की । उसी ने अपने मवक्किल से कहा—आप यह रुपया ले जाइए और किसी प्रकार अपने प्रतिवादी को सन्तुष्ट कीजिए । इस [illegible]

आज उसे कितना दुःख हो रहा होगा ! आज मैं अपने वाक्चातुर्य से न्यायाधीश के सामने भूठे को सच्चा और सच्चे को भूठा सिद्ध करने में सफल भी हो जाऊं किन्तु जब परलोक में मुझे पुण्य-पाप का हिसाब देना पड़ेगा, तब क्या उत्तर दूंगा ? कहा भी है —

होयगो हिसाब तब मुख से न आवे ज्वाब ।
'सुन्दर' कहत लेखा लेगो राई-राई को ॥

वकील की बात सुनकर मवक्किल भी चकित रह गया और कहने लगा—वास्तव में वकील-पत्नी एक सत्यमूर्ति है, जिसने पचास हजार को भी ठोकर लगा दी ।

बहिनो, अन्याय के पथ पर चलने वाले पति को इस प्रकार सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न करो ।

## १३—गर्भवती का कर्त्तव्य

भारत के अधिकांश नर-नारियों को गर्भ-सम्बन्धी ज्ञान नहीं होता परन्तु भगवतीसूत्र में इस विषय की चर्चा की गई है। वहां यह बतलाया गया है कि हे गौतम ! माता के आहार पर ही गर्भ के बालक का आहार निर्भर है । माता के उदर में रस-हरणी नाडिका होती है । उसके द्वारा माता के आहार से बना गया रस बालक को पहुंचता है और उसी से बालक के शरीर का निर्माण होता है ।

पड़ती है। बालक को आंखों देखते काटना या मारना तो कोई सहन नहीं करता पर अज्ञान के कारण बालक की मौत हो जाती है और माता के प्राण संकट में पड़ जाते हैं, यह सहन कर लिया जाता है।

गौतम स्वामी ने प्रश्न किया है—गर्भ का बालक मल-मूत्र का त्याग भी करता है? भगवान् ने उत्तर दिया है—गर्भ का बालक माता के भोजन में से रस-भाग को ही ग्रहण करता है। उस सार रूप रस-भाग को भी वह इतनी मात्रा में ग्रहण करता है कि उसके शरीर के निर्माण में ही सारा लग जाता है। गर्भस्थ बालक आहार के खल-भाग को लेता ही नहीं है। अतएव उसे मलमूत्र नहीं आता।

का त्याग कर दिया था। आश्चर्य तो यह है कि अनुकम्पा के विरोधी इन दुर्गुणों के त्याग को भी दुर्गुण कहते हैं! मोह के त्याग को भी मोह—अनुकम्पा कहने वाले समझदार (?) लोगों को कौन समझा सकता है?

जो स्त्रिया गर्भवती होकर भी भोग का त्याग नहीं करती हैं, वे अपने पैरों पर आप ही कुल्हाडी मारती हैं। इस नीचता से बढकर और कोई नीचता नही हो सकती। नैतिक दृष्टि से ऐसा करना घोर पाप है और वैद्यक की दृष्टि से अत्यन्त अहितकर है। पतिव्रता का अर्थ यह नही है कि वह पति की ऐसी आज्ञा का पालन करके गर्भस्थ बालक की रक्षा न करे। माता को ऐसे अवसर पर सिंहनी बनना चाहिए, शक्ति बनना चाहिए और ब्रह्मचर्य का पालन करके बालक की रक्षा करनी चाहिए।

गर्भवती स्त्री को भूखा रहने का धर्म नहीं बतलाया गया है। किसी शास्त्र मे ऐसा उल्लेख नही मिलता कि किसी गर्भवती स्त्री ने अनशन तप किया था! जब तक बालक का आहार माता के आहार पर निर्भर है, तब तक माता को यह अधिकार नहीं कि वह उपवास करे। दया मूल गुण है और उपवास उत्तर गुण है। मूल गुण का घात करके उत्तर गुण की क्रिया करना ठीक नहीं।

## १४—पुत्री—पुत्र

आज पुत्र का जन्म होने पर तो हर्ष और पुत्री का जन्म होने पर विषाद अनुभव किया जाता है, पर यह लोगों की नासमझी है। पुत्री के बिना जगत् स्थिर ही कैसे रह सकता है? अगर किसी के भी घर पुत्री का जन्म न हो तो पुत्र क्या आकाश से टपकने लगेंगे? सामाजिक व्यवस्था की विषमता के कारण पुत्र-

पुत्री मे इतना कृत्रिम अन्तर पड गया है । पर यह समाज का दूषित पक्षपात है । जिस पेट से पुत्र का जन्म होता है, उसी पेट से पुत्री का । फिर पुत्री को हीन क्यो समझा जाता है ? सासारिक स्वार्थ के वश मे होकर औरों की तो बात क्या, पुत्री को जन्म देने वाली माता भी पुत्री के जन्म से उदास हो जाती है । ऐसी बहिनो से पूछना चाहिए कि क्या तुम स्त्री नही हो ? स्त्री होकर भी स्त्री जाति के प्रति अभाव रखना कितनी जघन्य मनोवृत्ति है ? कई स्त्रियो के विषय मे सुना गया है कि वे पुत्र होने पर खाने-पीने की जैसी चिन्ता रखती हैं, वैसी पुत्री के होने पर नहीं रखती । जहां ऐसे तुच्छ विचार हों, सन्तान के अच्छे होने की क्या आशा की जा सकती है और संसार का कल्याण किस प्रकार हो सकता है ?

---

# सुवचन

हरिश्चन्द्र का नाम घर-घर मे प्रसिद्ध है। इन शक्तियों की सहायता से ही उन लोगों ने अलौकिक कार्य कर दिखलाए हैं। जैसे शरीर का आधा भाग बेकार हो जाने पर सारा ही शरीर बेकार हो जाता है, वैसे ही नारी की शक्ति के अभाव मे नर की शक्ति काम नहीं करती।'

❀ ❀ ❀ ❀

'वही पत्नी श्रेष्ठ गिनी जाती है, जो पति मे अनुरक्त रहे और अपने कुटुम्बी-जनो को अपने आदर्श व्यवहार से आकर्षित कर ले।'

❀ ❀ ❀ ❀

आर्य-बालाओं मे लज्जा का गुण होना स्वाभाविक है। पर लज्जा का अर्थ घूंघट ही नहीं है। लज्जा घूंघट मे नहो, नेत्रो मे निवास करती है। घूंघट मारने वालियो मे ही अगर लज्जा होती तो वे ऐसे बारीक वस्त्र ही क्यो पहनती, जिनमे सारा शरीर दिखाई देता हो। महीन-वस्त्र पहनकर घूंघट निकालना तो एक प्रकार का छल है कि कपडे भी पहनें रहे और शरीर कुछ छिपा भी न रहे! इन महीन कपडो मे लज्जा कहा?

❀ ❀ ❀ ❀

धर्मी पुरुष के साथ विवाह करने की इच्छा तो स्त्री मात्र की रहती है लेकिन स्वय धर्मशीला बनने की भावना विरली स्त्री मे ही होती है और फिर धर्म का आचरण करने वाली तो हजारों लाखो मे भी शायद कोई मिल सकती है। पति कदाचित् पापी भी हो लेकिन पत्नी अगर अपने धर्म का पालन करती है तो उसका पाला हुआ धर्म ही उसके काम आता है। पति के पाप से पत्नी को नरक नही मिलता। अतएव हमे दूसरे की ओर न देखकर

अपने धर्म का ही पालन करना चाहिए ।

❀ ❀ ❀ ❀

बहिनो ! तुम्हें जितनी चिंता अपने गहनों की है, उतनी इन गहनों का आनन्द उठाने वाली आत्मा की है ? तुम्हें गहनों का जितना ध्यान रहता है, कम से कम उतना ध्यान अपनी आत्मा का रहता है ? आभूषणों को ठेस न लगने के लिए जितनी सावधानी रखती हो, उतनी आत्म-धर्म को ठेस न लगने देने के लिए भी सावधानी रखती हो ?

❀ ❀ ❀ ❀

कहां हैं ऐसी देवियां जो अपने बालक को मनुष्य के रूप में देव-दिव्य विचार वाला, दिव्य शक्तिशाली—बना सकें ? महिला जग की स्थिति अत्यन्त विचारणीय है। जब तक महिलाओं का सुधार नहीं होगा, तब तक किसी भी प्रकार का सुधार ठीक तरह नहीं हो सकता। आखिर तो मनुष्य के जीवन का निर्माण बहुत कुछ माता के हाथ में ही है। माता ही बालक की आद्य और प्रधान शिक्षिका है। माता बालक के शरीर की ही जननी नहीं, वरन् बालक के संस्कारों की और व्यक्तित्व की भी जननी है, अतएव बालकों के सुधार के लिए पहले माताओं के सुधार की आवश्यकता है ।

ॐ ॐ ॐ ॐ

महिलावर्ग के प्रति पुरुषवर्ग ने जो व्यवहार किया, उसका फल पुरुष-वर्ग को भी भोगना पडा । महिलाओ को, जो साक्षात् शक्ति-स्वरूपिणी हैं, अवला बनाने के अभिशाप मे पुरुष-वर्ग स्वय अबल बन गया । सियारनी से कभी सिंह उत्पन्न होते देखे गये हैं? नहीं । तो फिर अबला से सबल सपूत किस प्रकार उत्पन्न हो सकते हैं ?

❀ ❀ ❀ ❀

वही पत्नी योग्य कहलाती है, जो स्वयं चाहे वीर न हो, युद्ध मे लडने न जावे, पर वीर सतान उत्पन्न करे, जो पति को देखकर सभी कुछ भूल जावे और पति जिसे देख कर सब भूल जावे । दोनो एक-दूसरे को देखकर प्रसन्न हो । पति जो कार्य करे उसके लिए यह समझे कि मेरा आधा अग वह कार्य कर रहा है ।

# १२

# नारी-जीवन के उच्चतर आदर्श

## १-गांधारी का गम्भीर त्याग

शास्त्रों में पत्नी को 'धर्मसहायिका' कहा है। अगर वह काम-सहायिका ही होती तो उसे धर्मसहायिका कहने की क्या आवश्यकता थी? जैसे दवा रोग मिटाने को खाई जाती है, उसी प्रकार विवाह धर्म की सहायता करने और कामवासना को संयत करने के लिए किया जाता है। इससे विपरीत, जो पत्नी को काम-क्रीडा की सामग्री समझता है, उसकी गति विचित्रवीर्य के समान होती है। अतिभोग के कारण विचित्रवीर्य की मृत्यु हो गई और राज्य का भार फिर भीष्म के कंधों पर आ पड़ा।

कहलाया—भीष्म ने धृतराष्ट्र के लिए आपकी कन्या गांधारी की मगनी की है ।

महाराज पशोपेश मे पड़ गए । वे सोचने लगे—क्या करना चाहिए ? क्या अन्धे को अपनी कन्या दे दू ? यह नही हो सकता । भीष्म कितने ही महान् पुरुष हों, मैं अपनी कन्या नही दे सकता । साधारण आदमी भी अन्धे वर को अपनी कन्या नही देता तो मैं राजा होकर कैसे दे सकता हू ?

सबल ने अपने लडके शकुनि से पूछा—थोडे दिनो बाद राज्य का सारा भार तुम्हारे सिर आने वाला है । इसलिए तुम बतलाओ कि इस विषय मे क्या करना उचित है ?

शकुनि ने कहा—अपने बलाबल का विचार करते हुए गांधारी का विवाह धृतराष्ट्र के साथ कर देना ही उचित है। अपने देश पर विदेशियो और विधर्मियो के आक्रमण होते रहते हैं। यह सम्बन्ध होने से कुरुवश अपना सहायक बनेगा और कुरुवश की धाक से बिना युद्ध ही देश की रक्षा हो जायगी । यह तो कन्या ही देनी पड रही है, अवसर आने पर तो देश की रक्षा के लिए पुत्र का भी रक्त देना पडता है ।

सबल—सग्राम मे पुत्र का रक्त देना दूसरी बात है और कन्या के अधिकार को लूट कर देश की रक्षा चाहना दूसरी बात है। राज्य-रक्षा के लोभ मे पडकर कन्या का अधिकार छीन लेना क्या क्षत्रियो के लिए उचित कहा जा सकता है ? गांधारी स्वेच्छा से शत्रु के साथ युद्ध करके अपना रक्त बहा दे तो हर्ज नही है, परन्तु कन्या के अधिकार का बलात् अपहरण करके उस पर अन्याय करना उचित नही है । गांधारी की इच्छा के बिना उसका विवाह

नहीं करूंगा । ऐसा करने पर चाहे राज्य चला ही क्यों न जाय ! हां, गांधारी स्वेच्छा से अगर अन्धे पति की सेवा करना चाहे तो बात दूसरी है । मैं उसे रोकूंगा भी नहीं । लेकिन उसकी इच्छा के विरुद्ध अन्धे के साथ उसका विवाह नहीं कर सकता ।

सभा में उपस्थित सभी लोगों ने राजा के विचार का समर्थन किया और कहा—आप राजा होकर भी अगर कन्या के अधिकार को लूट लेंगे तो दूसरे लोग आपके चरित का न जाने किस प्रकार दुरुपयोग करेंगे ।

दासी—गजब हुआ राजकुमारी !

गाधारी—क्या गजब हुआ ? पिता और भाई तो सकुशल हैं?

दासी—और सबके लिए तो कुशलमगल है, आप ही के लिए अनर्थ हुआ है !

गांधारी ने मुस्करा कर कहा—मैं तो देख आनन्द मे बैठी हूं। मेरे लिए अनर्थ हुआ और मैं मजे मे हूं और तू घबरा रही है !

दासी—एक ऐसी बात सुनकर आई हू कि आपके हितैषी को दुःख हुए बिना नहीं रह सकता । आप सुनेंगी तो आपको भी दुःख होगा !

गांधारी—मुझे विश्वास नहीं होता कि मैं अपने सम्बन्ध में कोई बात सुनकर तेरी तरह घबरा उठूगी। मैं अच्छी तरह जानती हू कि घबराहट किसी भी मुसीबत की दवा नही है। वह स्वय एक मुसीबत है और मुसीबत बढ़ाने वाली है। खैर, बतला तो सही, बात क्या है ?

दासी–कुरुवंशी राजा शान्तनु के पौत्र और विचित्रवीर्य के अन्धे पुत्र धृतराष्ट्र के लिए तुम्हारी याचना करने के लिए भीष्म ने दूत भेजा है। इस विषय मे राजसभा मे गरमागरम बातचीत हुई है।

गांधारी—यह तो साधारण बात है। जिसके यहां जो चीज होती है, मागने वाले आते ही हैं। अच्छा, आगे क्या हुआ सो बतला ।

दासी—महाराज ने कहा कि मैं अन्धे के साथ गांधारी का विवाह नही करूंगा। राजकुमार ने कहा कि अपना बल बढ़ाने के लिए धृतराष्ट्र के साथ गाधारी का विवाह कर देना चाहिए ।

गांधारी– फिर ? विवाह निश्चित हो गया ?

दासी—नहीं, अभी कोई निश्चय नहीं हुआ है। इसी से मैं आपको सूचना देने आई हूं। राजकुमारी, चेत जाओ। आपकी रक्षा आपके हाथ में है। महाराज ने आपकी इच्छा पर ही निर्णय छोड़ दिया है। पुरोहित आपकी सम्मति जानने आएंगे। अगर आप जन्म भर के दुःखों से बचना चाहें तो किसी के कहने में मत आना। दिल की बात साफ-साफ कह देना। संकोच में पड़ी तो मुसीबत में पड़ी।

अपनी सखियों की सम्मति सुनकर और यह समझकर कि इनकी बुद्धि एव विचारशक्ति इतनी ही उथली है, गाधारी थोड़ा मुस्कराई। उसने कहा—सखियो, तुम मेरी भलाई सोचकर ही सम्मति दे रही हो, इसमे कोई सदेह नहीं। पर क्या तुम्हें मालूम है कि मेरा जन्म किस उद्देश्य के लिए हुआ है ?

एक सखी ने उत्तर दिया—बचपन से साथ रहती हैं तो जानती क्यो नही ? आपका जन्म इसलिए हुआ है कि आप किसी सुन्दर और शूरवीर राजा की अर्धांगिनी बनें, राजकुमार पुत्र को जन्म दें, राजकीय सुख भोगें और राजमाता का गौरव पावें।

गाधारी—सखी, यह सब तो जीवन मे साधारणतया होता ही है, पर जीवन का उद्देश्य यह नही। तुम इतना ही समझती हो, इससे आगे की नही सोचती। मैं सोचती हू कि मेरा जन्म जगत् का कोई कल्याणकारी कार्य करने के लिए हुआ है। यह जीवन बिजली की चमक के समान क्षणभगुर है—कौन जानता है, कब है और कब नही ? अतएव इसके सहारे कोई विशिष्ट कार्य कर लेना चाहिए, जिससे दूसरो का कल्याण हो।

सखी—तो क्या आप अभी से वैरागिन बनेंगी ? सयम ग्रहण करेंगी ?

गाधारी—सयम और वैराग्य का उपहास मत करो। जिसमे सयम धारण करने का सामर्थ्य हो और जो संयम ग्रहण कर ले, वह तो सदा वन्दनीय है। अभी मुझ मे इतनी शक्ति नही है। मेरी अन्तरात्मा अभी सयम लेने की साक्षी नही देती। अभी मुझमे पूर्ण ब्रह्मचर्य पालने की क्षमता नही जान पड़ती।

चित्रलेखा—जब ब्रह्मचर्य नही पालना है और विवाह करना

हा है तो क्या सूझता पति नहीं मिलेगा ? अन्धे पति को वरण करने की क्या आवश्यकता है ?

गांधारी—मेरा विवाह भोग के लिए ही नहीं, धर्म के लिए होगा। मैं पतिसेवा के मार्ग से परमात्मा के समीप पहुंचना चाहती हूं।

भद्र०—पतिव्रत धर्म का पालन करना तो उचित ही है। आप दुराचार नहीं करेंगी, यह भी हमें मालूम है। पर अन्धे को पति बनाने से क्या लाभ है ? क्या आपका यह सौन्दर्य और शृंगार निरर्थक नहीं हो जायगा ?

वह अन्धे के साथ विवाह करने को तैयार हो रही है, यह बडा अनर्थ होगा !

इसी समय राजपुरोहित आ पहुचे। गाधारी ने पुरोहित का यथायोग्य सत्कार किया।

गाधारी की शिष्टता और विनम्रता देख पुरोहित गहरे विचार मे पड गया। सोचने लगा—यह सुकुमार फूल क्या अन्धे देवता पर चढने के योग्य है ? कैसे इसके सामने प्रस्ताव किया जाय ! फिर भी हृदय कठिन करके पुरोहित ने कहा—राजकुमारी! आज एक विशेष कार्य से आया हू। तुम्हारी सम्मति लेना आवश्यक है।

गाधारी—कहिए न, सकोच क्यो कर रहे हैं ?

पुरोहित जी—अन्धे धृतराष्ट्र के लिए आपकी सगाई आई है। इस सम्बन्ध मे अन्तिम निर्णय का भार आप पर छोड दिया गया है। महाराज ने आपकी सम्मति लेने मुझे भेजा है।

पुरोहित जी की बात सुनकर गाधारी हल्की सी मुस्कराने लगी पर बोली नही। चित्रलेखा ने कहा—पुरोहित जी ! राजसभा की सब बातें राजकुमारी सुन चुकी हैं। उन्होने अन्धे धृतराष्ट्र को पति बनाना स्वीकार कर लिया है। आप वृद्ध हैं, इसलिए कहना नहीं चाहती।

पुरोहित को आश्चर्य हुआ। उसने कहा—आर्य जाति मे विवाह जीवन भर का सौदा माना जाता है। जीवन भर का सुख-दुःख विवाह के पतले सूत्र पर ही अवलम्बित है, विवाह शारीरिक

ही नहीं वरन् मानसिक सम्बन्ध भी है और मानसिक सम्बन्ध की अगाधता तथा घनिष्टता मे ही विवाह की पवित्रता और उज्ज्वलता है। इस तथ्य पर ध्यान रखते हुए इस विषय में राजकुमारी को मैं पुन विचार करने के लिए कहता हू। तुम भी उन्हे सम्मति दे सकती हो।'

गांधारी भली-भांति जानती थी कि अन्धे के साथ मुझे जीवन भर का सम्बन्ध जोडना है। उसे अन्धे के साथ विवाह करने से इन्कार कर देने की स्वाधीनता थी। सखियो ने उसे समझाने का प्रयत्न भी किया। गांधारी युवती है और सासारिक आमोद-प्रमोद की भावनाए इस उम्र मे सहज ही लहराती हैं। लेकिन गांधारी आज जन्म की योगिनी है। भोगोपभोग की आकाक्षा उसके मन मे उठि ही नही। उसने सोचा—दुष्टो द्वारा पिता सदा सताये जाते हैं और इस कारण पिताजी की शक्ति क्षीण हो रही है। यदि मैं उनके लिए औषध रूप बन सकू तो क्या हर्ज है? मुझे इससे अधिक और क्या चाहिए? यद्यपि इस सम्बन्ध के कारण पिताजी को लाभ है, फिर भी उन्होने इसके निर्णय का भार मेरे ऊपर रखा है, यह पिताजी की कृपा है।

महत्त्व को समझ नहीं सकता । जहां व्यक्तिगत और वर्गगत स्वार्थों के लिए संघर्ष छिड़े रहते हैं, उस दुनिया को क्या पता है कि गांधारी के त्याग का मूल्य क्या है ? आजकल की लड़कियां भले ही बड़े-बड़े पोथे पढ़ सकती हों पर पोथे पढ़ लेना ही क्या सुशिक्षा है ? जो शिक्षा सुसंस्कार नहीं उत्पन्न करती, उसे सुशिक्षा नहीं कह सकते। आज की शिक्षा प्रणाली में मस्तिष्क के विकास की ओर ध्यान दिया जाता है, हृदय को विकसित करने की ओर कोई लक्ष्य नहीं दिया जाता । यह एक ऐसी त्रुटि है, जिसके कारण जगत् स्वार्थ-लोलुपता का अखाड़ा बन गया है ।

गांधारी ने अपनी सखियों से कहा था—मैं भोग के लिए नहीं जन्मी हूं। मेरे जीवन का उद्देश्य सेवा करना है। अन्धा पति पाने से मेरे सेवाधर्म की अधिक वृद्धि होगी । अतएव इस सम्बन्ध को स्वीकार कर लेने से सभी तरह लाभ ही लाभ है। पिताजी को लाभ है, भाई का संकट कम होता है, मुझे सेवा का अवसर मिलता है और आखिर वह (धृतराष्ट्र) भी राजपुत्र हैं । उनका भी तो खयाल किया जाना चाहिए । कौन जाने मुझे सेवा का अवसर मिलना हो और इसलिए वे अन्धे हुए हों !

मनुष्य बीमार होता है अपनी करनी से, लेकिन सेवाभावी डाक्टर तो यही कहेगा कि मुझे अपनी विद्या प्रकट करने का अवसर मिला है ! इसी तरह गांधारी कहती है—क्या ठीक है जो मुझे सेवा का अवसर देने के लिए ही राजकुमार अन्धे हुए हों !

पुरोहित ने कहा—राजकुमारी, अभी समय है । इस समय के निर्णय का प्रभाव जीवनव्यापी होगा । आप सोलह सिंगार सीखी हैं, परन्तु अन्धे पति के साथ विवाह हो जाने पर आप सोलह सिंगार किसे बतलाओगी ? आपके सिंगार एवं सौन्दर्य का अन्धे

पति के आगे कोई मूल्य न होगा। इसलिए कहता हूँ कि निःसंकोच भाव से, सोच-समझकर निर्णय करो।

गांधारी फिर भी मौन थी। उसे मौन देख उसकी सखियों ने कहा—यह सब बातें इन्होंने सोच ली हैं।

राजकुमारी ने हमें सिखलाया है कि स्त्रियां स्वभावतः शृंगारप्रिय होती हैं, लेकिन जो स्त्री ऊपरी सिंगार ही करती है और भीतरी सिंगार नहीं करती, उसमें और वेश्या के सिंगार में क्या अन्तर है? यह बात नहीं है कि कुलांगनाएं ऊपरी सिंगार करती ही नहीं, लेकिन उनके ऊपरी सिंगार का सम्बन्ध भीतरी सिंगार के साथ होता है। कदाचित् उनका ऊपरी सिंगार छिन भी जाए तो भी वे अपना भाव-सिंगार कभी नहीं छिनने देतीं।

सेविकाएं हैं ।

महाभारत में कहा है कि अन्धा पति मिलने से गाधारी ने अपनी आखो पर पट्टी बाध ली थी । लेकिन यह कल्पना ठीक नही है, क्योकि ऐसा करने से उनके सेवा-कार्य मे कमी आ जाती है। हां, विषय-वासना से बचने के लिए अगर कोई आखो पर पट्टी बाधे तो उसे बुरा भी नही कहा जा सकता । लेकिन गाधारी जैसी सती के विषय मे यह कल्पना घटित नहीं होगी । अगर आखो पर पट्टी बाधने का अर्थ यह हो कि वह जगत् के सौन्दर्य से विमुख हो गई थी—सौन्दर्य के आकर्षण को उसने जीत लिया था तो पट्टी बाधने की कल्पना मानी जा सकती है ।

अन्त मे पुरोहित ने कहा—तो राजकुमारी का यही अभि-मत है, जो उनकी सखिया कहती हैं ?

गाधारी—पुरोहित जी, सखिया अन्यथा क्यों कहेगी ? आप पिताजी को सूचना दे सकते हैं ।

पहले-पहल गाधारी के सामने समस्या उपस्थित हुई कि अन्धे के साथ विवाह करना उचित है या नही ? मगर गाधारी शीघ्र ही निर्णय पर पहुच गई। कैसा भी कठिन प्रसग क्यो न हो, धर्म का स्मरण करने से कठिनाई दूर हो जाएगी । धर्म और पाप की सक्षिप्त व्याख्या यही है कि स्वार्थ-त्याग धर्म है और स्वार्थ-साधन की लालसा पाप है ।

गाधारी ने स्वार्थ त्याग दिया । गाधारी जैसी सती का चरित्र भारत मे ही मिल सकता है, दूसरे देश मे मिलना कठिन है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि अमेरिका जैसे सभ्य गिने जाने

वाले देश में १५ प्रतिशत विवाह-सम्बन्ध टूट जाते हैं—तलाक हो जाते हैं, भारतवर्ष में पतन की अवस्था में भी यह बात नहीं है।

गांधारी में अपनी मातृभूमि के प्रति भी आदर्श प्रेम था। अन्ध पति का वरण करने में उसका एक उद्देश्य यह भी था कि इससे मेरी मातृभूमि का कष्ट मिट जाएगा। मातृभूमि की भलाई के लिए उसने इतना त्याग करना अपना कर्त्तव्य समझा। उसने सोचा —अन्ध धृतराष्ट्र के साथ विवाह कर लेने से बल बढ़ेगा और मेरी मातृभूमि की रक्षा भी होगी तो ऐसा करने में क्या हर्ज है ?

सांसारिक दृष्टि से देखा जाय तो अन्धे के साथ विवाह करने में कितना कष्ट है ? अन्धा पति होने से सिंगार व्यर्थ होता है और सिंगार की आशा पर विजय प्राप्त करनी पड़ती है। मगर गांधारी ने प्रसन्नतापूर्वक यह सब स्वीकार कर लिया।

## २—राजमती का पतिप्रेम

स्त्रिया भी विवाह–सम्बन्ध विच्छेद तथा पुनर्विवाह आदि कानूनों की माग करने लगी हैं, परन्तु यह माग कुछ ही अग्रेजी शिक्षा से प्रभावित स्त्रियो की है, भारत की अधिकाश स्त्रिया तो इस प्रकार के कानूनो की माग की भावना को हृदय मे स्थान देना ही पाप समझती हैं। जिन स्त्रियो की ओर से इस प्रकार की माग हुई, उसमे से भी बहुत–सी अब यह समझने लगी हैं कि इस प्रकार के कानूनों का परिणाम कैसा बुरा होता है तथा भारतीय सस्कृति के मिटाने से कैसी हानि होगी। जिन देशो मे विवाह–विच्छेद कानून प्रचलित है, उन देशो के पति–पत्नी आज दाम्पत्य–जीवन की ओर से कैसे दु खी हो रहे हैं, वहा दुराचार का कैसा ताण्डव होता है, यह कहा नही जा सकता। केवल इ ग्लेन्ड मे और वह भी घरेलू झगडो के कारण प्रतिवर्ष १५ हजार पत्निया पतियो को छोड देती हैं और ३५०० पति, पत्नी को निश्चित अलाउन्स न दे सकने के कारण जेल जाते हैं।

भारत मे कोई स्त्री ऐसी शायद ही निकले, जो सीता, दमयन्ती आदि सतियो का नाम न जानती हो, उनके चरित्र से यत्किंचित् भी परिचित न हो या उनके चरित्र को आदर की दृष्टि से न देखती हो। सीता और दमयन्ती जैसी स्त्रिया भारत मे ही हुई हैं, जो कष्ट पडने और पति द्वारा त्यागी जाने पर भी पति–परायण ही रही।

सीता मदनरेखा, दमयन्ती आदि कितनी भी पतिव्रता और पति–परायणा स्त्रिया प्राचीनकाल मे हुई हैं, राजमती उन सबसे बढ़कर है। सीता आदि और सतियो का अपने पति द्वारा पाणि–ग्रहण हो चुका था। वे थोडा बहुत पति–सुख भोग चुकी थी और इस कारण यदि वे पतिभक्त न रहती तो उनके लिए लोकापवाद उपस्थित होता था। लेकिन राजमती के लिए इनमे से कोई बात

नहीं थी। राजमती का तो भगवान् अरिष्टनेमि के साथ विवाह भी नहीं हुआ था और भगवान् के लौट जाने के पश्चात् यदि वह किसी के साथ अपना विवाह करती तो कोई उसकी निन्दा भी नहीं कर सकता था। लेकिन रीति के अनुसार विवाह नहीं हुआ था, इसलिए राजमती भगवान् अरिष्टनेमि की स्त्री नहीं बनी थी। फिर भी राजमती ने भगवान् अरिष्टनेमि को अपना पति मानकर उत्कृष्ट पति-प्रेम का जो परिचय दिया, उसके कारण राजमती भारत की समस्त सती-स्त्रियों में अग्रणी मानी जाती हैं। राजमती के आदर्श का उच्च आदर्श भारत के सिवा किसी अन्य देश वालों की कल्पना में भी आना कठिन है।

भगवान् अरिष्टनेमि तोरण-द्वार पर से लौट आये। भगवान् अरिष्टनेमि विवाह किये बिना ही लौट गये।

नेमि के लिए तेरी याचना की, तभी मैंने यह विवाह-सम्बन्ध स्वीकार किया था। इतना होने पर भी अरिष्टनेमि चले गये तो इससे अपनी क्या हानि हुई ? यह तो उसके पिता, भ्राता आदि का ही अपमान हुआ, जिन्होने मुझसे तेरी याचना की और जो बरात सजाकर आये थे। एक तरह से अच्छा ही हुआ कि अरिष्टनेमि तेरे साथ विवाह किये बिना ही लौट गये। यदि विवाह हो जाता और फिर वह तुझे त्याग जाते या दीक्षा ले लेते तो जन्म भर दुख रहता। अब तू अरिष्टनेमि के लिए किंचित् भी दुख या चिन्ता मत कर। हम तेरा विवाह किसी दूसरे राजा या राजकुमार के साथ कर देंगे।'

माता की अन्तिम बात सुनकर राजमती को बडा ही दुख हुआ, वह अपने माता-पिता से कहने लगी—पूज्य पिताजी ! आर्य-पुत्री का विवाह एक ही बार होता है, दो बार नही होता, चाहे वह पति द्वारा परित्याग कर दी गई हो या विधवा हो गई हो। आर्य-पुत्री स्वप्न मे भी दूसरे पुरुष को नही चाहती। मेरा विवाह एक बार हो चुका है, अत अब मैं दूसरा विवाह कैसे कर सकती हू ? और आपको दूसरा विवाह करने की सम्मति भी कैसे उचित हो सकती है ?

माता—हम दूसरा विवाह करने को कब कह रहे हैं ? क्या हम आर्य-पद्धति से अपरिचित हैं !

राजमती—फिर आप क्या कह रही हैं ? यदि अब मेरा किसी दूसरे पुरुष के साथ विवाह हुआ, तो क्या वह पुनर्विवाह न माना जाएगा ?

माता—नही।

राजमती—क्यो ?

माता—इसलिए कि अभी तेरा विवाह नहीं हुआ है।

राजमती—आप भ्रम में हैं, मेरा विवाह हो चुका है।

माता—किसके साथ ?

राजमती—भगवान् अरिष्टनेमि के साथ।

माता—समझ में नहीं आता कि तू यह क्या कह रही है। अरिष्टनेमि अपने घर तक भी नहीं आये। उन्होंने तुझे छुआ और तूने उनको, भली-भांति देखा भी नहीं। हमने कन्या-दान करके तेरा हाथ भी उनके हाथ में नहीं सौंपा और तू कहती है कि विवाह हो गया!

राजमती—वे यहां तक नहीं आये, या आपने मेरा हाथ उनके हाथ में नहीं सौंपा तो इससे क्या हुआ ? क्या विवाह के लिए ऐसा होना आवश्यक है ?

चुकी हूं, अत अब मैं किसी और पुरुप के साथ विवाह करके आर्य-कन्या के कर्त्तव्य को दूषण नही लगा सकती ।

माता—राजमती, तू विवाह का जो अर्थ लगा रही है, उससे हम इन्कार नही करते, लेकिन हृदयगत भावो को ससार के सभी लोग नही जान सकते । इसलिए विवाह-सम्बन्धी स्थूल-क्रिया का होना आवश्यक है और जब तक वह न हो जाय, कोई पुरुप या स्त्री, विवाह-बन्धन से बद्ध नहीं माना जा सकता ।

राजमती—कोई दूसरा मुझे विवाह-सम्बन्ध मे बद्ध माने या न माने, मैं तो अपने को ऐसा मानती हू । विवाह-सम्बन्धी स्थूल क्रिया देखने की आवश्यकता तो तब है, जब मैं अपने हृदय के भावो को छिपाऊं । विवाह-सम्बन्धी स्थूल क्रिया भी हृदय के आश्रित है । केवल विवाह ही नही, समस्त कार्य का मूल हृदय है । जिस बात को हृदय एक बार स्वीकार कर चुका है, केवल सासारिक विषय-सुख के लिए उससे मुकरना और विवाह-सम्बन्धी स्थूल क्रिया न होने का आश्रय लेना, कम से कम, मैं उचित नहीं समझती ।

माता—तू चाहे विवाह-क्रिया को न मान, लेकिन ससार तो मानता है न ! यदि तू अभी किसी से यह कहे कि मैं अरिष्टनेमि की पत्नी हूं तो क्या ससार के लोग इस बात को मानेंगे ! और तो और, क्या स्वय अरिष्टनेमि ही यह स्वीकार करेंगे कि राजमती मेरी पत्नी है ?

राजमती—माता ! भगवान् अरिष्टनेमि को मैंने पति माना है, इसलिए मैं अपने को विवाह-सम्बन्ध मे बन्धी हुई और भगवान् अरिष्टनेमि की पत्नी ही मानू गी । मैं यह नही कहती कि भगवान्

राजमती का विवाह करने की ओर से हताश हो गये । उन्होंने राजमती से अधिक कुछ कहना-सुनना अनावश्यक समझा और राजमती से यह कह कर वहा से चले गये कि तू इस विषय पर शाति से विचार कर। उन्होने राजमती की सखियो से भी कहा कि तुम लोग, राजमती को सब बातो का ध्यान दिलाकर समझाओ। इस प्रकार हठ पकडने का परिणाम, इसके लिए अच्छा न होगा।

राजमती के माता-पिता के चले जाने के पश्चात् राजमती की सखिया, राजमती को समझाने लगी। वे कहने लगीं--सखी, ससार मे कोई भी मनुष्य, सुख को दुःख मे बदलना नही चाहता, न कोई भी आदमी, अपने को बलात् दुःख मे डालता है। यह बात दूसरी है कि विवश होकर दुःख सहना पडे परन्तु प्रयत्न सुख प्राप्ति का ही करते हैं। फिर आप अपने लिए दुःख क्यो मोल ले रही हैं ? जब आपका विवाह अभी हो सकता है, तब इस सुख-सुयोग का क्यो ठुकरा रही हैं ? महाराज और महारानी ने आपसे जो कुछ कहा है, उस पर भली प्रकार विचार करो और विवाह का सुअवसर न जाने दो, अन्यथा फिर पश्चात्ताप करना पडेगा।

सखियों की बातें सुनकर राजमती कहने लगी— सखियो ! मुझ बुद्धिहीना की समझ मे तुम लोगो की बातें जरा भी नही आतीं। मैं विचार करने बैठती हू, तब भी मेरे विचार मे, भगवान् अरिष्टनेमि के सिवा और किसी का ध्यान तक नही आता। सच्ची बात तो यह है कि अब मेरे मे या तो बुद्धि ही नहीं रही या वह परतन्त्र बन गई है। बुद्धि पर भी, भगवान् अरिष्टनेमि का आधिपत्य हो गया है। मैं तो बिलकुल वह विक्षिप्ता हू, जिसे केवल भगवान् अरिष्टनेमि की ही धुन है। हृदय कहता है कि इस जन्म

सखियो, तुम मुझे यह भय दिखाया करती हो कि किसी दूसरे के साथ विवाह न करने पर, जब काम का प्रकोप होगा, दुख पाओगी लेकिन क्या काम मुझ अबला को ही कष्ट देगा ? पति को कष्ट न देगा ? पति ने मुझे त्यागकर किसी दूसरी का पाणि-ग्रहण तो किया ही नही है, जो उसके कारण पति को काम-पीडा न हो और मुझे ही हो। जिस स्थिति मे पति है, उसी स्थिति मे मैं हू। जब वे काम से होने वाले कष्ट सहेगे तो क्या मैं न सहू ? मैं उन कष्टो से भय खाकर अपने विचार से पतित क्यो हो जाऊं ? स्त्री का कर्त्तव्य, पति का अनुगमन करना है, अत. जिस प्रकार पति कष्ट सहे, उसी प्रकार मुझे भी कष्ट सहने चाहिए और यदि पति, काम पर विजय प्राप्त करें तो मुझे भी वैसा ही करना चाहिए। इसलिए तुम लोग, मुझे इस प्रकार का भय न दिखाओ किन्तु पति का अनुसरण करने की ही शिक्षा दो।

राजमती की बातो से, सखिया चुप हो गईं। उन्होने फिर भी राजमती को समझाने और विवाह करना स्वीकार करने के लिए बहुत प्रयत्न किया परन्तु उनका सब प्रयत्न निष्फल हुआ। राजमती भगवान् अरिष्टनेमि के प्रेम मे ऐसी रग गई थी कि अब उस पर किसी की बातो से कोई दूसरा रग चढता ही न था।

卐